HSC (N)-222

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं पालन-पोषण

Early childhood care and parenting

स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

HSC (N)-222

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं पालन-पोषण

Early childhood care and parenting

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रांसपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी-263139
फोन नं. 05946- 261122, 261123
टोल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड			
प्रोफेसर पी0 डी0 पंत निदेशक स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर लता पाण्डे विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर दीक्षा कपूर प्राध्यापक, पोषण विज्ञान विभाग सतत् शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	प्रोफेसर मनीषा गहलौत प्राध्यापक, वस्त्र एवं परिधान विभाग गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड

डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रीति बोरा सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 ज्योति जोशी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 पूजा भट्ट सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम संयोजक	**पाठ्यक्रम संपादन**
डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 ज्योति जोशी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई लेखन	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**
इकाई 1 और 2 एम0ए0 गृह विज्ञान MAHS-12 की इकाई 4 का संसोधन है। ।	डॉ0 ज्योति जोशी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	3	डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	4, 5	इकाई 6 एम0ए0 गृह विज्ञान MAHS- 02 की इकाई 7, 8 और 9 का संसोधन है।

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**
श्रीमती मोनिका द्विवेदी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	7, 9	डॉ प्रीति बोरा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	8, 10	इकाई 11 एम0ए0 गृह विज्ञान MAHS-02 की इकाई 12 से लिया गया है।	डॉ पूजा भट्ट सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	12

ISBN-

समस्त लेखों/पाठों से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद के लिए जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कॉपीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष: 2025

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139 (नैनीताल)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं पालन-पोषण

Early childhood care and parenting

HSC (N)-222

खण्ड	इकाई	पृष्ठ संख्या
I प्रारम्भिक बाल्यावस्था का परिचय	इकाई 1: प्रारंभिक बाल्यावस्था	2-10
	इकाई 2: प्रारंभिक बाल्यावस्था में विकास	11-27
	इकाई 3: लैंगिक अध्ययन	28-37
II अधिगम का दर्शनशास्त्र	इकाई 4: अधिगम की अवधारणा	39-58
	इकाई 5: अधिगम का परिवेश	59-78
	इकाई 6: बाल विकास के सिद्धांत	79-102
III विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और पालन-पोषण	इकाई 7: विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और विशेष शिक्षा	104-124
	इकाई 8: परिवार	125-142
	इकाई 9: प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल हेतु नीतियां एवं कार्यक्रम	143-156
IV बाल मार्गदर्शन, मनोवैज्ञानिक समायोजन और बच्चे का असामाजिक व्यवहार	इकाई 10: पालन-पोषण (पेरेंटिंग) के प्रकार	158-174
	इकाई 11: बाल निर्देशन	175-191
	इकाई 12: प्रतिभाशाली बालक	192-208

खंड I: प्रारम्भिक बाल्यावस्था का परिचय

इकाई 1: प्रारम्भिक बाल्यावस्था

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था
1.3.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य
1.3.2 विकासात्मक मील के पत्थर
1.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था की विशेषतायें
1.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास
1.6 सारांश
1.7 पारिभाषिक शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

बाल्यावस्था किसी भी व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण चरण होता है, जो उसके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास की नींव रखता है। इस अवस्था में बच्चा अपने परिवेश से ज्ञान अर्जित करता है, अपनी भावनाओं को व्यक्त करना सीखता है और समाज के मूल्यों को आत्मसात करता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था (0-6 वर्ष) वह अवस्था होती है जब शिशु से लेकर एक छोटे बच्चे तक का मानसिक और शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। इस दौरान उसके मस्तिष्क का विकास लगभग 90% तक पूर्ण हो जाता है। इस अवस्था में उसे परिवार, समाज और शिक्षा के उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जिससे वह एक संतुलित और आत्मनिर्भर व्यक्ति बन सके।

बाल विकास विशेषज्ञों के अनुसार, प्रारंभिक बाल्यावस्था में बच्चे के अनुभवों का उसकी संज्ञानात्मक (cognitive), भाषा (language), सामाजिक (social), तथा भावनात्मक (emotional) क्षमताओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस समय सही देखभाल, उचित पोषण और सकारात्मक वातावरण प्रदान करना बच्चे के उज्जवल भविष्य के लिए अनिवार्य होता है।

इस प्रस्तावना का उद्देश्य प्रारंभिक बाल्यावस्था के महत्व, इस दौरान होने वाले विकासात्मक परिवर्तनों और माता-पिता एवं शिक्षकों की भूमिका को समझाना है। यह अध्ययन न केवल बच्चों की बेहतर परवरिश के लिए आवश्यक है, बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य के बारे में समझ पायेगें।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था की विशेषताओं के बारे में समझ पायेगें।

1.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था

1.3.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य

प्रारम्भिक बाल्यावस्था 2 वर्ष से 6 वर्ष तक मानी जाती है। यह विकास की तीव्र अवस्था है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की गति तीव्र होने के कारण बालक की क्रियाओं में भी तीव्रता आती है जिसके परिणामस्वरूप वह शारीरिक क्रियाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक करता है।

विकासात्मक कार्यों से तात्पर्य उन कार्यों से है जो व्यक्ति के जीवन के निश्चित काल में उत्पन्न होते हैं तथा इन कार्यों को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के फलस्वरूप व्यक्ति को प्रसन्नता अनुभव होती है एवं विकास की अगली अवस्था के कार्यों को सीखने में भी सफलता मिलती है। कुछ विकासात्मक कार्य ऐसे होते हैं जो कि शारीरिक परिपक्वता के आधार पर उत्पन्न होते हैं, जैसे चलना सीखना। जबकि कुछ विकासात्मक कार्य ऐसे होते हैं जो व्यक्ति की सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकताओं के आधार पर उत्पन्न होते हैं जैसे लिखना, पढ़ना, सीखना। इसके अतिरिक्त कुछ विकासात्मक कार्य व्यक्ति के मूल्य तथा आकांक्षाओं के आधार पर उत्पन्न होते हैं। जैसे किसी विशेष व्यवसाय/ उद्योग के लिये तैयारी करना।

1.3.2 विकासात्मक मील के पत्थर

बच्चों में विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। आयु के अनुसार बच्चों को कार्य करने में सक्षम होना चाहिए। यदि कोई बालक अपनी आयु के अनुसार गतिविधियाँ नहीं करता है या फिर कभी कभी बालक कुछ क्षेत्रों में समान उम्र के अन्य बालकों की तुलना में धीमी गति से विकसित होता है, तो बाल रोग विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक विलम्ब को निम्न विकास बिंदुओं के माध्यम से परखा जा सकता है:

2 वर्ष

- बालक हल्के फुल्के कपड़े उतार सकता है।
- बालक बिना गिरे दौड़ सकता है।
- बालक पुस्तक की तस्वीरों में रूचि लेता है।
- बालक जो कहना चाहता है वह कह सकता है।
- बालक अन्य व्यक्तियों द्वारा कहे गए शब्दों को दोहराना शुरू कर देता है।
- बालक शरीर के अंगों को इंगित करने में सक्षम होता है।

3 वर्ष

- बालक कन्धे के ऊपर गेंद फेंक सकता है, वह कंधे के समानान्तर या नीचे से गेंद नहीं फेंक सकता है।
- बालक अपने लिंग को आसानी से बता पाता है।
- बालक हल्की वस्तुओं को उठने में मदद करता है।
- बालक कम से कम एक रंग की पहचान करने लगता है।

4 वर्ष

- बच्चे को अपने परिवार के सदस्यों के नाम स्पष्ट हो जाते हैं जिन्हें बोलने में वह गलतियां कम करता है।
- बालक पुस्तकों या पत्रिकाओं में छपी तस्वीरों के नाम आसानी से पहचानकर बता सकता है।

5 वर्ष

- बालक एक के बाद दूसरे कदम के इस्तेमाल से सीढ़ियाँ चढ़ने व उतरने का कार्य आसानी से कर लेता है।
- बालक दूरी वाली जगहों को उछलकर पार करने की कोशिश करता है।

1.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था की विशेषतायें

- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'पूर्वशाला' अवस्था है: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में अनेक बच्चे प्ले स्कूल, नर्सरी, आंगनबाड़ी आदि में जाते हैं जहाँ उनका कोई निश्चित पाठयक्रम नहीं होता है। उन्हें स्वतन्त्र वातावरण में खेल पद्धति के द्वारा निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना सिखाया जाता है तथा उन्हें स्कूल जाने के लिए तैयार किया जाता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'समूह पूर्व' की अवस्था है: मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रारम्भिक बाल्यावस्था समूह पूर्व अवस्था है। इसी अवस्था से बालक में सामाजिक व्यवहारों का उदय होता है क्योंकि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक घर से बाहर निकलकर अपने उम्र के साथियों के साथ खेलना प्रारम्भ कर देता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'जिज्ञासावृत्ति' की अवस्था है: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक में जिज्ञासा की प्रवृत्ति उच्च सीमा पर पायी जाती है। जब बालक बाहरी वातावरण के सम्पर्क में आता है तो वह अपने वातावरण की पूर्व जानकारी प्राप्त करना चाहता है जिसके पश्चात ही बालक वातावरण में समायोजन प्रारम्भ करता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'समस्या अवस्था' है: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। वह अपने क्रियाकलापों में स्वतन्त्रता चाहता है तथा हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता है जिस कारण उसे अनेक दुर्घटनाओं का शिकार होना पड़ता है। यदि उनके कार्य में कोई हस्तक्षेप करे तो वे आक्रामक हो जाते हैं और नकारात्मक व्यवहारों का प्रदर्शन करने लगते हैं जैसे जिद आदि।

1.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

मानवीय विकासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शारीरिक विकास है। यह हमारे अन्य विकासों को आधार प्रदान करता है।

शारीरिक विकास की विशेषताएं

- भिन्न भिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास अलग अलग होता है।
- सर्वप्रथम शारीरिक विकास में सिर या धड़ के समीप अंगों को प्राथमिकता मिलती है।
- शारीरिक विकास लिंगानुसार भी प्रभावित होता है।
- इस अवस्था में शारीरिक विकास में स्थिरता होती है।

2-6 वर्षों में शारीरिक विकास

- हड्डियाँ: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में हड्डियों के कठोर होने की प्रक्रिया चलती रहती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के प्रत्येक अगले वर्ष में हड्डियाँ कुछ और कड़ी हो जाती हैं।
- लम्बाई एवं वजन: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में आगे रहती हैं। 3 से 6 वर्ष की आयु तक लम्बाई में तीन इंच प्रतिवर्ष के आधार से वृद्धि होती है। छः वर्ष की अवस्था तक लड़के एवं लड़कियों की लम्बाई में वृद्धि लगभग समान गति से होती है। "इण्डियन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स (2002)" के द्वारा किए गए अध्ययनों के आधार पर औसत भारतीय बालकों के वजन तथा ऊँचाई के मान निम्न तालिका में दिए गए हैं:

तालिका 1: 2 से 6 वर्ष के बालक का अनुमानित वजन तथा लम्बाई

आयु	औसत लम्बाई (से0मी0 में)		औसत वजन (कि0ग्रा0 में)	
	लड़का	लड़की	लड़का	लड़की
30 माह	90.5	89.9	12.9	12.6
36 माह	94.4	93.3	13.8	13.5
38 माह	97.7	96.7	14.6	14.3
42 माह	97.7	96.7	14.6	14.3
48 माह	100.8	99.8	15.4	15.1
54 माह	103.7	102.9	16.2	15.9
60 माह	106.2	106.0	17.1	16.8
66 माह	110.0	109.3	18.1	17.8
72 माह	113.6	113.1	19.2	18.9

मांसपेशियाँ और वसा: बालक के भार की वृद्धि मांसपेशियों में प्रसार के कारण होती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में मांसपेशियों में जल का स्तर अधिक होता है। धीरे-धीरे जल का स्तर कम होने लगता है और ठोस तन्तुओं के विकास के साथ-साथ मांसपेशियों में दृढ़ता आने लगती है। वसा तन्तुओं की वृद्धि वंशक्रम पर ही आधारित न होकर बालक के खान पान सम्बन्धी आदतों पर भी निर्भर करती

है। 6 वर्ष की अवधि तक मांसपेशियों का विकास शारीरिक अनुपात के अनुसार बढ़ता है। लगभग 5-6 वर्ष की अवस्था से मांसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। हर आयु में लड़कों की मांशपेशियाँ लड़कियों की मांसपेशियों से अधिक शक्तिशाली होती हैं।

शारीरिक अनुपात:

सिर का अनुपात: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सिर का विकास 13 प्रतिशत रह जाता है। अर्थात् नवजात शिशु का सिर, शरीर की लम्बाई का 22 प्रतिशत होता है। पाँच वर्ष की अवस्था में चेहरे व सिर की गोलाई का अनुपात 1:5 होता है।

चेहरे का अनुपात: शरीर का विकास ऊपर से नीचे के क्रम में होता है, अतः सिर के विकास के बाद चेहरे के अनुपात में विकास होता है। बालक में अस्थायी दाँतों के बाद स्थायी दाँत आने से भी चेहरे के अनुपात में परिवर्तन आते हैं। लगभग पाँच वर्ष की आयु तक माथा कुछ चपटा हो जाता है।

धड़ का अनुपात: प्रारम्भिक बाल्यवस्था में गर्दन पतली व लम्बी दिखने लगती है। बालक का धड़ 6 वर्ष की अवस्था में जन्म की अपेक्षा दो गुना हो जाता है।

भुजाओं तथा टाँगों का अनुपात: प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 4 वर्ष की आयु में भुजाओं का विकास दो वर्ष की अवस्था के अनुपात में 50 प्रतिशत बढ़ता है। इसी प्रकार 4 वर्ष में पैर का विकास 50 प्रतिशत हो जाता है।

दाँत: बच्चों में अस्थायी तथा स्थायी दाँत पाये जाते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं।

नाड़ी संस्थान का विकास: प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 3-4 वर्ष में नाड़ी संस्थान का विकास मन्द गति से बढ़ता है। जन्म के बाद भिन्न भिन्न आयु स्तरों पर बालक के मस्तिष्क का भार भिन्न होता है। जैसे 4 वर्ष की आयु में वयस्क के मस्तिष्क के भार से 4/5 तथा 6 वर्ष की आयु में 9/10 होता है।

परिसंचरण तंत्र: प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक हृदय का भार जन्म की अपेक्षा 4-5 गुना हो जाता है। शैशवावस्था व बाल्यावस्था में दोनों लिंगों के रक्तचाप में कोई अन्तर नहीं पाया जाता है।

पाचन तन्त्र: बाल्यावस्था के तीन वर्ष में पेट की क्षमता का विकास तीव्र गति से होता है। चूँकि बच्चों का पेट जल्दी जल्दी खाली होता है। अतः बच्चों को भोजन कम अंतराल पर देना चाहिए। बच्चों का भोजन पौष्टिक होना चाहिए।

श्वसन तन्त्र: प्रारम्भिक बाल्यावस्था की शुरुआत में छाती व सिर की परिधि बराबर हो जाती है।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

वंशानुक्रम: किसी भी प्राणी की शारीरिक विशेषताएं जैसे रंग, रूप, कद तथा शारीरिक अनुपात आदि का निर्धारण वंशानुक्रम के द्वारा होता है।

भौतिक वातावरण: भौतिक वातावरण भी बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करता है। यदि बालक को रहने का स्थान, हवा, पानी, प्रकाश आदि उपयुक्त मात्रा में नहीं मिलता है तो उसका समुचित शारीरिक विकास नहीं हो पाता है।

आहार: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास आहार से भी प्रभावित होता है क्योंकि बालक के पेट की क्षमता का विकास तीव्र गति से होता है। उसके भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा अन्य खनिज लवण उचित मात्रा में विद्यमान होने चाहिए।

रोग: अस्वस्थता या लम्बी अवधि की बीमारी से बालक का शारीरिक विकास अवरूद्ध हो जाता है लेकिन जो बालक स्वस्थ होते हैं उनका शारीरिक विकास सामान्य ढंग से होता है।

अन्तः स्थावी ग्रन्थियाँ: अन्तःस्थावी ग्रन्थियों से निकलने हारमोन प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं।

बुद्धि: बुद्धि केवल मानसिक विकास ही नहीं वरन शारीरिक विकास को भी प्रभावित करती है। प्रतिभाशाली और तीव्र बुद्धि बालकों में यौन परिपक्वता सामान्य बालकों की अपेक्षा 1-2 वर्ष पूर्व ही आ जाती है। इसके ठीक विपरीत दुर्बल बुद्धि बालकों में यौन परिपक्वता देरी से विकसित होती है।

लिंग: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों का शारीरिक विकास बालिकाओं से अधिक होता है। शारीरिक शक्ति व क्रियाशीलता बालिकाओं की अपेक्षा बालकों में अधिक रहती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालिकाओं के शरीर में वसा का अभाव बालकों की तुलना में अधिक होता है जिससे वे बालकों की तुलना में अधिक कोमल प्रतीत होती हैं।

संवेगात्मक व्यवधान: संवेगात्मक व्यवधान शरीर के विकास कारमोन को प्रभावित कर शारीरिक विकास को प्रभावित करता है।

पारिवारिक प्रभाव: जिन परिवारों में वातावरण खुशहाल व सौहार्दपूर्ण होता है वहाँ बच्चों का शारीरिक विकास अच्छा होता है। इसके विपरीत जिन परविारों का वातावरण कलहपूर्ण व बच्चों पर कठोर नियन्त्रण होता है, वहाँ बच्चों का शारीरिक विकास स्वस्थ नहीं हो पाता है।

सामाजिक आर्थिक स्तर: निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बालकों का विकास उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बालकों की अपेक्षा कम होता है क्योंकि उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बच्चों की विभिन्न आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं जिनसे उनका शारीरिक विकास अच्छा होता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान चाहिए।

a. प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवधि ..... होती है।

b. प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 4 वर्ष की आयु में भुजाओं का विकास दो वर्ष की अवस्था के अनुपात में ..... बढ़ता है।

c. प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 3-4 वर्ष में नाड़ी संस्थान का विकास ..... गति से बढ़ता है।

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हमने यह जाना कि प्रारंभिक बाल्यावस्था (लगभग 2 से 6 वर्ष की उम्र) बच्चे के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास की महत्वपूर्ण अवस्था होती है। इस अवधि में बच्चा तेजी से शारीरिक विकास करता है, उसकी भाषा कौशल विकसित होती है और वह अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है।

इस अवस्था में बच्चे की जिज्ञासा अधिक होती है और वह अधिकतर चीजें देखकर और सुनकर सीखता है। इस समय खेल और गतिविधियों के माध्यम से सीखना अधिक प्रभावी होता है। संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ, सामाजिक और नैतिक मूल्यों की नींव भी इसी समय पड़ती है। माता-पिता और शिक्षक की भूमिका इस अवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि वे बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में योगदान देते हैं।

संक्षेप में, प्रारंभिक बाल्यावस्था वह समय होता है जब बच्चा सीखने, समझने और समाज के साथ जुड़ने की प्रक्रिया में प्रवेश करता है, जो उसके भविष्य के विकास की दिशा तय करता है।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

- **मील के पत्थर:** मील के पत्थर का प्रतीकात्मक अर्थ जीवन, करियर, या किसी परियोजना में महत्वपूर्ण उपलब्धियों को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. 2 से 6 वर्ष

b. 50 प्रतिशत

c. मन्द गति

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल, डा0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास, अग्रवाल, पब्लिकेशन, आगरा -7।

2. प्रो0 कमलेश शर्मा, डॉ0 ललिता शर्मा, डॉ0 (श्रीमती) पुष्पा उपाध्याय, मानव विकास, स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा।

3. डॉ0 (श्रीमती) वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

4. डॉ0 प्रीति वर्मा, डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, बाल मनोविज्ञान बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

5. सुरेश भटनागर, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रारंभिक बाल्यावस्था के विकासात्मक मील के पत्थर का वर्णन कीजिये।
2. प्रारंभिक बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये।

इकाई 2: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकास

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था के विकास
2.3.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास
2.3.2 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
2.3.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
2.3.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास
2.3.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

बाल्यावस्था किसी भी व्यक्ति के जीवन की नींव होती है, और इसका प्रारम्भिक चरण (0-6 वर्ष) शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह वह समय होता है जब बच्चा तेजी से सीखता है, नई चीजों को ग्रहण करता है और अपने आसपास की दुनिया को समझने की क्षमता विकसित करता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चे की मस्तिष्कीय क्षमता उच्चतम स्तर पर होती है, और इस समय किए गए प्रयास उसके भविष्य के संज्ञानात्मक विकास, भाषा कौशल, सामाजिक व्यवहार और भावनात्मक स्थिरता को प्रभावित करते हैं। शारीरिक विकास में इस अवधि के दौरान बच्चे की मांसपेशियां मजबूत होती हैं, चलने-फिरने और विभिन्न शारीरिक गतिविधियों की क्षमता विकसित होती है। मानसिक विकास की दृष्टि से यह समय जिज्ञासा, अन्वेषण और रचनात्मकता का होता है।

बच्चों के समग्र विकास के लिए पारिवारिक परिवेश, पोषण, शिक्षा और समाज का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। यदि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सही मार्गदर्शन, पोषण और शिक्षा प्रदान की जाए, तो बच्चा बेहतर भविष्य की ओर अग्रसर हो सकता है।

इस प्रस्तावना के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था का विकास केवल व्यक्तिगत ही नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए भी महत्वपूर्ण है। अतः इस विषय पर गहन अध्ययन और जागरूकता आवश्यक है, ताकि बच्चों को उनके उज्जवल भविष्य की ओर सही दिशा दी जा सके।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- प्रारंभिक बाल्यावस्था में होने वाले विकास को समझेंगें।
- प्रारंभिक बाल्यावस्था में होने वाले विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को समझेंगें।

2.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था के विकास

2.3.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास

क्रियात्मक विकास को चालक विकास, गति विकास या गत्यात्मक विकास भी कहते हैं। क्रियात्मक विकास में विभिन्न क्रियात्मक योग्यताओं के विकास तथा कौशलों के विकास का अध्ययन किया जाता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था के अन्त तक बालक अपनी अधिकांश मांसपेशियों की गतियों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है। बालक में क्रियात्मक योग्यताओं और क्रियात्मक कौशलों का विकास हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप बालक अपने आस पास के वातावरण में समायोजन करने लगता है। बालक का क्रियात्मक विकास कई गतिविधियों के माध्यम से होता है जैसे गेंद के खेल; गेंद फेंकना, गेंद को ठोकर मारना, गेंद पकड़ना, चलने तथा दौड़ने की क्रियायें, चढ़ना, कूदना, रस्सी कूदना तथा ऊचकने की क्रियायें, हाथों के कौशल जैसे मोती पिरोना, काटना, सीढ़ियाँ चढ़ना तथा उतरना आदि।

क्रियात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बालक और उसके वातावरण से सम्बन्धित कुछ प्रमुख कारक निम्न हैं, जो बालक के क्रियात्मक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं:-

1. **दुर्बल शारीरिक अवस्था:** बालक का शारीरिक स्वास्थ्य उसके क्रियात्मक विकास पर निर्भर करता है। अध्ययनों में देखा गया है कि जिन बच्चों का स्वास्थ्य अन्य बच्चों की अपेक्षा अच्छा होता है, वे शीघ्र कौशलों को सीखते हैं।
2. **शरीर रचना:** प्रायः अध्ययनों में यह देखा गया है कि जिन बच्चों की हड्डियाँ छोटी और पतली होती हैं तथा मांसपेशियां सुविकसित होती हैं, वे भारी शरीर वाले बच्चों की अपेक्षा जल्दी सीखते हैं। बालकों के शारीरिक अंगों का अनुपात सामान्य होने पर ही क्रियात्मक विकास सामान्य ढंग से होता है।
3. **रोग:** क्रियात्मक योग्यताओं का विकास बालक की बीमारी से भी प्रभावित होता है। जो बालक लम्बी अवधि तक रोगग्रस्त रहते हैं, उन्हें बीमारी की अवधि में कौशलों को सीखने का अवसर नहीं मिल पाता, वह अभ्यास भी नहीं कर सकते हैं। अतः वह पीछे रहे जाते हैं।
4. **आहार:** क्रियात्मक योग्यताओं के विकास के लिए आवश्यक है कि बालक को उचित मात्रा में, समय पर और पौष्टिक भोजन प्राप्त होता रहे। उप्रयुक्त मात्रा में पौष्टिक भोजन ना प्राप्त होने पर मांसपेशियों का विकास रूक जाता है जिससे क्रियात्मक योग्यताओं का विकास देरी से होता है।
5. **कसे वस्त्रों का प्रयोग:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है, क्रियात्मक विकास शारीरिक अंगों की गतियों पर आधारित है, अतः अंगों की गतियाँ कम होने से बालक का क्रियात्मक विकास देरी से होता है। अतएव बालक के क्रियात्मक विकास को ध्यान में रखकर वस्त्रों का चयन करना चाहिए।
6. **व्यक्तित्व सम्बन्धी शीलगुण:** अध्ययनों में यह देखा गया है कि क्रियात्मक क्षमताओं का विकास एक बालक के शीलगुणों से भी प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए जिन बालकों में लज्जा, कायरता और निर्भरता होती है, वे अंतर्मुखी होते हैं। ऐसे बच्चे दूसरों से घुलमिल नहीं पाते, अतः अभ्यास व भय के अभाव में शारीरिक कौशलों को सीखने से वंचित रह जाते हैं। दूसरी ओर कुछ बच्चे तेज, बहादुर, आत्मनिर्भर और आक्रमक होते हैं। ऐसे बच्चे बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। ऐसे बच्चे कौशलों को जल्दी सीखते हैं।
7. **बुद्धि:** जिन बालकों का बौद्धिक विकास अवरूद्ध होता है, उनमें गत्यात्मक कौशल रूक जाता है।
8. **भय:** भय के कारण बालक क्रियात्मक क्रिया को दोहराने से घबराता है। डर के कारण जब वह सम्बन्धित कौशलों का अभ्यास नहीं करते हैं, तब वह उस कौशल को सीखने से वंचित रह जाते हैं। उन्हें चोट लगने का डर होता है, या फिर इस बात से डरते हैं कि कौशल सीखना एक जोखिम भरा काम है।
9. **मांसपेशीय नियन्त्रण के विकास के अवसर का अभाव:** अधिकतर आधुनिक घरों में देखा गया है कि कुछ माता पिता अपने बच्चों को हर समय गोद में रखते हैं, वह उन्हें जमीन

पर नहीं उतारते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें जमीन पर सरकने, बैठने, खिसकने का अवसर प्राप्त नहीं होता है परिणाम स्वरूप उनमें बैठने, खिसकने, चलने जैसी क्रियात्मक योग्यताओं का विकास बहुत देरी से होता है। अतः माता पिता को चाहिए कि अपने बच्चों को जमीन पर खेलने, घूमने, उछलने कूदने आदि का पर्याप्त अक्सर दें, जिससे उनमें शारीरिक कौशलों का विकास समय से हो सके।

10. **सीखने के अवसर की कमी:** शारीरिक कौशलों का विकास इस बात पर भी निर्भर करता है कि बालक को इन कौशलों को सीखने के कितने अवसर प्राप्त हैं। जिन बालकों के पास साधन और स्थान आदि का अभाव है वे अच्चे कौशलों को सीखने से वंचित रह जाते है।

11. **खेल का महत्व:** बालक में खेल के माध्यम से क्रियात्मक कौशलों का विकास होता है। यह कौशल वह अन्य बालकों के साथ खेलकर सीखता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अपने खेल के साथियों को अधिक महत्व देने लगता है। अतएव क्रियात्मक विकास प्रक्रिया का निर्देशन खेल के द्वारा भी किया जाता है।

2.3.2 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में परिवार के बाद घर के बाहर पड़ोस, खेल समूह व विद्यालय आदि का बालक के सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था सामाजिक विकास की टोली पूर्व (Pre gang) अवस्था है। लगभग तीन चार वर्ष की अवस्था में बालकों में सामूहिक खेल प्रारम्भ हो जाते हैं। इस अवस्था के बाद बालक की आयु जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है, उनमें मित्रता के व्यवहार बढ़ते जाते है तथा छीना छपटी और मारपीट के सम्बन्ध कम होते चले जाते हैं। इस अवधि में बालकों में जो सामाजिक अभिवृत्तियाँ निर्मित होती हैं, वही आगे तक बनी रहती हैं। जो बालक इस अवधि में स्कूल जाना प्रारम्भ कर देते हैं, उनमें सामाजिक विकास अन्य बच्चों की अपेक्षा तीव्र गति से होता है। बालक की आयु अन्य बालकों से छोटी होने पर यदि उसे अन्य बालकों द्वारा तंग किया जाता है, इस कारण भी उसका सामाजिक विकास होता है, क्योंकि इस विकास में क्रियात्मक रूप से समायोजन होता है। समायोजन द्वारा ही बालक का आन्तरिक व बाह्य सामाजिक विकास सम्भव है।

पूर्वबाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के कुछ प्रकार

1. **आक्रामकता:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चों का व्यवहार कुछ मात्रा में आक्रमक होता है। बच्चों में आक्रामक व्यवहार माता पिता के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार, अधिक ध्यान आकर्षित करने की इच्छा, ईर्ष्या व उसके आवश्यक लक्ष्य में व्यवधान उत्पन्न करने के कारण होता है।

2. **झगड़ा:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था के लगभग 3-4 वर्ष की आयु तक झगड़ा करना अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। बच्चों में झगड़ा खिलौने छीनने, नोंचने, काटने, गन्दे शब्द बोलने, धक्का देने तथा चिल्लाने आदि के कारण प्रारम्भ होता है। लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक झगड़ा करते हैं।
3. **चिढ़ाना:** चिढ़ाने के द्वारा बालक दूसरे बालक को क्रोधित करता है। अधिकांशतः यह देखा गया है कि बालक अपने से कमजोर या फिर छोटे बालक को चिढ़ाता है।
4. **निषेधात्मक व्यवहार:** तीन वर्ष का बालक निषेधात्मक व्यवहार में बड़ों की आज्ञा की अवहेलना करता है। पाँच छः वर्ष की अवस्था में यह व्यवहार चरम सीमा तक पहुँच जाता है। इस अवस्था में बालक निषेधात्मक व्यवहार में मौखिक व्यवहार को अधिक अपनाता है।
5. **सहयोग:** दो या अधिक बालकों का समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास सहयोग कहलाता है। तीन वर्ष के बालक में सहयोग भावना कम होती है। लगभग पाँच से छः वर्ष का बालक सहयोग का अर्थ समझने लग जाता है। अधिकांशतः बालक सहयोग करना सामूहिक खेलों से सीखते हैं।
6. **ईर्ष्या:** तीन से चार वर्ष की आयु में ईर्ष्या के लक्षण उत्पन्न होते हैं। तीन से छः वर्ष की आयु के बच्चे ईर्ष्या के कारण अपने आप को दूसरों से बेहतर सिद्ध करने में लगे रहते हैं।
7. **उदारता:** इस अवस्था के बालक उदारता किसी ना किसी मॉडल से सीखते हैं। इस मॉडल का अनुकरण करके वे उदारता तब सीखते हैं जब उन्हें उसका सफल अनुकरण करने पर अनुमोदन मिल जाए। कई बार बच्चे उदाहरता उस समय भी सीख जाते हैं जब उन्हें उदारता के लक्षणों को अपनाने का पुरस्कार मिलता प्रतीत होता है।
8. **सामाजिक अनुमोदन की इच्छा:** बालक को सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के साथ प्रसन्नता और आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। छोटा बालक अपरिचित लोगों से शर्माता है परन्तु बड़ा बालक अपरिचित लोगों से अनुमोदन प्रापत करना चाहता है।
9. **आश्रितता:** लगभग 3 से 4 वर्ष का बालक अपने साथी समूह में आश्रित होने लगता है। बालक में आश्रित रहने की आदत का विकास अपने घर से होता है।
10. **मित्रता:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अपने ही भाई बहनों को मित्र बनाना चाहता है। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में पड़ोस के बच्चे भी मित्र बनने लगते हैं। अध्ययनों में देखा गया है कि बालिकाएं बालकों की अपेक्षा अधिक मित्रवत होती हैं तथा उनकी मित्रता में स्नेह प्रदर्शित होता है।
11. **सहानुभूति:** सहानुभूति में एक बालक का अन्य बालक के साथ समान संवेगों का प्रदर्शन होता है। चार वर्ष की अवस्था के अन्त तक बालकों में सहानुभूति के लक्षण देखे जा सकते हैं। बच्चों में भाषा के द्वारा भी सहानुभूति का प्रदर्शन होता है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य: प्रायः जिन बालकों का शरीर सुन्दर व सुगठित होता है वे विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन कर लेते हैं क्योंकि उन्हें सामाजिक विकास के अवसर प्राप्त होते हैं जिससे उनका सामाजिक विकास भी अच्छा होता है। इसके ठीक विपरीत जो बालक रंग रूप में भद्दे , बेडौल, गूंगे, बहरे अथवा अंधे आदि होते हैं, तो उनके साथ अन्य बच्चे खेलना पसन्द नहीं करते हैं, न ही मित्रता पसन्द करते हैं जिससे उन्हें सामाजिक विकास के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसा बालक अन्य बालकों से सामाजिक विकास में पिछड़ जाता है।

परिवार: परिवार भी बालक के सामाजिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। छोटे परिवारों में बच्चों को अधिक लाड प्यार तो मिलता ही है साथ ही उनकी देखभाल भी अच्छी होती है। इस अवस्था में उनमें सद्गुणों के विकसित होने की तथा सामान्य सामाजिक विकास होने की सम्भावना अधिक होती है। बड़े परिवार में बच्चों का लाड प्यार और देखभाल उतनी नहीं हो पाती है परन्तु उन्हें अन्य बच्चों के व्यवहार के अनुकरण के अवसर अधिक प्राप्त हो जाते हैं। फलस्वरूप उनका सामाजिक विकास शीघ्र तो होता है परन्तु उन बच्चों के अनुरूप होता है जिनके व्यवहार का अनुकरण किया गया है।

पड़ोस और विद्यालय: बालक के सामाजिक विकास में पड़ोस व विद्यालय की भी अहम भूमिका होती है । बालक के पड़ोस के व्यक्तियों व बच्चों के माध्यम से बालक में सामाजिक विकास होता है। विद्यालय में शिक्षकों, व मित्रों के द्वारा बालक का सामाजिक विकास होता है।

मनोरंजन: बालक को जितनी अधिक मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएं उपलबध होती हैं उतना ही बालक के खेलने, घूमने फिरने तथा मित्रों में व्यक्त होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं जो कि बालक को प्रसन्नचित रखने में सहायक होते हैं। प्रसन्नचित रहने के कारण बालक का सामाजिक विकास अच्छा होता है।

व्यक्तित्व: प्रायः यह देखा गया है कि जिन बालकों में हीनता की भावनाएं व आत्मविश्वास की कमी होती है उनका सामाजिक विकास अवरूद्ध हो जाता है।

संवेगात्मक विकास: जिन बालकों में विनोदप्रियता व हंसमुखता का गुण विद्यामान होता है उनके साथी समूहों की संख्या अधिक होती है जिससे उनका सामाजिक विकास अच्छा होता है।

हीनता की भावना: अधिकांशतः जिन बालकों में हीनता की भावना पायी जाती है वे समाज से कटे रहते हैं तथा किसी से मिलना जुलना पसन्द नहीं करते हैं। इस कारण उनमें आत्मविश्वास की कमी आ जाती है जिससे सामाजिक विकास में अवरुद्धता आ जाती है।

साथी समूह: बालकों की मित्र मण्डली जितनी अधिक होती है उनका सामाजिक विकास उतना ही विस्तृत होता है।

2.3.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

संवेगशीलता का समय प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बढ़ता है जिसमें मचलना, तीव्र भय, ईर्ष्या का रूप अधिक होता है। इस समय संवेगों का विविक्तिकरण अधिक होता है जिससे बालक के भाव को पहचानना आसान होता है। बालक में तीव्र संवेगात्मकता निम्न कारणों से हो सकती है:-

- मेहनत के साथ बहुत समय तक खेलते रहने से या क्रियात्मक कार्य करने से थकान।
- मन के विरूद्ध कार्य होने पर थकान।
- भोजन कम ग्रहण करने पर थकान।

संवेगशीलता के अन्तर: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भिन्न-भिन्न बालकों या फिर एक ही बालक में भिन्न समयों में संवेगशीलता में भिन्नता का कारण बालक का स्वास्थ्य और पर्यावरण में अन्तर होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में जिस बालक की सभी आवश्यकताएं पूरी कर दी गयी हों व शान्त वातावरण में रहा हो, वह बड़ा होने पर तीव्र संवेग उस बालक की अपेक्षा कम प्रदर्शित करेगा जिसकी प्रारम्भिक बाल्यावस्था में आवश्यकताएं ना पूरी की गयी हों। इसके अतिरिक्त लिंग व जन्मक्रम संख्या का बालक की संवेगशीलता पर प्रभाव पड़ता है।

सामान्य संवेग

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में जिन संवेगों का अनुभव होता है वे निम्न हैं:

1. **क्रोध:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रोध सबसे अधिक आमान्य संवेग होता है।
2. **भय:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक बड़े बालकों की अपेक्षा चीजों से अधिक डरता है। जैसे जैसे बालक का बुद्धि विकास होता है वो खतरों को पहचानने लगता है। छोटे बालकों के भय के अनेक आधार हो सकते हैं। जैसे डरावनी कहानियाँ, तस्वीरें, रेडियों से आने वाली ध्वनियाँ, टेलीविजन के प्रोग्राम आदि। सामान्यतः घर के सदस्य जिन चीजों से डरते हैं बालक भी उन चीजों से सामान्यतः डरता है। बालक के अप्रिय अनुभवों में से भी भय उत्पन्न होता है। जैसे दांतों के डॉक्टर से भय, इंजेक्शन से भय आदि।
3. **ईर्ष्या:** ईर्ष्या संवेग की उत्पत्ति सामाजिक परिस्थितियों के कारण होती है। ईर्ष्या परिचित एवं अपरिचित दोनों प्रकार के व्यक्तियों से हो सकती है। ईर्ष्या के कारण बालक का अपने माता पिता में से किसी एक के प्रति अधिक झुकाव होने लगता है। बालक में अन्य चीजों के प्रति

रूचि बढ़ने से ईर्ष्या प्रायः कम होती जाती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ईर्ष्या क्रोध के समान होती है। ईर्ष्या के कारण बालक में अनेक व्यवहारों का जन्म होता है। जैसे अंगूठा चूसना, नाखून काटना, खाने से इनकार करना, जिद करना, बीमारी का बहाना करना।

4. **जिज्ञासा:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक जो भी चीज देखता है उसके बारे में जानने की कोशिश करता है। बालक जब भी कोई चीज देखता है तो उससे सम्बन्धित प्रश्नों को पूछने लगता है जैसे "यह कैसे काम करता है"?, "यह कहाँ से आया है"? इत्यादि। बालक के दूसरे वर्ष से तीसरे वर्ष के बीच "सवाल पूछने की आयु" शुरू होती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक यह अधिक हो जाती है। जब बालक को अपने प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है तो वह शान्त हो जाता है। लेकिन जब बालक को संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलता या फिर उत्तर नहीं मिलता तो उसकी जिज्ञास कम हो जाती है। इस कारण अपनी आयु तथा बुद्धि स्तर वाले बालकों की अपेक्षा उसकी जानकारी सीमित रहती है।
5. **हर्ष:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक को कई बातों से हर्ष होता है। बालक नई खोजों से हर्षपूर्ण रहता है। बालक को हर्ष की अनुभूति तब भी होती है जब बालक की सफलताएं दूसरे बालकों की अपेक्षा ज्यादा होती हैं। बालक हर्ष में हंसना, मुस्कुराना, ऊँचे स्वर में खिलखिलाना, ताली बजाना, उछलना कूदना आदि अनुक्रियाएं करता है।
6. **स्नेह:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अपने परिजनों द्वारा दिये गये सुख एवं संतोष के कारण उनसे स्नेह करना सीखता है। यह एक सुख संवेग से सम्बन्धित है। छोटा बालक जानवरों, परिजनों, अन्य व्यक्तियों व निर्जीव वस्तुओं से भी वही स्नेह प्रकट करता है जो उसके परिजनों द्वारा उसके लिए किया जाता है। बालक के माता पिता जिस प्रकार उससे स्नेह करते हैं वह उस स्नेह को अपने घर के पालतू जानवरों व खिलौनों के साथ करने का प्रयास करता है। बालक का स्नेह उसके व्यवहार को प्रदर्शित करता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक स्नेहशील एवं व्यवहारिक होती हैं। छोटे बालक अन्य संवेगों की भाँति स्नेह को भी मर्यादित ढंग से प्रकट करते हैं। बालक स्नेह के कारण जिस भी वस्तु, व्यक्ति या चीज को चाहता है वह उसके साथ रहने के लिए अन्य संवेगों का सहारा लेते हैं जैसे रोना, सिसकते रहना, प्रिय व्यक्ति के साथ रहना व वस्तुओं से चिपटना आदि।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

यद्यपि बालकों का संवेगात्मक विकास परिपक्वता तथा अधिगम पर आधारित है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारक ऐसे भी हैं जिसके फलतः बालकों में संवेगात्मकता अधिक और कुछ में कम मात्रा में पायी जाती है। ये कारक निम्न हैं:

1. **शारीरिक स्वास्थ्य:** बालकों के स्वास्थ्य का सम्बन्ध सीधा उनकी संवेगात्मकता से है। जो बालक कमजोर, अस्वस्थ व बीमारियों से ग्रसित होते हैं उसमें संवेगात्मक अस्थिरता पायी जाती है। स्वस्थ बालकों में संवेगात्मक नियन्त्रण व स्थिरता भी अच्छी होती है।
2. **बुद्धि:** वैज्ञानिकों ने माना है कि जिन बालकों में बुद्धि सामान्य की तुलना में अधिक होती हैं उनमें संवेगात्मक स्थिरता अधिक पायी जाती है जबकि जिन बालकों की बुद्धि औसत से कम होती है उनमें संवेगात्मक स्थिरता व नियन्त्रण कम पाया जाता है।
3. **लिंग:** बालक तथा बालिकाओं में संवेगात्मक भिन्नता पायी जाती है। बालकों में भय का संवेग बालिकाओं की अपेक्षा कम होता है। जबकि ईर्ष्या की भावना बालिकाओं में अधिक पायी जाती है। प्रेम व स्नेह बालकों के बजाय बालिकाओं में अधिक होता है।
4. **बालक अभिभावक सम्बन्ध:** संवेगों को बालक अभिभावक सम्बन्ध भी प्रभावित करते हैं। जो माता पिता अपने बालक को अधिक प्रेम, स्नेह व देखभाल करते हैं उनके बच्चे माता पिता पर अधिक आश्रित होते हैं। जिस कारण बालक कम चिन्ता करने वाले परन्तु धिक क्रोधी हो जाते हैं। जो माता पिता अपने बच्चों के प्रति जितने अधिक सख्त होते हैं उनके बच्चे उतने ही दब्बू स्वभाव वाले और शीघ्र भयभीत होते हैं। जो माता पिता अपने बालक का तिरस्कार करते रहते हैं, उन बालकों में आक्रामकता व क्रोध जैसे लक्षण विकसित होते हैं।
5. **सामाजिक वातावरण:** सामाजिक वातावरण भी बालकों के संवेगों को प्रभावित करता है। बालक पर उसके निकट रहने वाले व्यक्तियों से उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति का प्रभाव पड़ता है। यदि बालक लड़ाई-झगड़ा व मारपीट वाले माहौल में रहता है तो बालक में क्रोध संवेग का विकास होता है, साथ ही वह झगड़ालू भी हो जाता है।
6. **जन्म क्रम:** बालक का जन्मक्रम भी बालक के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। माता पिता की पहली सन्तान को अधिक स्नेह व अतिसंरक्षण मिलता है। ऐसे बालक दूसरे बच्चे के आने पर ईष्यालु हो जाते हैं जिससे उनका स्वभाव क्रोधी हो जाता है।
7. **परिवार का आकार:** परिवार का आकार भी बालकों की संवेगात्मकता को प्रभावित करता है। जो बालक संयुक्त परिवार में रहते हैं उन बालकों में संवेगों का विकास तीव्र गति से होता है। जो बालक एकल परिवार में रहते हैं उनमें संवेगों का विकास धीमी गति से होता है क्योंकि एकाल परिवार वाले बालकों को संवेगों का अनुकरण करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हो पाते हैं।
8. **सामाजिक आर्थिक स्तर:** सामाजिक आर्थिक स्तर का भी बालकों के संवेगों पर प्रभाव पड़ता है। उच्च स्तर परिवार वाले बालकों में संवेगात्मक स्थिरता, मध्यम व निम्न स्तर वाले बालकों की अपेक्षा उच्च पाई जाती है।

9. **व्यक्तित्व:** प्रत्येक बालक का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है। कुछ बालक बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। कुछ अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। बर्हिमुखी बालकों में अन्तर्मुखी बालकों की अपेक्षा संवेगात्मक स्थिरता अधिक पायी जाती है।
10. **आत्म विश्वास:** कोई चीज जो बालक के आत्मविश्वास को कम करे या उसके आत्म सम्मान या उसके कार्य, जिसे वह करना चाहता है या उद्देश्य जिसे वह महत्वपूर्ण समझता है, से विचलित करे तो यह उसमें चिन्ता या भय की प्रवृति में वृद्धि कर सकती है।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान भरिए।

a. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास ..... से होता है।

b. उपयुक्त मात्रा में पौष्टिक भोजन ना प्राप्त होने पर ..... रूक जाता है।

c. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक जो भी चीज देखता है उसके बारे में जानने की कोशिश करता है, यह उसकी ..... प्रवृत्ति को दर्शाता है।

बोध प्रश्नों के पश्चात आइए हम संज्ञानात्मक विकास एवं भाषा विकास का अध्ययन करें।

2.3.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास

संज्ञानात्मक विकास वह आन्तरिक क्रियाएं हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान से है जिनके विकास से ही बालक के संज्ञान में विकास होता है। अतः संज्ञानात्मक विकास मानसिक क्रियाएं हैं।

जीन प्याजे के संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाओं में से पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2-7 वर्ष; Pre-Operational stage) में प्रारम्भिक बाल्यावस्था का वर्णन है जो कि निम्न है:

शिशु की 2-7 वर्ष की अवस्था पूर्व संक्रियात्मक अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में बालकों की मानसिक अभिव्यक्ति की योग्यता का काफी विकास होता है। इस अवस्था के बालक अपने पूर्व की सूचनाओं/विचारों/घटनाओं का प्रकाशन तो करते ही हैं, साथ ही नवीन विचारों/सूचनाओं का संग्रहण भी करते हैं। अब बालक स्वकेन्द्रित न रहकर समूह प्रेमी बनता है तथा दूसरों के सम्पर्क में आकार ज्ञान सीखता है। वह अपने विचारों का आदान प्रदान करना सीखता है।

यद्यपि प्याजे यह मानते हैं कि भाषा हमारी मानसिक अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त एवं महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके द्वारा हम अपनी सोच, चिन्तन, तर्क, विश्लेषण आदि को अभिव्यक्त कर सकते हैं और वातावरण में घटित होने वाली घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते हैं परन्तु वे यह नहीं मानते कि बालकों के संज्ञानात्मक विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। वे मानते हैं कि संवेदीप्रेरक अवस्था (sensorimotor stage) में ही बालकों के मन मस्तिष्क पर जिन वस्तुओं / घटनाओं का चित्र अंकित हो जाता है उन्हीं से वे शब्दों को जोड़ लेते हैं।

प्याजे का मानना है कि इस अवस्था के बालकों में संज्ञानात्मक परिपक्वता का अभाव पाया जाता है, इसी कारण वे समस्या के केवल एक ही पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित कर पाते हैं। वह वातावरण में घटित होने वाली कई घटनाओं को देखता है, समझता है और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। जैसे बालक आकाश में इन्द्रधनुष को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है परन्तु वह यह नहीं समझ पाता है कि आकाश में इतना सुन्दर सतरंगी इन्द्रधनुष का निर्माण किस प्रकार व कैसे हुआ है।

यद्यपि इस अवस्था का बालक सोच विचार कर कार्य करता है मगर वह एक तरफा सोचता है। यदि उसे खेलना अच्छा लगता है तभी वह खेलता है अथवा नहीं खेलता है। वह केवल अपने बारे में ही सोचता है और बातचीत में मैं, मेरा खिलौना, मेरा स्कल, मेरे मम्मी पापा, मेरा चॉकलेट, मेरा ड्रेस आदि की ही बात करता है। अतः बालक आत्मकेन्द्रित (Egocentric) होता है। वह दूसरों के भावों/ विचारों के बारे में सोचने में असमर्थ होता है।

संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. **आनुवंशिकता:** बालक की बुद्धि का विकास तीव्र या मन्द होना, इस आधार पर संज्ञानात्मक विकास निर्भर करता है। तीव्र वृद्धि बालकों का संज्ञानात्मक विकास मन्द बुद्धि बालकों की अपेक्षा तीव्र एवं अधिक मात्रा में होता है।
2. **ज्ञानेन्द्रियाँ:** जिन बालकों की ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा) जितनी अधिक विकसित होती हैं वे उतनी ही शीघ्रता से वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। ठीक इसके विपरीत जिन बालकों की ज्ञानेन्दियाँ जितनी कम विकसित होती हैं, वे वस्तुओं एवं उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण उतना ही देर से कर पाते हैं।
3. **परिपक्वता:** बालकों के मस्तिष्क एव नाड़ी संस्थान के तन्त्रिकाओं एवं कोशिकाओं में जब तक परिपक्वता नहीं आ जाती है तब तक उसमें तर्क, चिन्तन, स्मरण, अनुभव , वर्गीकरण, कल्पना, सृजन, विश्लेषण आदि क्षमताओं का विकास नहीं हो सकता है। वह वातावरण में उपस्थित विभिन्न वस्तुओं के बारे में प्रत्यक्षीकरण नहीं कर सकता है और न

ही वह उन्हें पहचान सकता है। इसी प्रकार वह अमूर्त वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता है।

4. **मानसिक योग्यता:** बालक की तर्क शक्ति, चिन्तन शक्ति, स्मरण शक्ति, सृजन शक्ति, विश्लेषण शक्ति, मानसिक योग्यता पर निर्भर करती है। वे अपनी मानसिक योग्यता से नवीन वस्तु का सृजन कर, मौलिक विचार प्रस्तुत कर लोगों को अचम्भित कर देते हैं व उनके चहेते बन जाते हैं।
5. **सीखने के अवसर:** उच्च आर्थिक एवं सामाजिक परिवार वाले बालकों का संज्ञानात्मक विकास निम्न आर्थिक एवं सामाजिक परिवार वाले बालकों की तुलना में अधिक होता है क्योंकि जिन बालकों को जितने अधिक सीखने के अवसर प्रदान किये जाते हैं उनमें उतना ही अधिक ज्ञान का विकास होता है।
6. **मस्तिष्क विकार:** बालक के मस्तिष्क में कोई दोष हो जाने, विकार उत्पन्न होने अथवा चोट लग जाने पर वह वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण ठीक से नहीं कर पाता है। उसके मस्तिष्क में उस वस्तु का सही प्रतिबिम्ब नहीं बन पाता है। इस कारण वह वस्तुओं के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता है।
7. **शारीरिक स्वास्थ्य:** जब बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ रहेगा तभी वह मानसिक रूप से भी स्वस्थ रह सकेगा और विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाओं को सम्पन्न करेगा। उसमें सोचने, समझने, चिन्तन करने, याद करने व विश्लेषण करने आदि शक्ति का विकास होग। अस्वस्थ बालक दुखी, उदास एवं खिन्न रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। ऐसी स्थिति में स्मरण, चिन्तन, तर्क आदि मानसिक क्षमताओं का विकास नहीं हो पाता है।
8. **बुद्धि:** तीव्र बुद्धि के बालकों की स्मरण, ध्यान एवं तर्क शक्ति अधिक होने के कारण संज्ञानात्मक विकास जल्दी होता है। वहीं मन्द बुद्धि बालकों में संज्ञानात्मक विकास देरी से होता है।
9. **समायोजन क्षमता:** संज्ञानात्मक विकास का समायोजन क्षमता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन बालकों का स्कूल, घर, परिवार व समाज के लोगों के साथ अच्छा समायोजन होता है, उनका संज्ञानात्मक विकास भी अच्छा होता है। इसके विपरीत जिन बालकों का समायोजन अपने घर परिवार, समाज व स्कूल के साथियों के साथ अच्छा नहीं होता उनमें ज्ञान का विकास कम होता है।
10. **आयु विभेद:** प्रारम्भ में नवजात शिशु अपने आस पास के वातावरण से अनभिज्ञ होता है परन्तु वह जैसे जैसे बड़ा होता है वैसे वैसे उसके ज्ञान का विकास होता जाता है। उम्र बढ़ने के साथ साथ बालक में चिन्तन, तर्क, स्मरण, विश्लेषण, ध्यान आदि मानसिक क्षमताओं का विकास होने लगता है। अतः आयु बढ़ने के साथ साथ बालकों में संज्ञानात्मक विकास भी बढ़ता है।

2.3.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास

भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव, विचार, अनुभव व तथ्य को दूसरे मनुष्य तक पहुँचाने के लिए प्रयोग करता है। परिवार से बालक का भाषा विकास प्रारम्भ होता है।

भाषा के कौशल सीखने के कार्य

1. **अर्थ भण्डार (Comprehension):** बालकों में अर्थ भण्डार का विकास भली प्रकार से होना चाहिए ताकि जब उसका स्कूल में प्रवेश हो तब उसके पास उतना अर्थ भण्डार हो कि वह अपरिचित लोगों की हिदायतें, शिक्षक की वाणी या जो कहानी उसे पढ़कर सुनायी जाती है, उसका सही अर्थ समझ सके। इसके लिए आजकल अनेक साधन उपलब्ध हैं जैसे टेलीविजन, रेडियो, कम्प्यूटर एवं वह खिलौने जो पढ़ना सिखाते हैं।
2. **शब्द भण्डार (Vocabulary Building):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शब्द भण्डार भी बढ़ता जाता है। सीशोर के एक अध्ययन के अनुसार, 4 वर्ष की आयु में 5600 शब्दों का एवं 5 वर्ष में 9600 शब्दों का विकास होता है। इस आयु में बालक संज्ञा के साथ साथ सर्वनाम तथा क्रियाओं का प्रयोग भी करता है। बालक विशिष्ट शब्दों को सीखने में रूचि लेता है। जैसे 'धन्यवाद' (Thank You), 'कृपया' (Please), 'मुझे खेद है' (I Am Sorry) आदि। इसके साथ बालक रंगों की पहचान भी करने लगता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक पर वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है। यदि उसके आस पास गाली गलौच व अभद्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो बालक बिना अर्थ जाने उन शब्दों का प्रयोग करने लगता है।
3. **वाक्य उच्चारण (Pronunciation):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में वाक्य उच्चारण सम्बन्धी काफी गलतियाँ होती हैं। बालक एकवचन व बहुवचन प्रयोग करने सम्बन्धी ज्यादा अन्तर नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त संज्ञा, क्रिया शब्दों में अन्तर नहीं समझ पाता है। बालक का घर पर, स्कूल जाकर, रेडियो व टेलीविजन आदि के द्वारा वाक्य उच्चारण विकसित होता है।
4. **वाक्य रचना (Sentence Formation):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में वाक्य रचना दो से तीन वर्ष की आयु से विकसित होने लगती है। पहले वाक्य अपूर्ण होते हैं जिन्हें बालक को बोलने में कठिनाई होती है तथा जब वह वाक्यों का प्रयोग करता है वह उन्हें विराम लेकर बोलता है। तीन वर्ष की आयु के बाद बालक की बोली में पूर्णवाक्य दिखने लगते हैं। छः वर्ष से वह लगभग सभी प्रकार की वाक्य रचना कर लेता है। यह वाक्य रचना बालक की बुद्धि पर निर्भर करती है।

भाषा के दोष

प्रायः भाषा सीखना या बोलना कठिन कार्य है। कुछ बालक, साफ साफ उच्चारण कर लेते हैं तथा कुछ बालक नहीं कर पाते हैं। बालक को सबसे ज्यादा कठिनाई एकवचन, बहुवचन, संज्ञा, सर्वनाम, परसर्ग, काल व अन्य व्याकरण सम्बन्धी होती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में मुख्य तीन प्रकार के भाषा विकार दृष्टिगत होते हैं:

1. **तुतलाना (Lisping):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में तुतलाना एक सामान्य दोष है। अस्थायी दाँतों के टूटने के बाद स्थायी दाँत निकलने के बीच के काल में दाँतो में रिक्तता होती है। ऐसी स्थिति में बालक तुतला कर बोलता है।
2. **अस्पष्ट उच्चारण (Slurring):** प्रारम्भिक बाल्यावास्था में बालक में अस्पष्ट उच्चारण के निम्न कारण हो सकते हैं:

- बालक में होंठ, जीभ और जबड़े की असन्तुलित क्रिया के कारण।
- बोलने में उत्तेजना के कारण।

3. **हकलाना (Stuttering):** हकलाना शब्दों, ध्वनियों का रूक रूककर दोहराया जाना है। जैस यदि हकलाने वाला बालक यह कहना चाहें 'आप क्या कर रहे हो', वह 'आप क्या कर' ही बोल पाता है। हकलाहट संवेगात्मक तनाव व घबराहट के कारण होता है। इसमें बालक का हिचकिचाना, शर्माना या कोई शब्द का ज्ञान पूर्ण रूप से ना होना आदि कारण होते हैं। दो से चार वर्ष की आयु में हिचकिचाना या दोहराते हुए बोलना लगभग सभी बालकों में होता है। पाँचवे व छठे वर्ष में हकलाहट का होना तेज हो जाता है। धीरे-धीरे हकलाहट का दोष कम होता जाता है। किसी किसी बालक में यह दोष आजीवन भी रह जाता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में यह दोष अधिक पाया जाता है।

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

प्रत्येक बालक के भाषा विकास में भिन्नता पायी जाती है। किसी बालक में भाषा विकास ज्यादा होता है तो किसी में कम होता है। भाषा विकास को प्रभावित करने वाले निम्न कारक हैं:

1. **परिपक्वता:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के भाषा विकास के लिए होंठ, जीभ, दाँत, फेफड़े, स्वरयन्त्र आदि में परिपक्वता होनी चाहिए। इनके साथ ही मस्तिष्क का विकास होना भी आवश्यक है। स्वास्थ्य: जो बालक अस्वस्थ रहते हैं उनका भाषा विकास शीघ्रता से नहीं होता है। जबकि जो बालक स्वस्थ एवं निरोगी होते हैं उनका भाषा विकास तीव्र गति से होता है।

2. **बुद्धि:** बालकों में बुद्धि एवं भाषा में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। कुछ अध्ययनों से निष्कर्ष निकाल है कि जिनमें बुद्धि कम होती है उनमें भाषा विकास भी कम होता है। उच्च बुद्धि वालों का भाषा विकास उच्च होता है।
3. **सामाजिक अधिगम के अवसर:** बैंडूरा और उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि बालक को भाषा सीखने के लिए जितने अधिक सामाजिक अवसर प्राप्त होते हैं, वह उतनी ही शीघ्रता से भाषा सीखता है।
4. **प्रेरणा:** यद्यपि बालकों को भाषा सीखने के अनेक अवसर मिलते हैं, फिर भी माता पिता उन्हें प्रेरित नहीं कर पाते हैं। जब बालक रोकर कोई वस्तु मांगे तो उसे नहीं देनी चाहिए। इससे वह शब्दों का उच्चारण सीखेगा। बालक को लगेगा कि बिना शब्दों के उच्चारण के कोई भी वस्तु नहीं मिलती है। इस प्रकार प्रेरणा भी बालक के भाषा विकास के लिए महत्वपूर्ण है।
5. **निर्देशन:** भाषा विकास के समय बालकों में निर्देशन की अति आवश्यकता होती है। भाषा विकास के लिए यह आवश्यक है कि बालक के समक्ष जो शब्द बोले जाएं उनके समक्ष उनके मॉडल भी प्रस्तुत किये जाएं। उदाहरण के लिए यदि बालक के समक्ष गुड़िया शब्द का उच्चारण किया जाता है तो उसके मस्तिष्क में गुड़िया की आकृति व गुड़िया शब्द बैठने लगता है जिससे वह जब भी वह गुड़िया देखता है तो गुड़िया शब्द के उच्चारण करने की कोशिश करता है।
6. **सामाजिक आर्थिक स्तर:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के भाषा विकास पर सामाजिक व आर्थिक स्तर का प्रभाव पड़ता है। जो बालक, उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं उनमें भाषा विकास अच्छा होता है, उनका उच्चारण शुद्ध होता है। इसके विपरीत जो बालक निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवार से सम्बन्ध रखते हैं उनका भाषा विकास अच्छा नहीं होता है। यदि वे भाषा का अनुकरण भी करते हैं तो गाली गलौच वाले शब्दों का अनुकरण अधिक करते हैं। लगभग पाँच वर्ष तक बालक में भाषा विकास पर सामाजिक आर्थिक स्तर का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है।
7. **लिंग:** मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा विकास लिंग भेद से प्रभावित होता है। समान आयु के बालक बालिकाओं में बालिकाओं का भाषा विकास जल्दी होता है। बालिकाओं में शब्द भण्डार तथा शुद्ध उच्चारण बालकों की तुलना में अधिक होता है।
8. **पारिवारिक सम्बन्ध:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के भाषा विकास में पारिवारिक सम्बन्धों का भी प्रभाव पड़ता है। जिन बालकों के अपने परिवार के साथ सम्बन्ध अच्छे होते हैं, उनका भाषा विकास जल्दी होता है। संयुक्त परिवार में रहने वाले बालकों का भाषा विकास शीघ्र होता हे। उनको सीखने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। इसके ठीक विपरीत

जिन बालकों के अपने परिवार के साथ सम्बन्ध अच्छे नहीं होते हैं उनका भाषा विकास निम्न होता है तथा प्रायः उन्हें सीखने के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं।

9. **व्यक्तिगत विभिन्नताएं:** वैज्ञानिकों के मतानुसार भाषा विकास पर व्यक्तिगत विभिन्नताओं का प्रभाव पड़ता है। बर्हिमुखी व उत्साही बालकों में भाषा विकास अन्तर्मुखी व शांत बालकों की अपेक्षा शीघ्रता से होता है।
10. **कई भाषाओं का प्रयोग:** जिन परिवारों में माता पिता कई भाषाओं का प्रयोग करते हैं वहाँ बालकों का भाषा विकास शीघ्रता से नहीं होता है क्योंकि माता पिता द्वारा बालकों के सामने एक ही वस्तु के लिए दो भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। दो अलग अलग शब्द याद रखना बालक के लिए मुश्किल कार्य हो जाता है जिससे बालक में उच्चारण सम्बन्धी दोष आ जाते हैं। इसलिए यदि परिवार में अधिक भाषाओं का प्रयोग हो रहा है तो बालक का भाषा विकास मन्द गति से होगा।

2.4 सारांश

प्रारम्भिक बाल्यावस्था बालक के जीवन में आने वाली विभिन्न अवस्थाओं में से एक है। इस अवस्था की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति एवं परिवार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। माता पिता को बालक की इस अवस्था के बारे में उचित जानकारी होने पर बालक का क्रियात्मक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास एवं भाषा विकास सामान्य तरीके से होता है। यदि उपरोक्त विकास की जानकारी नहीं हो तो बालक से सम्बन्धित ये विकास अवरूद्ध हो जाते हैं। बालक की इन विकास प्रक्रियाओं का ज्ञान अनेक माध्यमों से प्राप्त किया जा सकता है जैसे पुस्तक, टेलीविजन व पत्र पत्रिकायें इत्यादि। बालक का प्रत्येक विकास हर दूसरे विकास को प्रभावित करता है। अतः बालक का प्रत्येक विकास उचित रूप से विकसित होना अनिवार्य है। बालक का विकास बालक के भविष्य के व्यवहार को निर्धारित करते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अध्ययन से बालक के भाव, विचार व मनोवृत्ति का आसानी से पता लगाया जा सकता है जिससे उन समस्याओं का समाधान करने में आसानी होती है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

- **भाषा विकार:** वाणी में विकार होना।
- **संज्ञानात्मक विकास:** ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से उद्दीपकों को देखकर, सुनकर, सूँघकर, चखकर, छूकर अथवा अनुभूति द्वारा समझने का प्रयास।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. तीव्र गति
b. मांसपेशियों का विकास
c. जिज्ञासा

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल, डा0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास, अग्रवाल, पब्लिकेशन, आगरा -7।

2. प्रो0 कमलेश शर्मा, डॉ0 ललिता शर्मा, डॉ0 (श्रीमती) पुष्पा उपाध्याय, मानव विकास, स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा।

3. डॉ0 (श्रीमती) वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

4. डॉ0 प्रीति वर्मा, डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, बाल मनोविज्ञान बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

5. सुरेश भटनागर, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास की विशेषताएं बताइए तथा उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।

2. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

3. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास पर टिप्पणी कीजिए। विभिन्न भाषा विकारों का भी उल्लेख कीजिए।

इकाई 3: विशिष्ट व्यवहारों का समावेश

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जैविक लिंग (Sex) और लिंग (Gender) के बीच अंतर
3.4 लिंग संवेदीकरण (Gender sensitization)
1. लिंग संवेदीकरण का महत्व
2. लिंग संवेदीकरण की आवश्यकता
3. लिंग संवेदीकरण के लाभ
4. लिंग संवेदीकरण के उपाय
3.5 लैंगिक जागरूकता और लैंगिक समानता में विद्यालय की भूमिका
3.6 बच्चों में लिंग की भूमिका
3.7 बच्चों में लिंग की पहचान
3.8 लैंगिक रूढ़ियाँ
3.9 लैंगिक रूढ़िवादिता के नकारात्मक प्रभाव
3.10 सारांश
3.11 पारिभाषिक शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 संदर्भग्रंथ सूची
3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

समाज में समानता और न्याय सुनिश्चित करने के लिए लैंगिक संवेदनशीलता का समावेश अत्यंत आवश्यक है। लैंगिक संवेदनशीलता का अर्थ है व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को समझना, पहचानना और उसे समाप्त करने के लिए समुचित व्यवहार अपनाना है। यह केवल महिलाओं और पुरुषों तक सीमित नहीं है, बल्कि ट्रांसजेंडर, नॉन-बाइनरी और अन्य लैंगिक पहचानों को भी समान रूप से स्वीकार और सम्मान देने से संबंधित है।

वर्तमान समाज में कई क्षेत्रों जैसे शिक्षा, कार्यस्थल, परिवार और सार्वजनिक जीवन में लैंगिक असमानता देखने को मिलती है। ऐसे में, विशिष्ट व्यवहारों का समावेश करके लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देना आवश्यक है। इससे न केवल सामाजिक समरसता बढ़ेगी, बल्कि एक समावेशी और न्यायसंगत वातावरण भी तैयार किया जा सकेगा।

इस प्रस्तावना का उद्देश्य समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाले व्यवहारों को समझना और उन्हें अपनी दिनचर्या में शामिल करना है। जब प्रत्येक व्यक्ति अपने आचरण और सोच में लैंगिक संवेदनशीलता को स्थान देगा, तब समाज में एक सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलेगा। लिंग संवेदीकरण लैंगिक समानता संबंधी चिंताओं के बारे में जागरूकता बढ़ाकर व्यवहार में संशोधन के लिए रूढ़िबद्ध अवधारणा या विचार को बदलने की प्रक्रिया है। लिंग संवेदीकरण का तात्पर्य सभी व्यक्तियों के बीच लैंगिक समानता से जुड़े बुनियादी अधिकारों को स्वीकार करना है। लिंग संवेदनशीलता लिंग की परवाह किए बिना व्यक्ति के प्रति सम्मान पैदा करने में मदद करती है। लिंग संवेदीकरण के माध्यम से एक सौहार्दपूर्ण और सुखद वातावरण विकसित किया जा सकता है जहां यौन अनुमानों के बिना, लिंगों के बीच पारस्परिक सम्मान और विश्वास हो। एक बच्चे के शुरुआती पालन-पोषण में शिक्षक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके विचार और विश्वास छोटे बच्चों की विचार प्रक्रियाओं को बदल सकते हैं। प्रारंभिक वर्षों में बच्चे उन्हें सिखाए गए मूल्यों और गुणों का पालन करते हैं। शिक्षकों के लिए लिंग संवेदनशीलता प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। प्रशिक्षण उन्हें लड़कियों और लड़कों के बीच आपसी सम्मान और विश्वास पर आधारित वांछनीय दृष्टिकोण का प्रसार करने में सक्षम बनाता है। इस इकाई के अंतर्गत हम जैविक लिंग (सेक्स) और लिंग के बीच अंतर, लिंग संवेदीकरण, लैंगिक समानता और लिंग सम्बन्धी रुढियों के बारे में चर्चा करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात शिक्षार्थी निम्न बिन्दुओं को समझने में समर्थ होंगे:

- सेक्स (Sex) और लिंग (Gender) के बीच अंतर को समझेगें।
- लिंग संवेदीकरण के बारे में जानेगें।
- लिंग संवेदीकरण के लाभ के बारे में जानेगें।

3.3 जैविक लिंग (Sex) और लिंग (Gender) के बीच अंतर

जैविक लिंग (Sex): जैविक लिंग से तात्पर्य किसी व्यक्ति के शारीरिक, आनुवंशिक (genetic) और हार्मोनल (hormonal) विशेषताओं से होता है, जो उन्हें पुरुष, महिला या इंटरसेक्स के रूप में परिभाषित करता है। यह मुख्य रूप से निम्नलिखित कारकों पर आधारित होता है:

1. **क्रोमोसोम** – आमतौर पर पुरुषों में XY और महिलाओं में XX क्रोमोसोम होते हैं ।
2. **गोनाड्स (Gonads)** – पुरुषों में वृषण (Testes) और महिलाओं में अंडाशय (Ovaries) होते हैं।
3. **हार्मोनल प्रोफाइल** – टेस्टोस्टेरोन और एस्ट्रोजन जैसे हार्मोन व्यक्ति के यौन विकास और शारीरिक विशेषताओं को प्रभावित करते हैं।
4. **जननांग (Genitalia)** – बाहरी और आंतरिक जननांग संरचनाएं जैविक लिंग को निर्धारित करने में भूमिका निभाती हैं।

लिंग (Gender): लिंग एक सामाजिक और सांस्कृतिक अवधारणा है, जो समाज में व्यक्तियों की भूमिकाओं, अपेक्षाओं और पहचान को निर्धारित करती है। यह जैविक लिंग (Sex) से अलग है, क्योंकि जैविक लिंग जन्म के समय शरीर की शारीरिक संरचना (जैसे पुरुष या महिला) पर आधारित होता है, जबकि लिंग (Gender) समाज द्वारा निर्मित भूमिकाओं, व्यवहारों और पहचान का प्रतिनिधित्व करता है।

सारिणी1: जैविक लिंग और लिंग में अंतर

क्रमांक संख्या	विशेषता	जैविक लिंग (Sex)	लिंग (Gender)
1.	आधार	जैविक और शारीरिक	सामाजिक और मानसिक
2.	निर्धारण	जन्म के समय शरीर की विशेषताओं के आधार पर	व्यक्तिगत पहचान और सामाजिक मान्यताओं के अनुसार
3.	परिवर्तनशीलता	आमतौर पर जन्म के साथ तय होता है	समय और समाज के अनुसार बदल सकता है
4.	श्रेणियाँ	पुरुष, महिला, इंटरसेक्स	पुरुष, महिला, ट्रांसजेंडर, नॉन-बाइनरी आदि

3.4 लिंग संवेदीकरण (Gender sensitization)

लिंग संवेदीकरण का अर्थ है किसी व्यक्ति, समुदाय, या समाज को लिंग आधारित भेदभाव, असमानता और पूर्वाग्रहों के प्रति जागरूक करना। इसका उद्देश्य लोगों को यह सिखाना है कि लिंग (जैसे पुरुष, महिला, ट्रांसजेंडर आदि) के आधार पर किसी के साथ भेदभाव न किया जाए और सभी को समान अवसर व सम्मान मिले।

लिंग संवेदीकरण से तात्पर्य लैंगिक समानता संबंधी चिंताओं के प्रति बढ़ती संवेदनशीलता से है। यह लोगों को उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण और विश्वासों की जांच करने और दोनों लिंगों की वास्तविकताओं को जानने में मदद करता है। लिंग संवेदीकरण लोगों को लिंग और लिंग के बीच अंतर, सामाजिक रूप से लिंग का निर्माण कैसे होता है और लिंग भूमिकाओं के आसपास की रूढ़िवादिता को समझाता है। लैंगिक संवेदनशीलता की आवश्यकता संगठन में लैंगिक संवेदनशीलता के महत्व के बारे में कामकाजी पेशेवरों के बीच जागरूकता पैदा करना है। किसी विशेष लिंग की जरूरतों के प्रति संवेदनशील हुए बिना, कोई व्यक्ति विपरीत लिंग को समझने में विरत रह सकता है। लिंग सामाजिक रूप से सीखा गया व्यवहार है, जो पुरुषों और महिलाओं की सामाजिक अपेक्षा पर आधारित है। लिंग संवेदीकरण लिंग के बारे में एक स्पष्ट और सटीक दृष्टिकोण देता है और यह समझने में मदद करता है कि लिंग "महिलाओं" और "पुरुषों" के बारे में नहीं है, यह "लोगों" के बारे में है।

बदलते समय में लिंग संवेदीकरण बहुत महत्वपूर्ण है। महिला और पुरुष दोनों घर, कार्यालय और समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि दोनों समाज में मूल्यवान महसूस करें और एक शालीन जीवन जिएं। वेतन/ मजदूरी, संगठनात्मक संस्कृति आदि में अंतर के संदर्भ में लैंगिक असंवेदनशीलता और असमानता प्रमुख कारक हैं जो उत्पादकता में गिरावट का कारण बनते हैं और किसी संगठन में अनुपस्थिति और स्टाफ टर्नओवर दर में वृद्धि करते हैं। जब महिला और पुरुष दोनों एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति महसूस करते हैं, तो यह घर, कार्यस्थल और समाज में एक सकारात्मक संस्कृति का निर्माण करता है। लैंगिक संवेदनशीलता से लैंगिक न्याय, समानता और समावेशन को बढ़ावा मिल सकता है।

1.लिंग संवेदीकरण का महत्व

1. **समानता को बढ़ावा देना**: पुरुषों और महिलाओं के बीच भेदभाव को कम करता है।
2. **भेदभाव और हिंसा को रोकना:** घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर भेदभाव और दहेज जैसी समस्याओं को कम करता है।

3. **सामाजिक समावेशन (Social Inclusion):** ट्रांसजेंडर और अन्य लैंगिक अल्पसंख्यकों को मुख्यधारा में शामिल करने में मदद करता है।
4. **व्यक्तिगत और पेशेवर विकास:** महिलाओं और अन्य लिंग समूहों को समान अवसर देकर समाज को सशक्त बनाता है।

2. लिंग संवेदीकरण की आवश्यकता

लिंग संवेदीकरण समय की मांग है। दलते समय और बदलती लैंगिक भूमिकाओं के साथ, लैंगिक मुद्दों के बारे में जागरूकता फैलाना और एक सक्षम वातावरण बनाने के लिए प्रभावी कदम उठाना महत्वपूर्ण है जो सभी मनुष्यों की भावनाओं और विकल्पों के प्रति विचारशील हो।

लैंगिक रूढ़िवादिता को तोड़ने से पुरुषों और महिलाओं दोनों को सम्मानजनक जीवन जीने में मदद मिलेगी। लैंगिक असमानताएं छोटी उम्र से ही सीखी जाती हैं और वह भी विभिन्न स्तरों पर यानी स्कूल, घर/परिवार, समुदाय आदि में। इसलिए, लिंग संवेदीकरण एक दिन में नहीं हो सकता है और यह एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है, जिसके लिए लगातार प्रयासों की आवश्यकता है। लिंग संवेदीकरण में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चों को छोटी उम्र से ही लिंग के प्रति संवेदनशील बनाने में माता-पिता और शिक्षकों दोनों को अहम भूमिका निभानी होगी।

लिंग संवेदीकरण का उद्देश्य छात्रों, अभिभावकों और शिक्षकों को इस क्षेत्र के बारे में जागरूक करना है। यह लोगों को उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण और विश्वासों को जानने और उन वास्तविकताओं को पूछने में मदद करता है जिनके बारे में उन्हें लगता था कि वे जानते हैं। न्यायपरस्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि लोगों का लैंगिक संवेदीकरण होना चाहिए। चूंकि लिंग संवेदीकरण लोगों के अपने और अन्य लिंग के बारे में विचारों के प्रति सहानुभूति सिखाकर व्यवहार परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। भारत का संविधान देश के सभी नागरिकों को स्थिति और अवसर की समानता प्रदान करता है।

3. लिंग संवेदीकरण के लाभ

लिंग संवेदीकरण निम्नलिखित तरीकों से मदद कर सकता है:

- लिंग संवेदीकरण विपरीत लिंग के प्रति पारस्परिक सम्मान और सहानुभूति विकसित करता है।
- लिंग संवेदीकरण पुरुषों और महिला समुदायों के विपरीत हिंसा और अपराधों को कम करने में मदद कर सकता है।
- लिंग संवेदीकरण व्यक्तियों के दृष्टिकोण और मानसिकता को बदलने में मदद करता है।

- लिंग संवेदीकरण लिंग पूर्वाग्रहों को दूर करता है।
- लिंग संवेदीकरण लैंगिक समानता को आगे बढ़ाएगा।
- लिंग संवेदीकरण से महिलाओं की नौकरी में भागीदारी दर में सुधार होता है।
- लिंग संवेदीकरण एक अधिक समावेशी समाज का निर्माण करता है।
- लिंग संवेदीकरण महिलाओं को बेहतर निर्णय लेने की शक्ति देगा।
- लिंग संवेदीकरण व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद करता है।

4. लिंग संवेदीकरण के उपाय

- **शिक्षा और जागरूकता:** स्कूलों, कॉलेजों और कार्यस्थलों पर लिंग समानता पर आधारित कार्यशालाएँ आयोजित करना।
- **मीडिया और संचार का सही उपयोग:** टीवी, सोशल मीडिया और अन्य प्लेटफार्मों पर लिंग संवेदीकरण के विषय में सही संदेश फैलाना।
- **कानूनी सुधार और कार्यान्वयन:** लैंगिक भेदभाव और हिंसा के खिलाफ कानूनों को सख्ती से लागू करना।
- **सांस्कृतिक और पारिवारिक बदलाव:** बच्चों को लिंग समानता की शिक्षा देना और रूढ़िवादी सोच को बदलना।
- **महिला सशक्तिकरण:** महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और निर्णय लेने के अवसर देना।

3.5 लैंगिक जागरूकता और लैंगिक समानता में विद्यालय की भूमिका

विद्यालय छात्रों के लिए पहला समाज है और विद्यालय अपने छात्रों के बीच लैंगिक जागरूकता और लैंगिक समानता पैदा करने में एक आवश्यक भूमिका निभाता है। एक विद्यार्थी जीवन का बुनियादी पाठ विद्यालय में ही सीखता है। इसलिए शिक्षकों को छात्रों के बीच लिंग संवेदीकरण जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। सबसे पहले शिक्षकों के लिए लैंगिक समानता में विश्वास करना आवश्यक है और उन्हें इसे कक्षा में व्यवहार में लाना होगा। शिक्षकों को कक्षा में लड़कों और लड़कियों के साथ व्यवहार करते समय अपने व्यवहार के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। उन्हें छात्रों में विपरीत लिंग के प्रति समानता और सम्मान की भावना विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। लड़कियों और लड़कों दोनों को समान अवसर प्रदान करके और उनके लिंग के आधार पर भेदभाव न करके, शिक्षक लड़कियों और लड़कों के बीच एक-दूसरे के लिए पारस्परिक सम्मान विकसित कर सकते हैं। कक्षा की गतिविधियाँ या कक्षाओं में प्रतियोगिताएँ संयुक्त समूहों में की जानी चाहिए न कि लिंग के आधार पर। लड़कों और लड़कियों दोनों को एक

साथ काम करने और कक्षा में मैत्रीपूर्ण माहौल में एक साथ अध्ययन करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ताकि वे लैंगिक समानता के बारे में संवेदनशील हों और वे सामाजिक परिस्थितियों में दोनों लिंगों के महत्व को समझें। लड़कों और लड़कियों दोनों को एक-दूसरे की ताकत और कमजोरियों की सराहना और सम्मान करना सिखाया जाना चाहिए।

3.6 बच्चों में लिंग की भूमिका

बचपन से ही बच्चे अपने आसपास की दुनिया को समझने और सीखने की प्रक्रिया में होते हैं। इस सीखने की प्रक्रिया में लिंग (Gender) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। लिंग की अवधारणा समाज, संस्कृति, परिवार और मीडिया द्वारा बच्चों में विकसित होती है, जिससे वे यह समझते हैं कि लड़के और लड़कियों के लिए क्या अपेक्षित है।

लिंग केवल जैविक अंतर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक अवधारणा भी है। समाज लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग भूमिकाएँ तय करता है, जिससे उनकी सोच, पसंद-नापसंद, व्यवहार और रुचियाँ प्रभावित होती हैं।

3.7 बच्चों में लिंग की पहचान

शैशवावस्था (Infancy, 0-2 वर्ष) में बच्चे अपने आस-पास के लोगों के व्यवहार को देखकर सीखते हैं। माता-पिता और परिवार के सदस्य बच्चों के प्रति अलग-अलग प्रतिक्रिया देते हैं, जिससे उन्हें यह एहसास होता है कि लिंग आधारित पहचान होती है।

बचपन (Early Childhood, 3-6 वर्ष) में बच्चे लिंग आधारित भूमिकाओं को समझने लगते हैं। वे खिलौनों, कपड़ों और गतिविधियों में लिंग आधारित भेदभाव को अपनाने लगते हैं, जैसे कि लड़के कार और बंदूक जैसे खिलौने चुनते हैं, जबकि लड़कियाँ गुड़िया और किचन सेट पसंद करती हैं। बच्चे अपने माता-पिता, शिक्षकों और समाज से यह सीखते हैं कि "लड़कों को रोना नहीं चाहिए" या "लड़कियाँ कोमल होती हैं"।

बचपन के मध्यावस्था (Middle Childhood, 7-12 वर्ष) में बच्चे अपने लिंग की पहचान को और मजबूत करने लगते हैं। वे समाज के नियमों को स्वीकार करने लगते हैं और खुद को उसी रूप में ढालते हैं। इस समय वे अन्य बच्चों और समूहों के साथ अपनी लिंग आधारित पहचान को समझते और अपनाते हैं।

3.8 लैंगिक रूढ़ियाँ

लैंगिक रूढ़ियाँ (Gender Stereotypes) वे सामाजिक मान्यताएँ, धारणाएँ और अपेक्षाएँ हैं, जो पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं, क्षमताओं और व्यवहारों को लेकर बनाई जाती हैं। ये रूढ़ियाँ अक्सर समाज में गहराई से जमी होती हैं और व्यक्ति की स्वतंत्रता, आत्म-विकास और अवसरों पर प्रभाव डाल सकती हैं। लिंग रूढ़िवादिता महिलाओं और पुरुषों के व्यवहार और विशेषताओं के बारे में व्यापक रूप से प्रचलित धारणा है। महिलाओं को अक्सर भावुक, देखभाल करने वाली और सुरक्षा की ज़रूरत वाली के रूप में चित्रित किया जाता है। पुरुषों को अक्सर तर्कसंगत, करियर उन्मुख और मजबूत माना जाता है। लैंगिक रूढ़ियाँ जटिल हैं और स्थानीय संस्कृति और परंपराओं से उत्पन्न होती हैं। बच्चे अपने परिवार, दोस्तों, मीडिया, स्कूलों और धार्मिक निकायों सहित संस्थानों से सीखते हैं कि महिला और पुरुष व्यवहार क्या है। ये सामाजिक रूप से स्वीकृत और अक्सर अचेतन विचार शैशवावस्था में ही बनने लगते हैं।

3.9 लैंगिक रूढ़िवादिता के नकारात्मक प्रभाव

लैंगिक रूढ़िवादिता (Gender Stereotypes) समाज में पुरुषों और महिलाओं के लिए तय की गई परंपरागत भूमिकाओं, अपेक्षाओं और व्यवहारों को दर्शाती है। ये रूढ़ियाँ लोगों की स्वतंत्रता, आत्म-विकास और सामाजिक प्रगति में बाधा बन सकती हैं। इसके कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं जैसे व्यक्तिगत विकास में बाधा, शिक्षा और करियर के अवसरों पर प्रभाव, आर्थिक असमानता, घरेलू और सामाजिक असमानता, मानसिक और भावनात्मक विकास पर प्रभाव, हिंसा और भेदभाव को बढ़ावा। लैंगिक रूढ़ियाँ आत्म-धारणा, रिश्तों के प्रति दृष्टिकोण और काम की दुनिया में भागीदारी को प्रभावित करती हैं। स्कूल के माहौल में, लैंगिक रूढ़िवादिता एक युवा व्यक्ति के कक्षा अनुभव, शैक्षणिक प्रदर्शन, विषय चयन और कल्याण को प्रभावित कर सकती है। लड़कों और लड़कियों के बारे में हम जो धारणाएँ बनाते हैं, वे सचेत या अचेतन हो सकती हैं और इसके परिणामस्वरूप छात्रों के साथ उनके लिंग के आधार पर अलग-अलग व्यवहार किया जा सकता है।

3.10 सारांश

लिंग संवेदीकरण (Gender Sensitization) का अर्थ है लोगों में लिंग (Gender) से जुड़े सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यवहारिक पहलुओं को समझने और उनके प्रति संवेदनशीलता विकसित करने की प्रक्रिया। इसका उद्देश्य लैंगिक असमानता को समाप्त करना, महिलाओं, पुरुषों और अन्य लिंग पहचानों के प्रति समानता और सम्मान बढ़ाना है। विकास और शिक्षा दोनों में महिलाओं का समर्थन करने के लिए मजबूत राजनीतिक प्रतिबद्धता होनी चाहिए। इससे संबंधित,

नीति विकास को मजबूत महिला नेटवर्क और शिक्षकों और अभिभावकों जैसे अन्य प्रमुख हितधारकों की मांगों से सूचित और प्रभावित किया गया है। सभी समूहों के लिए कुंजी और सार्वभौमिक पहुंच के साथ, व्यापक नीतियां लागू की जाती हैं जो शिक्षा में लैंगिक असमानताओं के प्रमुख कारण से निपटती हैं। शिक्षा की सहायता से लिंग संवेदीकरण संभव है।

अभ्यास प्रश्न 1

दिये हुई कथन कथन के लिए सत्य /असत्य लिखिये।

1. लिंग जैविक लिंग से अलग है।
2. किसी व्यक्ति, समुदाय को लिंग आधारित भेदभाव, असमानता और पूर्वाग्रहों के प्रति जागरूक करना लिंग संवेदीकरण कहलाता है।
3. लिंग संवेदीकरण लैंगिक समानता को आगे नहीं बढ़ाता है।
4. लैंगिक रूढ़ियाँ वे सामाजिक मान्यताएँ, धारणायें और अपेक्षाएं हैं जो पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं, क्षमताओं और व्यवहारों को लेकर बनाई जाती है।
5. शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम द्वारा लिंग संवेदीकरण किया जा सकता हैं।

3.11 पारिभाषिक शब्दावली

1. **समाजीकरण:** यह एक जैविक प्राणी को सामाजिक प्राणी में बदलने की एक प्रक्रिया है। जन्म के समय शिशु एक जैविक इकाई होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में जैविक इकाई लिंग लक्षण प्राप्त कर लेती है।
2. **सामाजिक संरचना:** इसमें सामाजिक संस्थाएँ (उदाहरण के लिए परिवार, विवाह और रिश्तेदारी), सामाजिक प्रथाएँ (संस्कार और रीति-रिवाज) और सामाजिक प्रक्रियाएँ (समाजीकरण और आत्मसातीकरण/ आधुनिकीकरण) शामिल हैं।
3. **लैंगिक रूढ़ियाँ (Gender Stereotypes)**: लैंगिक रूढ़ियाँ पूर्वनिर्धारित धारणाएँ, मान्यताएँ या अपेक्षाएँ होती हैं जो समाज पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं, क्षमताओं और व्यवहारों को लेकर बनाता है।
4. **लिंग संवेदीकरण**: लिंग संवेदीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तियों को लिंग से जुड़े पूर्वाग्रहों, भेदभाव और असमानताओं के प्रति जागरूक किया जाता है। यह प्रक्रिया लोगों को यह समझाने में मदद करती है कि कैसे सामाजिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक धारणाएँ पुरुषों और महिलाओं (या अन्य लिंग पहचानों) के प्रति भेदभाव को जन्म देती हैं।

3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य

3.13 संदर्भग्रंथ सूची

1. Dosh, H. K.; Srinath, K and Sadangi, B.N. 2008 Gender Sensitization: Role in reforming the Society. National Research Centre for women in Agriculture. Retrieved on March 26, 2025 from https://icar-ciwa.org.in/gks/Downloads/Gender%20Notes/Gender%20Notes(1).pdf.
2. Qadri, S.R. 2024. Role of Gender Sensitization in Reforming the Society. Retrieved on March 26, 2025 from https://risingkashmir.com/role-of-gender-sensitization-in-reforming-the-society/.
3. Sharma, R. 2017. Gender Sensitization: An Appraisal of the Roles of Teachers and
4. Educational Institutions. *International Journal of Humanities and Social Science Invention*. 6(June):38-40. Retrieved on March 26, 2025 from https://www.ijhssi.org/papers/v6(6)/Version-4/G0606043840.pdf.

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. लैंगिक जागरूकता और लैंगिक समानता में विद्यालय की भूमिका का वर्णन कीजिये।
2. सेक्स और लिंग के बीच अंतर को बताइये।
3. लिंग संवेदीकरण का वर्णन कीजिये।

खंड II

अधिगम का दर्शनशास्त्र

इकाई 4 –अधिगम की अवधारणा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अधिगम का अर्थ और परिभाषाएँ
4.4 अधिगम की विशेषताएँ
4.5 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के सिद्धांत
4.5.1पेवलॉव का शास्त्रीय अनुबंधन सिद्धांत
4.5.2 स्किनर का प्रचालन अनुबंधन सिद्धांत
4.5.3 पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत
4.5.4 वाइगोत्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत
4.6 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के प्रकार
4.6.1 अनुकरण द्वारा अधिगम
4.6.2 प्रयोग एवं त्रुटि द्वारा अधिगम
4.6.3 खेल द्वारा अधिगम
4.6.4 अवलोकन द्वारा अधिगम
4.6.5 सामाजिक सहभागिता द्वारा अधिगम
4.6.6 अनुकूलन एवं आत्मसात द्वारा अधिगम
4.7 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
4.8 सारांश
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य के व्यवहारों में अधिगम की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह व्यक्ति के अनुभव के फलस्वरूप होने वाले व्यापक परिवर्तनों की श्रृंखला को दर्शाता है। अधिगम को हम अनुभवों के कारण व्यवहार में अथवा व्यवहार की क्षमता में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। अधिगम की प्रक्रिया की कुछ अपनी खास विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता

यह है कि अधिगम में सदैव किसी न किसी तरह का अनुभव सम्मिलित रहता है। हम एक घटना को बहुत बार एक निश्चित क्रम में घटित होते हुए अनुभव करते हैं। हम जान जाते हैं कि किसी खास घटना के तुरंत बाद कौन सी दूसरी घटनाएँ हो सकती है । उदाहरणार्थ, विद्यालय में घंटी बजने से छात्र समझ जाते हैं कि अब विद्यालय शुरू हो गया है। तेज दौड़ते समय यदि कोई बच्चा यदि गिर जाये तो एक ही बार के अनुभव से वह भविष्य में दौड़ते समय सावधान होना सीख लेता है।

अधिगम के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं। इनको व्यवहार में होने वाले उन परिवर्तनों से अलग पहचानना चाहिए जो न तो स्थायी होते हैं और न ही सीखे गए होते हैं। उदाहरणार्थ, थकान, औषधि, आदत आदि के कारण भी बहुधा व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। मान लीजिए, आप कोई पाठ्यपुस्तक कुछ समय से पढ़ रहे हैं या मोटरकार चलाना सीख रहे हैं, तो एक समय आता है जब आप थकान महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में आप पढ़ना या कार चलाना छोड़ देते हैं। व्यवहार में यह अस्थायी परिवर्तन थकान के कारण उत्पन्न हुआ है। इसे अधिगम नहीं माना जाता है।एक नवजात शिशु स्वचालित सहज क्रिया के साथ पैदा होता है। वयस्क हो जाने पर वह कई जटिल व्यवहारों को करने में समर्थ हो जाता है। यह केवल सीखने से ही सम्भव होता है। यह सीखने या अधिगम की प्रक्रिया निरन्तर और जीवन पर्यन्त चलती रहती है। बिजली का बल्ब जलने या मेज से किताब उठाने जैसे सरल व्यवहारों से लेकर कार या हवाई जहाज चलाने जैसे जटिल व्यवहार केवल सीखने की प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव हो पाते हैं। पिछली इकाइयों में आपने प्रारंभिक बाल्यावस्था और प्रारंभिक बाल्यावस्था के विकास के बारे में अध्ययन किया। इस इकाई में हम प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम की अवधारणा के बारे में चर्चा करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे:

- अधिगम का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रक्रिया को समझाने में।
- प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के सिद्धांन्तों की व्याख्या करने में।
- प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के प्रकारों को लिखने में।
- प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकोंका आंकलन करने में।

4.3 अधिगम का अर्थ और परिभाषाएँ

अधिगम (Learning) एक ऐसा मानसिक एवं व्यवहारिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अनुभव, अभ्यास एवं अध्ययन द्वारा ज्ञान, कौशल, रुचि, मूल्य एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है। यह

एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों से नई जानकारियाँ प्राप्त करता है और उन्हें व्यवहार में लाता है। अधिगम केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है।

अधिगम की परिभाषाएँ

क्रो एवं क्रो (Crow & Crow, 1973) –"अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभव या अभ्यास के परिणामस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है।"

गेट्स एवं अन्य (Gates, *et al.*) –"अधिगम अनुभवों के माध्यम से व्यवहार में परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जो अपेक्षाकृत स्थायी होती है।"

स्किनर (Skinner, 1953) –"अधिगम उस प्रक्रिया का नाम है जिसके द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है।"

हिलगार्ड (Hilgard, 1956) –"अधिगम एक अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन है, जो अभ्यास और अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में आता है।"

वुडवर्थ (Woodworth, 1945) –"अधिगम वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति पिछले अनुभवों के आधार पर नए अनुभवों को अपनाकर अपने व्यवहार को परिवर्तित करता है।"

4.4 अधिगम की विशेषताएँ

शिक्षार्थियों, अब आप अधिगम का अर्थ समझ गए होंगे। अब आप जानेंगे अधिगम की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित। अभिगम की निम्न विशेषताएँ हैं:

1. अधिगम एक सतत प्रक्रिया है:अधिगम जन्म से मृत्यु तक निरंतर चलता रहता है। व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों, अनुभवों और परिवर्तनों के आधार पर सीखता रहता है। उदाहरण: एकबच्चाजबबोलनासीखताहै, तो वह अपने आस-पास के लोगों की नकल करके शब्द बोलना शुरू करता है। बड़े होने पर वही बच्चा नई भाषाएँ, तकनीकी कौशल और सामाजिक व्यवहार सीखता है।

2. अधिगम व्यक्तिगत भिन्नताओं से प्रभावित होता है: प्रत्येक व्यक्ति की सीखने की शैली, मानसिक क्षमता, रुचि और पृष्ठभूमि अलग-अलग होती है। उदाहरण: कुछछात्रव्याख्यानसुनकरबेहतरसीखतेहैं, जबकि कुछ व्यावहारिक प्रयोगों के माध्यम से अधिक

प्रभावी ढंग से समझ पाते हैं। Gardner (1983) ने अपने "बहु-बुद्धिमत्ता सिद्धांत" में बताया कि प्रत्येक व्यक्ति की अधिगम शैली अलग होती है।

3. अधिगम व्यवहार में परिवर्तन लाता है:अधिगम का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। यह परिवर्तन सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है और यह स्थायी या अस्थायी भी हो सकता है।उदाहरण: यदिकोईबालक साइकिलचलानासीखताहै, तो वह शुरुआत में गिरता है, लेकिन धीरे-धीरे वह संतुलन बनाना सीख जाता है।

4. अधिगम अनुभवों पर आधारित होता है: व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है, वह उसके पिछले अनुभवों और पर्यावरण से प्रभावित होता है।उदाहरण: कोईविद्यार्थीअगरपहलेकिस विषय में असफलहोचुकाहै, तो वह भविष्य में वह विषय सीखने के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपना सकता है, जबकि सकारात्मक अनुभव उसे इस विषय में रुचि लेने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

5. अधिगम प्रेरणा पर निर्भर करता है: अधिगम की प्रभावशीलता व्यक्ति की आंतरिक और बाह्य प्रेरणा पर निर्भर करती है। उदाहरण: एकछात्रजिसेविज्ञानमेंरुचिनहींहै, लेकिन जब उसे अच्छे अंकों के लिए पुरस्कार दिया जाता है, तो वह अधिक मेहनत करने लगता है।मास्लो (1943) के अनुसार, "प्रेरणा अधिगम की प्रमुख कुंजी है, जो व्यक्ति को नए कौशल सीखने और आत्म-विकास के लिए प्रेरित करती है।"

6. अधिगम एक क्रियाशील प्रक्रिया है: सीखना केवल सुनने या देखने से नहीं होता, बल्कि इसे क्रियात्मक रूप से करने से अधिक प्रभावी होता है।उदाहरण: यदिकोईव्यक्तितैराकीसीखनाचाहताहै, तो केवल किताबें पढ़ने से उसे तैराकी नहीं आएगी। उसे पानी में उतरकर अभ्यास करना पड़ेगा।

7. अधिगम उद्दीपन और प्रतिक्रिया से प्रभावित होता है:व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, अधिगम उद्दीपन (Stimulus) और प्रतिक्रिया (Response) पर आधारित होता है।उदाहरण: जबकोईबच्चागर्मतवेकोछूताहैऔरउसकाहाथजलजाताहै, तो वह सीखता है कि अगली बार उसे सावधानी बरतनी चाहिए।पेवलॉव(1927) ने अपने क्लासिकल कंडीशनिंग सिद्धांत में यह सिद्ध किया कि अधिगम उद्दीपन और प्रतिक्रिया की प्रक्रिया पर आधारित होता है।

8. अधिगम बहुआयामी प्रक्रिया है: अधिगम केवल संज्ञानात्मक (Cognitive) स्तर पर नहीं, बल्कि यह भावनात्मक (Affective) और मनोवैज्ञानिक (Psychomotor) स्तरों पर भी कार्य करता है।इस बहुआयामी प्रक्रिया के तीन प्रकार है जैसे-

संज्ञानात्मक अधिगम: गणित की समस्याओं को हल करना।

भावनात्मक अधिगम: दूसरों के प्रति सहानुभूति विकसित करना।

मनोवैज्ञानिक अधिगम: नृत्य, खेल और कला जैसे कौशल सीखना।

अधिगम एक सतत, सक्रिय और बहुआयामी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के अनुभवों, अभ्यास और सामाजिक परिवेश से प्रभावित होती है। प्रेरणा, अनुभव और अभ्यास से अधिगम को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। अधिगम की प्रक्रिया को समझना शिक्षकों, अभिभावकों और समाज के सभी लोगों के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

कृपया निम्न कथनों में सही (✓) अथवा गलत (X)लिखिए।

1. अधिगम वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति पिछले अनुभवों के आधार पर नए अनुभवों को अपनाकर अपने व्यवहार को परिवर्तित करता है।
2. अधिगम (Learning) मानसिक एवं व्यवहारिक प्रक्रिया नहीं है।
3. अधिगम संज्ञानात्मक (Cognitive) स्तर पर नहीं, बल्कि यह भावनात्मक (Affective) और मनोवैज्ञानिक (Psychomotor) स्तरों पर भी कार्य करता है।

4.5 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के सिद्धांत

आपने अभी तक अधिगम की विभिन्न परिभाषाओं और विशेषताओं को जाना। अब आप जानेंगे अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में:

4.5.1पेवलॉवका शास्त्रीय अनुबंधन सिद्धांत

अधिगम के क्लासिकल अनुबन्धन सिद्धान्त का प्रतिपादन इवान पी० पेवलॉव (Ivan P. Pavlav) नामक रूसी मनोवैज्ञानिक ने किया था। इस सिद्धान्त को सीखने का अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त या अनुबन्धित-अनुक्रिया सिद्धान्त (Conditional Response Theory) भी कहा जाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति या जीव में कुछ जन्मजात प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ (Tendencies), प्रतिक्रियायें (Reactions) या अनुक्रियायें (Responses) होती है और ये प्रवृत्तियाँ, प्रतिक्रियायें या अनुक्रियायें किसी उपयुक्त प्राकृतिक उद्दीपक (Natural Stimulus) के उपस्थित होने पर प्रकट होती है। जैसे भूखे व्यक्ति के सामने भोजन आने पर मुंह में लार का आना या तेज शोर सुनने पर जीव का डर जाना प्राकृतिक या स्वाभाविक अनुक्रियायें हैं जिनका उपयुक्त उद्दीपक (भोजन या शोर) के

सामने होने पर व्यक्ति के द्वारा व्यक्त करना पूर्णतः स्वाभाविक है। पेवलॉव ने देखा कि जब किसी अन्य स्वाभाविक उद्दीपक (Unnatural Stimulus) को किसी स्वाभाविक उद्दीपक (Natural Stimulus) के साथ बार - बार प्रस्तुत किया जाता है तो धीरे-धीरे अस्वाभाविक उद्दीपक का स्वाभाविक उद्दीपक की स्वाभाविक अनुक्रिया के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है तथा बाद में केवल अस्वाभाविक उद्दीपक के प्रस्तुत होने पर व्यक्ति या जीव स्वाभाविक उद्दीपक की स्वाभाविक अनुक्रिया, जिसे अनुकूलित अनुक्रिया या अनुबंधित अनुक्रिया (Conditioned Response) कहते हैं, देने लगता है। तब कहा जाता है कि व्यक्ति या जीव के लिए कोई अस्वाभाविक उद्दीपक (Unnatural Stimulus) किसी अन्य स्वाभाविक उद्दीपक (Natural Stimulus) से अनुकूलित (Conditioned) हो गया है।पेवलॉवने अनुबंधित अनुक्रिया (Conditional Response) के अपने सिद्धांत को समझाने के लिए कुत्ते के ऊपर प्रयोग किया। उन्होंने कुत्ते की लार ग्रंथि का ऑपरेशन किया और कुत्ते के मुंह से लार एकत्रित करने के लिए एक नली के माध्यम से उसे एक कांच के जार से जोड़ दिया। इस प्रयोग की प्रक्रिया को आप निम्न तीन चरणों में समझा सकते है -

1. सर्वप्रथम पेवलॉव ने देखा की कुत्ते को भोजन (प्राकृतिक या स्वाभाविक उद्दीपक) दिखाते ही कुत्ते मुँह में लार आ गई। उन्होंने बताया कि भूखे कुत्ते के मुंह में भोजन देखकर लारा जाना स्वाभाविक क्रिया है। स्वाभाविक क्रिया को सहज क्रिया भी कहा जाता है। यह क्रिया उद्दीपक के उपस्थित होने पर होती है। भोजन एक प्राकृतिक उद्दीपक है जिसको देखकर लार टपकना एक स्वाभाविक क्रिया है।
2. दूसरे चरण में पेवलॉव ने कुत्ते को घंटी (कृत्रिम उद्दीपक) बजाकर भोजन दिया। भोजन को देखकर कुत्ते के मुंह में। लार का स्राव हुआ। इस प्रक्रिया में भोजन को देखकर लार आने की स्वाभाविक क्रिया को उन्होंने घंटी बजाने की कृत्रिम उद्दीपक से सम्बन्धित किया जिसका परिणाम स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में प्राप्त हुआ।
3. तीसरे चरण में उन्होंने कुत्ते को भोजन न देकर केवल घंटी बजाई। इस बार घंटी की आवाज सुनते ही कुत्ते के मुँह में लार आ गई। इस प्रकार अस्वाभाविक या कृत्रिम उद्दीपक से स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार का टपकना) प्राप्त हुई।

अब आप जान गए होंगे की उपर्युक्त प्रयोग में अस्वाभाविक या कृत्रिम उद्दीपक से स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार का टपकना) ही अनुकूलित-अनुक्रिया सिद्धान्त है। जैसे- खाने के विज्ञापन को देखकर बच्चों के मुँह से लार टपकना। उपरोक्त प्रयोग में जो क्रिया (लार का टपकना) पहले स्वाभाविक उद्दीपक से हो रही थी वो अब प्रयोग को बार बार दोहराने से अस्वाभाविक या कृत्रिम उद्दीपक से होने लग गई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि दो उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर कालांतर में नवीन उद्दीपक प्रभावशाली हो जाता है।

अनुबंधन की दशायें (Conditions for Conditioning)-

अधिगम के क्लासिकल अनुबंधन सिद्धान्त के अनुसार अस्वाभाविक अनुक्रिया के अनुकूलन के लिए अग्रांकित चार दशायें अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं:

1. स्वाभाविक उद्दीपक व अनुक्रिया का एक निश्चित क्रम होना चाहिए। पहले अस्वाभाविक उद्दीपक एवं तदुपरान्त स्वाभाविक उद्दीपक प्रस्तुत करना चाहिए तथा इसके उपरान्त अनुक्रिया होनी चाहिए। अस्वाभाविक उद्दीपक की प्रस्तुति के लगभग आधा सेकेण्ड के उपरान्त स्वाभाविक उद्दीपक को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि यह समय अन्तराल कम या अधिक होता है तो सीखना प्रभावशाली नहीं होता है।

2. स्वाभाविक उद्दीपक को अस्वाभाविक उद्दीपक से अधिक शक्तिशाली होना चाहिए। यदि अस्वाभाविक उद्दीपक अधिक शक्तिशाली होगा तो जीव स्वाभाविक उद्दीपक पर कोई विशेष ध्यान नहीं देगा।

3. अस्वाभाविक उद्दीपक को स्वाभाविक उद्दीपक के साथ अनेक बार दोहराना होता हैं, तब ही अनुबंधन होगा एवं अस्वाभाविक उद्दीपक में स्वाभाविक उद्दीपक के गुण आ पाते हैं।

4. अनुबंधन के समय उपयुक्त परिस्थितियाँ होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अनुबन्धन के समय कोई अन्य बाह्य अवरोध उपस्थित नहीं होना चाहिए।

अनुबन्धन के सिद्धान्त (Principles of Conditioning) -

क्लासिकल अनुबन्धन के सम्बन्ध में किये गये अनेक प्रयोगों ने अनुबंधन के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया। इनमें से कुछ निम्न है-

1. उत्तेजन (Excitation): अनुबंधित उद्दीपक (CS) को प्राकृतिक उद्दीपक (US) के साथ बार बार प्रस्तुत करने पर अनुबन्धन के फलस्वरूप प्राणी में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है जो उसे अनुबंधित अनुक्रिया (CR) करने के लिए तत्पर कर देता है।

2. विलोपन (Extinction): अनुबन्धन के उपरान्त जब अनुबंधित उद्दीपक (CS) के उपरान्त प्राणी को प्राकृतिक उद्दीपक (UCS) अनेक बार नहीं दिया जाता है तो धीरे - धीरे प्राणी अनुबन्धित अनुक्रिया (CR) करना बन्द कर देता है।

3. स्वतः पुनर्लाभ (Spontaneous Recovery): विलोपन के कुछ समयोपरान्त यदि प्राणी के समक्ष अनुबंधित उद्दीपक (CS) को पुनः प्रस्तुत किया जाता है तो कभी - कभी प्राणी अनुबन्धित अनुक्रिया (CR) को देना पुनः प्रारम्भ कर देता है।

4**. उद्दीपक सामान्यीकरण (Stimulus Generalization):** एक बार अनुबंधन स्थापित होने उपरान्त प्राणी अनुबंधित उद्दीपक (CS) से मिलते-जुलते (Similar) अन्य उद्दीपकों के प्रति भी प्रायः उसी ढंग से अनुक्रिया करता है।

5. उद्दीपक विभेदन (Stimulus Discrimination): अनुबंधन के प्रयासों की संख्या बढ़ाने पर प्राणी मूल अनुबंधित उद्दीपक (Original CS) तथा अन्य समान उद्दीपकों (Similar Stimulus) में धीरे धीरे विभेद करने लगता है।

6. बाह्य अवरोध (External Inhibition): अनुबंधन के दौरान यदि कोई नया उद्दीपक अनुबंधित उद्दीपक (CS) के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो पूर्व अनुबंधन की प्रक्रिया कुछ धीमी या अवरुद्ध (Inhibited) हो जाती है।

7. कालिक क्रम (Temporal Sequence): अनुबंधन के लिए अनुबंधित उद्दीपक (CS) तथा स्वाभाविक उद्दीपक (NS) के बीच समय अन्तराल के बढ़ाने पर अनुबन्धन कमजोर हो जाता है।

8. द्वितीय कोटि अनुबन्धन (Second Order Conditioning): किसी अनुबंधित उद्दीपक के साथ किसी अन्य अस्वाभाविक उद्दीपक (US) को बार- बार प्रस्तुत करने पर नवीन उद्दीपक अनुबंधित अनुक्रिया (CR) के लिए अनुबंधित हो जाता है।

9. पुनर्बलन (Reinforcement): अनुबंधन को पुनर्बलित करने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि अनुबंधित उद्दीपक (CS) के साथ - साथ स्वाभाविक उद्दीपक (NS) भी बीच - बीच में दिया जाता रहे।

क्लासिकल अनुबंधन सिद्धान्त के कुछ प्रयोगों को छोड़कर शेष सभी प्रयोग पशुओं या पक्षियों पर हुए थे, इसलिए ये प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में यथारूप उपयोगी नहीं हो सकते हैं। इसके बावजूद भी इन सिद्धान्तों का उपयोग मानवीय व्यवहार को उन्नत करने में किया जा सकता है। जो निम्न है-

1. बच्चों को विभिन्न प्रकरणों को सिखाने में अनुबंधित अनुक्रिया का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। छात्रों को शब्दार्थ, गुणा, भागआदि विभिन्न बातों को सिखाते समय अध्यापक इस सिद्धान्त का प्रयोग कर सकता है।
2. बच्चों में लगभग सभी आदतों का निर्माण क्लासिकल अनुबन्धन सिद्धान्त के आधार पर किया जा सकता है। स्वच्छता व सफाई से रहने की आदत, समय की पाबन्दी, बड़ों का सम्मान करना जैसी अच्छी आदतें इसी सिद्धान्त का व्यावहारिक परिणाम हैं।
3. बुरी तथा अवांछित आदतों, भय तथा असामान्य व्यवहार आदि को समाप्त करने के लिए भी अनुबंधित अनुक्रिया सिद्धान्त का उपयोग किया जा सकता है।यदि अनुकूलन गलत हो गया तब व्यक्ति डर, घृणा, अन्धविश्वास जैसी अप्राकृतिक प्रतिक्रियायें कर सकता है।

4.5.2 स्किनर का प्रचालन अनुबंधन सिद्धांत

प्रख्यात अमेरिकी मनोवैज्ञानिक बुर्रुस फ्रेडरिक स्किनर (B.F. Skinner) ने 1930 के दशक में एक व्यवहारवादी सिद्धांत विकसित किया जिसे प्रचालन अनुबंधन कहा जाता है। यह सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि प्राणी अपने वातावरण के अनुसार व्यवहार करते हैं और उस व्यवहार के परिणाम उनके भविष्य के कार्यों को प्रभावित करते हैं।

इस सिद्धांत के कुछ मुख्य तत्व निम्न है:

1. प्रचालन व्यवहार (Operant Behavior):यह वह व्यवहार होता है जो किसी विशेष उद्दीपन (stimulus) के प्रभाव के बिना ही स्वेच्छा से किया जाता है। उदाहरणस्वरूप जब बच्चा खेलते समय खिलौना उठाता हैयह किसी विशेष संकेत के बिना किया गया कार्य है।

2. अनुबंधन (Reinforcement):अनुबंधन वह प्रक्रिया है जिससे किसी व्यवहार को दोहराने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

सकारात्मक अनुबंधन (Positive Reinforcement):जब किसी कार्य के पश्चात् सुखद परिणाम दिया जाता है। जैसे किसी छात्र को अच्छे अंक लाने पर इनाम देना।

नकारात्मक अनुबंधन (Negative Reinforcement):जब किसी अप्रिय स्थिति को हटाकर व्यवहार को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे किसी शोर हटाने के लिए व्यक्ति रेडियो बंद करता है।

3. दंड (Punishment):दंड वह प्रक्रिया है जिससे किसी अवांछित व्यवहार की पुनरावृत्ति को रोका जाता है।

सकारात्मक दंड (Positive Punishment):किसी अप्रिय परिस्थिति को जोड़ना, जैसे गलती पर डांटना।

नकारात्मक दंड (Negative Punishment):किसी सुखद वस्तु को छीनना, जैसे मोबाइल ले लेना।

4. अनुबंधन की अनुसूचियाँ (Schedules of Reinforcement):

स्किनर ने यह दर्शाया कि अनुबंधन देने का तरीका भी व्यवहार को प्रभावित करता है:

निरंतर अनुबंधन: हर बार सही व्यवहार पर इनाम।

आंतरायिक अनुबंधन: कुछ निश्चित समय या प्रतिक्रियाओं के बाद इनाम।

स्किनर के सिद्धांत का व्यावहारिक अनुप्रयोग:

शिक्षा: कक्षा में सकारात्मक अनुबंधन द्वारा छात्रों को प्रोत्साहित किया जाता है।

प्रशिक्षण: पशुओं को प्रशिक्षित करने के लिए व्यवहार के बाद इनाम दिया जाता है।

व्यवहार सुधार: अवांछित आदतों को दंड देकर कम किया जाता है।

स्किनर का सिद्धांत यह दर्शाता है कि व्यवहार का निर्माण केवल बाहरी पर्यावरण और उसके परिणामों के आधार पर होता है। यह सिद्धांत आधुनिक शिक्षा प्रणाली, व्यवहार चिकित्सा, तथा प्रबंधन में बहुत प्रभावशाली रहा है।

4.5.3 पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

स्विस मनोवैज्ञानिकजीन पियाजे पियाजे (Jean Piaget) ने बच्चों के मानसिक विकास और सोचने की प्रक्रिया को समझाने के लिए संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने यह पाया कि बच्चे किसी भी जानकारी को केवल याद नहीं करते, बल्कि वे सक्रिय रूप से सोचकर, पर्यावरण से अनुभव लेकर, अपने ज्ञान का निर्माण करते हैं।

मुख्यअवधारणाएँ (Key Concepts):

स्कीमा (Schema): मानसिक ढांचा जिसके जरिए हम दुनिया को समझते हैं। जैसे बच्चे के लिए "गेंद" का स्कीमा गोल और उछलने वाली चीज़ हो सकता है।

अनुकूलन (Adaptation): नया अनुभव पाने पर स्कीमा को बदलने या विस्तार करने की प्रक्रिया। इसमें दो बातें शामिल होती हैं:

समायोजन (Accommodation): पुराने स्कीमा को नया अनुभव पाने के बाद बदलना।

उदाहरण: बच्चा चाँद को "गेंद" समझता है, लेकिन फिर जानता है कि चाँद उछलता नहीं और वह नया स्कीमा बनाता है।

समासंजन (Assimilation): नए अनुभव को पुराने स्कीमा में फिट करना। उदाहरण: बच्चा संतरे को देखकर उसे "गेंद" कहता है।

संतुलन (Equilibration):सीखने की वह स्थिति जहाँ बच्चा अपने स्कीमाओं को संतुलित करता है – न बहुत ज़्यादा बदलना, न ज़्यादा ज्यों का त्यों रखना।

विकास कीअवस्थाएँ (Stages of Cognitive Development):

1. संवेदी-ग्राही अवस्था (Sensory motor Stage)आयु: जन्मसे 2 वर्ष तक

विशेषता:बच्चा अपनी इंद्रियों और शारीरिक गतिविधियों से दुनिया को समझता है।

उदाहरण: बच्चा जानता है कि खिलौना उस के सामने से हटने पर भी मौजूद है (object permanence)।

2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Preoperational Stage)आयु: 2 से 7 वर्ष तक

विशेषता: सोचकल्पनाशील होती है, लेकिन तर्क सीमित होता है।

उदाहरण: बच्चा सोचता है कि सूरज उसका पीछा कर रहा है या गुड़िया असलीहै।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage)आयु: 7 से 11 वर्षतक

विशेषता: बच्चा तर्क करना सीखता है लेकिन ठोस (concrete) चीज़ों पर। बच्चा धीरे-धीरे यह समझ जाता है कि पानी को किसी भी आकार के गिलास में डालो, मात्रा उतनी ही रहती है।

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage)आयु: 12 वर्षऔरआगे

इस अवस्था में बच्चा अमूर्त सोच (abstract thinking), कल्पना, और समस्याओं को हल करने की क्षमता विकसित करता है।उदाहरण: बच्चा"अगर पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण न होता, तो क्या होता?" जैसे सवालों पर विचार कर सकता है।

पियाजे का सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास चरणों में होता है, और हर स्तर पर वे अपने अनुभवों के माध्यम से सक्रिय रूप से सोच और समझ विकसित करते हैं। यह सिद्धांत शिक्षा, बाल विकास और पाठ्यक्रम-निर्माण में बहुत प्रभावशाली रहा है।

4.5.4 वाइगोत्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत

लिओ सेम्योनोविच वाइगोत्स्की एक रूसी मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने यह सिद्ध किया कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास केवल जैविक नहीं होता, बल्कि उसमें सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ की बड़ी भूमिका होती है। उनका मानना था कि बच्चे समाज और संस्कृति के साथ बातचीत के ज़रिए सोचने और समझने की क्षमता विकसित करते हैं।

मुख्यसिद्धांत (Key Concepts):

1. सांस्कृतिक उपकरण (Cultural Tools):इनमें भाषा, प्रतीक, कला, लेखन, और तकनीकी साधन शामिल हैं जो समाज बच्चों को सोचने और सीखने के लिए प्रदान करताहै।

उदाहरण:भाषा एक उपकरण है जो बच्चा सामाजिक संवाद के ज़रिए सीखता है और उसका उपयोग सोचने में करता है।

2. सामाजिक संवाद (Social Interaction):वाइगोत्स्की के अनुसार, सीखना पहले सामाजिक स्तर पर होता है, और बाद में वह आंतरिक रूप लेता है।उदाहरण: जब बच्चा गणित की कोई समस्या सुलझाते हुए शिक्षक से बातचीत करता है, तो वह उस प्रक्रिया को धीरे-धीरे खुद करने लगता है।

3. निकट विकास क्षेत्र (Zone of Proximal Development – ZPD):यह वह अंतर है जो बच्चे की वर्तमान क्षमता और संभावित क्षमता के बीच होता है, जिसे वह एक योग्य व्यक्ति (शिक्षक, माता-पिता या साथी) की मदद से सीख सकता है। उदाहरण: बच्चा अकेले जोड़ नहीं कर सकता, लेकिन शिक्षक की मदद से सीख जाता है।

4. स्कैफोल्डिंग (Scaffolding): यह वह सहायक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक या सक्षम व्यक्ति धीरे-धीरे सहायता देता है और जैसे-जैसे बच्चा दक्ष होता है, सहायता कम करता है। उदाहरण: पहले शिक्षक बच्चा पकड़ा-पकड़ाकर लिखवाता है, फिर उसे खुद लिखने को कहता है।उदाहरण: एक 5 साल का बच्चा जो अभी शब्द नहीं पढ़ पाता है, अपनी माँ के साथ किताब पढ़ता है। माँ हर शब्द को उच्चारित करती है, चित्र दिखाती है, और सवाल पूछती है। कुछ ही समय बाद, बच्चा इन शब्दों को पहचानने लगता है और धीरे-धीरे खुद पढ़ना शुरू कर देता है।यह प्रक्रिया ZPD और स्कैफोल्डिंग दोनों को दर्शाती है।

अभ्यास प्रश्न 2

नीचे दिए गए विकल्पों में से उपुक्त विकल्प चुनें-

1. अधिगम के क्लासिकल अनुबन्धन सिद्धान्त का प्रतिपादन _____नामक रूसी मनोवैज्ञानिक ने किया था।
   अ. इवान पी० पेवलॉव (Ivan P. Pavlav)
   आ. ब.फ्रेडरिक स्किनर (B.F. Skinner)
   स. पियाजे (Piaget)
   द. एरिक एरिक्सन (Erik Erikson)
2. _____ने एक व्यवहारवादी सिद्धांत विकसित किया जिसे प्रचालन अनुबंधन कहा जाता है।
   अ. एरिक एरिक्सन (Erik Erikson)
   आ. ब.फ्रेडरिक स्किनर (B.F. Skinner)
   स. इवान पी० पेवलॉव (Ivan P. Pavlav)
   द. पियाजे (Piaget)

3._____का सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास चरणों में होता है, और हर स्तर पर वेअपनेअनुभवों के माध्यम से सक्रिय रूप से सोच और समझ विकसित करतेहैं।

अ. फ्रेडरिक स्किनर (B.F. Skinner)
ब. पियाजे
स. इवान पी० पेवलॉव (Ivan P. Pavlav)
द. एरिक एरिक्सन(Erik Erikson)

4. _____में बच्चा अपनी इंद्रियों और शारीरिक गतिविधियों से दुनियाको समझता है।

अ. संवेदी-ग्राही अवस्था (Sensorimotor Stage)

ब. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage)

स.पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Preoperational Stage)

द.मूर्तसंक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage)

5. _____वह सहायक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक या सक्षम व्यक्ति धीरे-धीरे सहायता देता है और जैसे-जैसे बच्चा दक्ष होता है, सहायता कम करता है।

अ. सांस्कृतिक उपकरण (Cultural Tools)

ब. स्कैफोल्डिंग (Scaffolding)

स. निकट विकास क्षेत्र (Zone of Proximal Development)

द. सामाजिक संवाद (Social Interaction)

4.6 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के प्रकार

अभी तक आपने प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के सिद्धांतों को जाना।अब आप जानेंगे प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के प्रकार के बारे में।प्रारंभिक बाल्यावस्था (0-8 वर्ष) मानव विकास का आधारभूत चरण है। इस अवधि में बालक की मस्तिष्कीय संरचना तीव्र गति से विकसित होती है और वह अपने परिवेश से गहन रूप से प्रभावित होता है। अतः,अधिगम की प्रक्रियाओं को समझना न केवल शैक्षिक, बल्कि सामाजिक एवं भावनात्मक विकास के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।बाल्यावस्था ने कई प्रकार से सीखने की प्रक्रिया होती है जिनके निम्न प्रकार है-

4.6.1. अनुकरण द्वारा अधिगम

अनुकरण द्वारा अधिगम (Learning by Imitation):इसमें बालक स्वाभाविक रूप से दूसरों की क्रियाओं, भावों, और भाषा का अनुकरण करता है जो प्रारंभिक सामाजिक व्यवहार और भाषा विकास का आधार बनता है। जैसे जो बच्चा अपने माता-पिता को "धन्यवाद" कहते हुए देखता है और स्वयं भी धन्यवाद कहना सीखता है। इसलिए आवश्यक है की वयस्कों को आदर्श व्यवहार प्रस्तुत करना चाहिए और सकारात्मक आदतें जैसे कि सफाई, सम्मानपूर्वक बोलना बच्चों के समक्ष प्रदर्शित करना चाहिए।

4.6.2. प्रयोग और त्रुटि द्वारा अधिगम (Learning by Trial and Error)

अधिगम के इस प्रकार में बालक बार-बार प्रयास करता है और अपनी गलतियों से सीखता है। इस अधिगम में सफल व्यवहार पुनः प्रकट होता है, जबकि असफल व्यवहार छूट जाता है (Thorndike

का 'Law of Effect' सिद्धांत)। जैसे बच्चा जूते पहनने का प्रयास करता है, कई बार गलत जूता पहनने के बाद सही ढंग से पहनना सीखता है। इसलिए आवश्यक है की बच्चों को सुरक्षित वातावरण में स्वतंत्र प्रयास करने देना चाहिए। ताकि वे अपनी त्रुटियों से सीखे और विफलता को सीखने के अवसर के रूप में देखें।

4.6.3.खेल के माध्यम से अधिगम (Learning through Play)

बाल्यावस्था में खेल स्वाभाविक, आनंददायक और प्रेरक अधिगम गतिविधि है जो संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावनात्मक और भौतिक विकास को समेकित करता है। जैसे ब्लॉक से घर बनाते हुए बच्चा आकार, संतुलन और रचनात्मकता सीखता है। खेलों द्वारा अधिगम को बढ़ावा देने के लिए गतिविधि आधारित शिक्षण (Activity-Based Learning) को बढ़ावा देना। साथ ही कल्पनाशील (Pretend) और संरचित (Structured) खेलों को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए।

4.6.4 अवलोकन के माध्यम से अधिगम (Learning through Observation)

अवलोकन के माध्यम से अधिगम में बच्चा पर्यावरण और अन्य व्यक्तियों के कार्यों का सूक्ष्म अवलोकन कर सीखता है और यह प्रक्रिया आत्म-नियमन और सामाजिक सीख का आधार बनती है। यदि बच्चा देखता है कि बड़ों द्वारा लाइन में खड़ा होना अनुशासन का प्रतीक है और स्वयं भी अनुशासन में रहना सीखता है। अवलोकन के लिए आवश्यक है कि पर्यावरण को ऐसा बनाना जो बच्चे के लिए व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करे। समूह गतिविधियों में अवलोकन सीखने के कई अवसर प्रदान करना।

4.6.5सामाजिक सहभागिता के माध्यम से अधिगम(Learning through Social Interaction)

सामाजिक सहभागिता के माध्यम से अधिगम के दौरान बच्चों के बीच बातचीत, सहयोग और साझा गतिविधियाँ सीखने की प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं। जिससे भाषा, भावनाओं और सामाजिक कौशल का विकास होता है। आपने देखा होगा की समूह में पहेली हल करते समय बच्चे विचार-विमर्श करना और सहयोग करना सीखते हैं। इसलिए आवश्यक है की बच्चों को संवाद और समूह कार्यों में भाग लेने के अवसर देने चाहिए।

4.6.6 अनुकूलन और आत्मसात द्वारा अधिगम (Learning through Adaptation and Assimilation)

इस अधिगम के दौरान बच्चा नये अनुभवों को अपनी मौजूदा समझ में जोड़ता है या फिर आवश्यकतानुसार अपनी समझ का पुनर्गठन करता है।बच्चा जिसे पहले सभी आकार समान लगते है धीरे- धीरे उन्हें वह गोल, वर्ग, त्रिभुज आदि के रूप में पहचानने लगता है।अनुकूलन और आत्मसात द्वारा बच्चे को नई और चुनौतीपूर्ण स्थितियों से अवगत कराया जा सकता है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम एक गतिशील, बहुआयामी और परस्पर जुड़ी हुई प्रक्रिया है। बच्चों को समृद्ध अनुभव, स्वतंत्रता, और सकारात्मक मॉडल प्रदान करके हम उनकी संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक क्षमताओं का सर्वोत्तम विकास कर सकते हैं। शिक्षक और अभिभावक यदि बच्चों के अधिगम प्रकारों को समझते हैं तो वे अधिक प्रभावी शिक्षा एवं पोषण प्रदान कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थान भरिए:

1. _____बालक स्वाभाविक रूप से दूसरों की क्रियाओं, भावों, और भाषा का अनुकरण करता है जो प्रारंभिक सामाजिक व्यवहार और भाषा विकास का आधार बनता है।
2. बाल्यावस्था में _____स्वाभाविक,आनंददायक और प्रेरक अधिगम गतिविधि है जो संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावनात्मक और भौतिक विकास को समेकित करता है।
3. _____में बालक बार-बार प्रयास करता है और अपनी गलतियों से सीखता है।
4. _____-के माध्यम से अधिगम के दौरान बच्चों के बीच बातचीत, सहयोग और साझा गतिविधियाँ सीखने की प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं।

4.7 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

प्रारंभिक बाल्यावस्था (जन्म से 8 वर्ष की आयु) जीवन का वह संवेदनशील और निर्णायक चरण होता है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक और भाषाई विकास की नींव रखी जाती है। इस अवस्था में मस्तिष्क की विकास दर अत्यंत तीव्र होती है और बच्चा अपने परिवेश से निरंतर सीखता है। यही कारण है कि इसे "जीवन की नींव डालने वाली अवधि" (Foundational Years) कहा जाता है।इस काल में अधिगम केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह दैनिक अनुभवों, खेल, बातचीत, परिवार, सामाजिक संपर्क और पर्यावरण से गहराई से जुड़ा होता है। एक ही आयु वर्ग के दो बच्चों में अधिगम की गति, रुचियाँ और क्षमताएँ भिन्न हो सकती हैं — इसका कारण विभिन्न आंतरिक (जैसे पोषण, स्वास्थ्य, मनोदशा) और बाह्य (जैसे पारिवारिक परिवेश, शिक्षक की भूमिका, सामाजिक संबंध) कारक होते हैं।इन कारकों को समझना और उनका विश्लेषण करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि यही कारक यह निर्धारित करते हैं कि एक बालक अपने जीवन की प्रारंभिक अवस्था में कैसे सोचता है, कैसे सीखता है, और भविष्य में किस प्रकार का नागरिक बनता है। यदि यह चरण उपेक्षित रह जाए या इनमें

प्रतिकूलता हो, तो बच्चे के समग्र विकास पर दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। अब आप उन प्रमुख कारकों की गहराई से चर्चा करेंगे जो बाल्यावस्था में अधिगम को प्रभावित करती है:

4.7.1. पारिवारिक वातावरण (Family Environment)

बच्चे के अधिगम की यात्रा का आरंभ उसके परिवार से होता है। परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर, शैक्षिक पृष्ठभूमि, पालन-पोषण की शैली, आपसी संवाद और अभिभावकों का भावनात्मक सहयोग –ये सभी कारक बालक के भाषा विकास, जिज्ञासा, आत्म-विश्वास और सीखने की प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।उदाहरण:यदि एक बच्चा ऐसे परिवार में पल रहा है जहाँ माता-पिता उसे समय देते हैं, उसकी बातों को ध्यान से सुनते हैं, कहानियाँ सुनाते हैं और चित्र पुस्तकें दिखाते हैं, तो उसमें भाषा कौशल, भावात्मक सुरक्षा और आत्म-प्रकाशन की क्षमता विकसित होती है।वहीं, एक ऐसे परिवार में जहाँ अशांति, उपेक्षा या हिंसा हो, वहाँ बच्चा भयभीत, चुप और संकोची हो सकता है।

4.7.2 पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता (Nutrition, Health & Hygiene)

मस्तिष्क का लगभग 90% विकास जीवन के पहले पाँच वर्षों में होता है। इस समय उचित पोषण (प्रोटीन, आयरन, विटामिन आदि) और अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है। बार-बार बीमार पड़ने वाला या कुपोषित बच्चा ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता, थकान अनुभव करता है और सीखने की क्षमता घट जाती है।उदाहरण:5 वर्ष का राहुल स्कूल में पढ़ाई में पीछे है क्योंकि वह अक्सर बीमार रहता है। चिकित्सक द्वारा पता चला कि वह एनीमिया से पीड़ित है और उसे पर्याप्त लौह-युक्त भोजन नहीं मिल रहा। इसके विपरीत उसकी कक्षा में रीता, जिसे संतुलित आहार मिलता है, हर गतिविधि में सक्रिय रहती है।

4.7.3 शिक्षक का दृष्टिकोण और गुणवत्ता (Teacher Attitude and Competency)

प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षक केवल जानकारी देने वाला नहीं होता, वह बच्चे की सामाजिक, भावनात्मक और संज्ञानात्मक नींव गढ़ने वाला मार्गदर्शक होता है। प्रशिक्षित शिक्षक, जो बालकों की मानसिक अवस्था को समझता है और आनंदमय वातावरण बना सकता है, अधिगम को प्रोत्साहित करता है।

एक बालवाड़ी में शिक्षिका सविता जी बच्चों को गिनती गीत के माध्यम से सिखाती हैं, जबकि दूसरी शिक्षिका केवल रट्टा लगवाने पर ज़ोर देती हैं। सविता जी के कक्षा के बच्चे संख्याओं को बेहतर समझते हैं क्योंकि उनके सीखने का अनुभव सकारात्मक और अर्थपूर्ण रहा।

4.7.4 सामाजिक संपर्क और समूह की भूमिका (Social Interaction and Peer Learning)

बच्चे जब अपने साथियों के साथ खेलते हैं, समूहों में गतिविधियाँ करते हैं, तो वे सहयोग, अनुशासन, नेतृत्व, प्रतीक्षा करना, अपनी बारी समझना जैसे सामाजिक व्यवहार सीखते हैं। ये गुण उनके सीखने की प्रक्रिया को प्रगतिशील और सहयोगी बनाते हैं। जैसे "बिल्डिंग ब्लॉक्स" खेलते हुए

बच्चों में से एक नेता बनता है, दूसरा सहायक, कोई डिजाइनर। ये भूमिकाएँ अनायास ही उन्हें नेतृत्व, योजना बनाना, संवाद करना और समस्या सुलझाना सिखाती हैं।

4.7.5 भाषाऔर संवाद वातावरण (Language and Communication Environment)

बालक के आसपास का संवादात्मक वातावरण उसकी भाषा समझ, अभिव्यक्ति क्षमता और संज्ञानात्मक विकास को गति देता है। जितना अधिक वह सुनता, बोलता, समझता और प्रतिक्रिया देता है, उतना ही वह सीखने की जटिल क्षमताएँ विकसित करता है।उदाहरण:एक शिक्षिका जो बच्चों से प्रश्न पूछती है ("तुम्हें क्या लगता है?"), उनकी बातों पर प्रतिक्रिया देती है ("वाह! क्या सुंदर विचार है") – वह भाषा और आत्म-विश्वास दोनों को बढ़ावा देती है।

4.7.6 भावनात्मक सुरक्षा और मानसिक स्वास्थ्य (Emotional Security and Mental Wellbeing)

आपने देखा होगा कि जब बच्चा प्रेम, अपनापन और समझदारी से भरा वातावरण अनुभव करता है, तो वह भयमुक्त होकर प्रयोग करता है, गलतियाँ करता है और उनसे सीखता है। असुरक्षा, भय और आलोचना का वातावरण उसके अधिगम को बाधित कर सकता है। यदि कक्षा में एक बच्चा गलती करता है और शिक्षक हँसते नहीं बल्कि कहते है कि – "कोई बात नहीं, फिर से कोशिश करते हैं" और इस सरल प्रतिक्रिया से बच्चा अगली बार निडर होकर उत्तर देने का साहस जुटा पाता है।

4.7.7 खेल और अनुभव आधारित अधिगम (Play-Based and Experiential Learning)

खेलना बच्चों का स्वाभाविक तरीका है सीखने का। जब शिक्षा को गतिविधियों, प्रयोगों और कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, तो अधिगम आनंददायक और स्थायी होता है।उदाहरण:बालक यदि स्वयं पानी में वस्तुएँ डालकर डूबने-तैरने का नियम सीखता है, तो वह सिद्धांतों को गहराई से समझता है, बजाय केवल सुनने या देखने के।

4 .8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे कि बच्चे के जन्म से लेकर आठ वर्ष की अवधि बच्चे के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और इन वर्षों में विकास की गति भी बहुत तेज होती है। अगर इन शुरुआती वर्षों में बच्चों को प्रेरणा से भरा हुआ और अच्छा मनो- सामाजिक माहौल नहीं मिलता तो बच्चे की क्षमताओं के के सम्पूर्ण विकास की सम्भावना काफी कम हो जाती है और जिसके भविष्य में परिणाम अच्छे नहीं होते।प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें पोषण, भावनात्मक सुरक्षा, संवाद, सामाजिक संबंध, शिक्षक की भूमिका और खेल जैसे कई पहलू जुड़े होते हैं। यदि इन सभी को एक समेकित रूप में सकारात्मक रूप से पोषित

किया जाए, तो बच्चों में जिज्ञासा, रचनात्मकता और आत्मनिर्भरता का विकास स्वाभाविक रूप से होता है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर

1. सही (✓)
2. 2. गलत (X)
3. 3. सही (✓)

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर

1. अ. इवान पी० पेवलॉव (Ivan P. Pavlav)
2. ब. फ्रेडरिक स्किनर (B.F. Skinner)
3. ब. पियाजे
4. अ. संवेदी-ग्राही अवस्था (Sensorimotor Stage)

अभ्यास प्रश्न 3 के उत्तर

1. अनुकरण द्वारा अधिगम (Learning by Imitation)
2. खेल
3. प्रयोग और त्रुटि द्वारा अधिगम (Learning by Trial and Error)
4. सामाजिक सहभागिता

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

Bandura, A. (1977). Social Learning Theory. Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.

Berk, L. E., &Winsler, A. (1995). Scaffolding Children's Learning: Vygotsky and Early Childhood Education. NAEYC.

Chance, P. (2013). Learning and Behavior (7th ed.). Wadsworth Publishing.

Crow, L. D. & Crow, A.(1973). Educational Psychology. New York: American Book Company.

Daniels, H. (2001). Vygotsky and Pedagogy. Routledge.

Gardner, H. (1983). Frames of Mind: The Theory of Multiple Intelligences.

Hilgard, E.R. (1956). Theories of Learning. Appleton-Century-Crofts.

https://bedhindiarticles.blogspot.com/2024/03/pavlovs-theory-of-clasical-conditioning.html

Mazur, J.E. (2017). Learning and Behavior (8th ed.). Routledge.

Moll, L. C. (Ed.). (1990). Vygotsky and Education: Instructional Implications and Applications of Sociohistorical Psychology. Cambridge University Press.

Pavlov, I. P. (1927). Conditioned Reflexes: An Investigation of the Physiological Activity of the Cerebral Cortex.

Piaget, J. (1973). To Understand is to Invent. New York: Grossman Publishers.

Skinner, B.F. (1953). Science and Human Behavior. New York: Macmillan.

Slavin, R.E. (2020). Educational Psychology: Theory and Practice (13th ed.). Pearson.

Thorndike, E.L. (1913). Educational Psychology: The Psychology of Learning.

Vygotsky, L.S. (1978). Mind in Society: The Development of Higher Psychological Processes.

Woodworth, R. S. (1945). Psychology: A Study of Mental Life. Henry Holt and Company.

Woolfolk, A. (2016). Educational Psychology (13th ed.). Pearson Education.

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम से आप क्या समझते है? अधिगम की विशेषताओं के बारे में लिखिए।
2. अधिगम के किन्हीं दो सिद्धांतों के बारे में लिखिए।
3. प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम के विभिन्न प्रकार के बारे में उदाहरण सहित लिखिए।

4. प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बारे में विस्तारपूर्वक लिखिए।

इकाई 5–अधिगम का परिवेश

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अधिगम परिवेश के प्रकार एवं घटक
5.4 प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम परिवेश की विशेषताएं
5.5 अधिगम परिवेश में सुदृढ़ीकरण की भूमिका
5.6 अधिगम परिवेश में सजा का शैक्षिक परिप्रेक्ष्य
5.7 अधिगम परिवेश में अनुशासन की भूमिका
5.8 अधिगम परिवेश मेंप्रेरणा की भूमिका
5.9 अधिगम परिवेश का निर्माण
5.10 सारांश
5.11अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

शिक्षार्थियों, आप सब जानते ही है कि बाल्यावस्था कौतूहल और उत्सुकता की अवस्था है। इस समय हर नई घटना रोचक लगती है तथा नयी बातों को जानने की उत्सुकता भी होती है। बच्चे अपने आस-पास की घटनाओं और चीजों में रूचि लेते हैं। कई छोटी-छोटी बातें जैसे- चिड़ियाँ का चहचहाना, बंदरों का दीवारों से कूदना फूलों के विभिन्न रंग, तरह-तरह के खिलौने, परियों की कहानियाँ, तितलियों का उड़ना आदि उनके लिए बहुत मनोहारी होते हैं। बच्चों की जिज्ञासाओं तथा उत्सुकताओं के पनपने के लिए यह बहुत जरूरी है कि परिवार उनके सीखने का वातावरण बेहतर हो। आप सब जानते ही है कि यह अवधि बेहद संवेदनशील होती है तथा इसका बच्चों के सर्वांगीण विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन प्रारंभिक वर्षों में सीखने के लिए मस्तिष्क अत्यन्त लचीला होता है। अधिगम के परिवेश का वृद्धि का बच्चे के पोषण, स्वास्थ्य, मनो-गत्यात्मक, सामाजिक अनुभवों और परिवेश से गहरा संबंध होता है। अतः प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल में अधिगम के परिवेश को सरल और प्रेरणादायक बनाना आवश्यकहै।प्रारम्भिक बाल्यावस्था ऐसी महत्वपूर्ण अवधि है जो बाद के अधिगम और विकास के लिये आधार तैयार करती है। इस अवधि में प्रदान किये गये अनुभव और अवसर बच्चे के विकास विशेष रूप से

मस्तिष्क के विकास को बहुत प्रभावित करते हैं। इसलिये गुणवत्तापूर्ण और समतामूलक प्रारम्भिक देखभाल बहुत जरुरी है।इकाई चार में आपने प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम की अवधारणा के बारे में जाना। प्रस्तुत इकाई में अब विस्तार से जानेंगे अधिगम के परिवेश के बारे में।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे:

1- अधिगम का परिवेश के प्रकार एवं घटक बताने में।

2- प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम परिवेश की विशेषताओं की व्याख्या करने में।

3- प्रारंभिक बाल्यावस्था में सुदृढ़ीकरण, सजा, अनुशासन तथा प्रेरणा की भूमिका समझाने में।

4-प्रारंभिक बाल्यावस्था में अधिगम परिवेश निर्माण में सहायक मुख्य कारकों की व्याख्या करने में।

5.3 अधिगम परिवेश के प्रकार एवं घटक

अधिगम परिवेश (Learning Environment) वह वातावरण है जिसमें अधिगम की प्रक्रिया घटित होती है। यह शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और बौद्धिक सभी प्रकार के कारकों का समूह होता है जो किसी व्यक्ति के सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। एक सकारात्मक अधिगम परिवेश विद्यार्थी के सीखने में सहायक होता है, जबकि नकारात्मक परिवेश सीखने में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

अधिगम परिवेश के प्रकार

अधिगम परिवेश को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) भौतिक परिवेश: यह घर, वातावरण, कक्षा, विद्यालय भवन, बैठने की व्यवस्था, प्रकाश, वेंटिलेशन, शोर-शराबा, शिक्षण सामग्री आदि को सम्मिलित करता है। एक सुव्यवस्थित और सुरक्षित भौतिक परिवेश विद्यार्थियों को केंद्रित और संलग्न रखने में सहायक होता है।

(ख) सामाजिक परिवेश: यह, परिवार -बालक संबंध, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध, सहपाठी संबंध, विद्यालय की संस्कृति, सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा की भावना को इंगित करता है। सकारात्मक सामाजिक परिवेश में संवाद, आदर और सहभागिता बढ़ती है।

(ग) भावनात्मक परिवेश: भावनात्मक रूप से सुरक्षित वातावरण विद्यार्थियों को जोखिम उठाने और नये विचार प्रकट करने के लिए प्रेरित करता है। इसमें भयमुक्त वातावरण, प्रोत्साहन और स्वीकृति की भावना प्रमुख होती है।

(घ) बौद्धिक परिवेश:यह विद्यार्थियों के चिंतन, विश्लेषण, जिज्ञासा और अन्वेषण को बढ़ावा देने वाला वातावरण है। चुनौतीपूर्ण प्रश्न, परियोजना आधारित अधिगम और नवीन विचारों को स्थान देना इस परिवेश का हिस्सा हैं।

अधिगम परिवेश के घटक

- **शिक्षक का व्यवहार:** शिक्षक की संवेदनशीलता, सहानुभूति, न्यायप्रियता और प्रोत्साहनशील व्यवहार एक सकारात्मक अधिगम परिवेश की नींव रखते हैं।
- **शिक्षण विधियाँ:** संवादात्मक, सहभागी, सहयोगात्मक और प्रायोगिक शिक्षण पद्धतियाँ परिवेश को समृद्ध बनाती हैं।
- **विद्यार्थी की भूमिका:** जिज्ञासु, उत्तरदायी और आत्म-प्रेरित विद्यार्थी अधिगम परिवेश को सजीव बनाते हैं।
- **शैक्षिक संसाधन:** पुस्तकें, तकनीकी उपकरण, दृश्य-श्रव्य सामग्री आदि अधिगम को प्रभावशाली बनाते हैं।
- **प्रशासनिक सहयोग:** विद्यालय प्रबंधन का दृष्टिकोण, नियम-कानून, मूल्यांकन प्रणाली आदि भी अधिगम परिवेश को प्रभावित करते हैं।

- **अभ्यास प्रश्न 1**

- **सही विकल्प चुनिए:**
- 1. अधिगम परिवेश है:
- A) केवल विद्यालय भवन B) केवल शिक्षक की भूमिका
- C) अधिगम की वह समग्र स्थिति जो सीखने को प्रभावित करती है D) केवल शिक्षण विधियाँ
- 2. निम्न में से कौन भौतिक परिवेश का अंग नहीं है?
- A) कक्षा की बैठने की व्यवस्था B) परिवार में संवाद का स्तर

- C) प्रकाश और वेंटिलेशन D) शिक्षण सामग्री की उपलब्धता
- 3. भावनात्मक परिवेश का मुख्य उद्देश्य क्या होता है?
- A) प्रतियोगिता को बढ़ाना B) डर और अनुशासन को बढ़ावा देना
- C) जोखिम लेने और नए विचार प्रकट करने हेतु प्रेरित करना D) केवल परीक्षा पर ध्यान देना
- 4:बौद्धिक परिवेश का कौन-सा उदाहरण है?
- A) विद्यालय का समय B) संवादात्मक कक्षा
- C) परियोजना आधारित अधिगम D) कक्षा का आकार
- 5:अधिगम परिवेश को सजीव बनाने में विद्यार्थी की क्या भूमिका होनी चाहिए?
- A) चुप रहना B) केवल परीक्षा पास करना
- C) जिज्ञासु, उत्तरदायी और आत्म-प्रेरित होना D) शिक्षक पर निर्भर रहना
- 6:निम्न में से कौन-से घटक अधिगम परिवेश को सीधे प्रभावित करते हैं?
- A) मौसम और जलवायु B) खेल और मनोरंजन
- C) शैक्षिक संसाधन, शिक्षण विधियाँ और प्रशासनिक सहयोग प्रणाली D) केवल परीक्षा
- 7:सकारात्मक सामाजिक परिवेश की पहचान क्या है?
- A) शोर-शराबा B) संवादहीनता
- C) संवाद, आदर और सहभागिता D) अनुशासन और डर

5.4 अधिगम का परिवेश की विशेषताएं

प्रारंभिक बाल्यावस्था जीवन का अत्यंत संवेदनशील चरण होता है। इस अवस्था में बच्चों का मस्तिष्क अत्यधिक ग्रहणशील होता है, और वे अपने परिवेश से सीखने की तीव्र क्षमता रखते हैं। अतः इस अवधि में यदि उपयुक्त अधिगम परिवेश (Learning Environment) उपलब्ध कराया जाए, तो यह न केवल संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहित करता है, बल्कि भाषा, सामाजिकता, भावनात्मकता और रचनात्मकता के विकास को भी बल देता है।प्रभावी अधिगम बच्चों की बाल्यावस्था को सकारात्मक दिशा देने का कार्य करता हैं। अधिगम परिवेश की कुछ निम्नलिखित विशेषताएँ है:

1. **सकारात्मक सामाजिक सहभागिता:** अधिगम परिवेश में बच्चों के बीच सहयोग, साझा करना, मदद करना जैसे सामाजिक व्यवहारों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।उदाहरण: दो बच्चे मिलकर एक चित्र बनाते हैं – एक चित्र बनाता है और दूसरा रंग भरता है।
2. **सुरक्षित और पोषक परिवेश:** बच्चों के लिए एक ऐसा वातावरण आवश्यक है जिसमें वे स्वयं को सुरक्षित और आत्मीय महसूस करें। सुरक्षा उन्हें स्वतंत्र रूप से अन्वेषण करने की स्वतंत्रता देती है।जब एक बच्चा बिना डरे कक्षा में स्वतंत्र रूप से खेलने, चित्र बनाने और वस्तुओं को छूने-समझने में संलग्न होता है, तो वह अधिगम प्रक्रिया में पूरी तरह सक्रिय रहता है।
3. **आयु-उपयुक्त सामग्री और संसाधन:** अधिगम परिवेश में वह सामग्री होनी चाहिए जो बालकों की विकासात्मक अवस्था के अनुसार हो – जैसे रंगीन ब्लॉक्स, चित्र-पुस्तकें, स्पर्श योग्य वस्तुएँ आदि।जैसे तीन वर्ष की बच्ची रंगों वाले ब्लॉक्स से खेलते-खेलते आकार, गिनती और तुलना सीख जाती है।
4. **भाषा और संवाद को प्रोत्साहन:** ऐसा परिवेश जिसमें बच्चों को अपनी भाषा में विचार व्यक्त करने, प्रश्न पूछने और कहानी सुनाने के अवसर मिलते हैं, भाषा विकास को बढ़ावा देता है।शिक्षक जब बच्चों से उनकी पसंद पूछते है, तो वे अपने अनुभव साझा करते हैं और नए शब्दों का प्रयोग सीखते हैं।
5. **खेल आधारित अधिगम अवसर:** खेल बच्चों का प्रमुख अधिगम माध्यम है। एक अच्छा अधिगम परिवेश वह होता है जिसमें मुक्त एवं संरचित दोनों प्रकार के खेलों की सुविधा होती है। बच्चे 'घर- घर' खेलते हुए सदाचार और बातचीत के तरीके सीखते हैं।
6. **प्रेरणा और प्रशंसा का वातावरण:** बच्चों को जब उनके प्रयासों पर सराहना मिलती है, तो वे और बेहतर सीखने के लिए प्रेरित होते हैं। सकारात्मक प्रतिक्रिया अधिगम की गति

को बढ़ाती है।जब बच्चा पहली बार पूरे वाक्य में बोलता है तो पारिवारिक सदस्य और शिक्षक उसे ताली बजाकर प्रोत्साहित करते है।

7. **संवेदनशील व उत्तरदायी वयस्कों की भूमिका:** शिक्षक या देखभालकर्ता यदि बच्चों की जरूरतों और प्रतिक्रियाओं के प्रति संवेदनशील होते हैं, तो अधिगम अधिक प्रभावशाली होता है।कई बार शिक्षक यह देखकर कि बच्चा अकेला खेल रहा है, धीरे-से पास जाकर संवाद आरंभ करता है और अन्य बच्चों से जोड़ता है।
8. **संस्कृति-सम्मत और विविधता-समर्थ परिवेश**: बालकों की सामाजिक, भाषाई और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सम्मान देने वाला परिवेश उन्हें अपनापन और आत्मविश्वास देता है।उदाहरण: कक्षा में बच्चों की मातृभाषा में कहानियाँ सुनाना या त्योहारों को मिल-जुलकर मनाना।
9. **स्वतंत्र अन्वेषण की सुविधा:** बच्चों को अधिगम परिवेश में नई वस्तुएँ छूने, देखने, सूंघने, और प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। यह उनके जिज्ञासु स्वभाव को पोषण देता है।जैसे कक्षा में बच्चा, कोने में रखे चुंबक को विभिन्न वस्तुओं पर आजमाकर यह जानता है कि लोहे पर वह चिपकता है लेकिन लकड़ी पर नहीं।
10. **संवेगात्मक रूप से सहायक परिवेश:**बच्चों के भावों को समझने और उन्हें सकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया देने वाला वातावरण ही सही अधिगम परिवेश होता है।जैसे बच्चा जब किसी खेल में हारता है और शिक्षक उसे समझाता है कि प्रयास ही महत्त्वपूर्ण है, तो वह फिर से प्रयास करने को प्रेरित होता है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था में यदि अधिगम परिवेश उपयुक्त, समावेशी, संवेदनशील और बालकेंद्रित हो, तो यह बच्चों के समग्र विकास के लिए अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध होता है। यह न केवल उन्हें ज्ञान देता है, बल्कि सीखने की इच्छा और आत्मविश्वास भी विकसित करता है।एक अच्छा अधिगम परिवेश सुरक्षित, सहयोगात्मक, उत्साहवर्धक और प्रेरक वातावरणदेता है और जिससे बच्चों में समूह कार्य और सामाजिक कौशल विकसित होते हैं।आज डिजिटल तकनीक और समावेशी शिक्षा के युग में अधिगम परिवेश का स्वरूप भी परिवर्तित हो रहा है। जैसे ऑनलाइन शिक्षण, AI आधारित सीखने के टूल्स द्वारा वैयक्तिकरण, समावेशी अधिगम परिवेश जिसमे विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर योजनाबद्ध वातावरण प्रदान किया जाता है।अधिगम परिवेश केवल भौतिक कक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत, बहुआयामी और विकासोन्मुख संरचना है। एक प्रभावी अधिगम परिवेश सीखने की गुणवत्ता को कई गुना बढ़ा सकता है। अतः शिक्षकों, विद्यालय प्रबंधन और नीति निर्माताओं को मिलकर ऐसा परिवेश निर्मित करने की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी पूर्ण क्षमता से सीख सके।

अभ्यास प्रश्न2

निम्न कथनों में सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. प्रारंभिक बाल्यावस्था में मस्तिष्क की ग्रहणशीलता कम होती है।
2. अधिगम परिवेश बच्चों के केवल संज्ञानात्मक विकास को ही प्रभावित करता है।
3. सहयोग, साझा करना और मदद करना सामाजिक सहभागिता की विशेषताएँ हैं।
4. डर का माहौल बच्चों को अधिगम के लिए प्रेरित करता है।
5. आयु-अनुपयुक्त शिक्षण सामग्री बच्चों की रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है।
6. भाषा विकास के लिए बच्चों को संवाद और अभिव्यक्ति के अवसर देना आवश्यक है।
7. खेल अधिगम में बाधा उत्पन्न करता है, इसलिए इसे सीमित किया जाना चाहिए।
8. प्रशंसा और सकारात्मक प्रतिक्रिया बच्चों को बेहतर सीखने के लिए प्रेरित करती है।
9. शिक्षक का संवेदनशील और उत्तरदायी व्यवहार अधिगम को प्रभावहीन बनाता है।
10. विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों का सम्मान करने वाला परिवेश बच्चों को आत्मविश्वासी बनाता है।
11. केवल भौतिक कक्षा ही अधिगम परिवेश मानी जाती है।
12. समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए योजनाबद्ध वातावरण महत्वपूर्ण होता है।

5.5 अधिगम परिवेश में सुदृढ़ीकरण की भूमिका

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में सुदृढ़ीकरण (Reinforcement) एक प्रमुख व्यवहारपरक सिद्धांत है जिसका उद्देश्य इच्छित व्यवहार को प्रोत्साहित करना और उसे दोहराए जाने की संभावना को बढ़ाना होता है। यह सिद्धांत बी. एफ. स्किनर (B.F. Skinner) के व्यवहारवाद पर आधारित है, जिसमें यह माना जाता है कि व्यवहार तब मजबूत होता है जब उसके पश्चात कोई सकारात्मक अनुभव या प्रतिक्रिया मिलती है।

सुदृढ़ीकरण के निम्न प्रकार है:

(क) सकारात्मक सुदृढ़ीकरण (Positive Reinforcement):जब किसी वांछित व्यवहार के बाद कोई सुखद अनुभव या पुरस्कार दिया जाता है, जिससे उस व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना बढ़ती है।उदाहरण:विद्यार्थी ने होमवर्क समय पर पूरा किया और शिक्षक ने उसकी प्रशंसा की या फिर कक्षा में अनुशासित रहने पर विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र या ईनाम देना।

(ख) नकारात्मक सुदृढ़ीकरण (Negative Reinforcement):यह तब होता है जब किसी अवांछनीय परिस्थिति को हटा लिया जाता है ताकि वांछित व्यवहार की पुनरावृत्ति हो। यह सजा नहीं होती, बल्कि यह एक राहत की स्थिति है।यदि कोई छात्र नियमित होमवर्क करता है, तो उसे कठिन अतिरिक्त अभ्यास कार्य से छूट दी जाती है।

(ग) सामाजिक सुदृढ़ीकरण: शाब्दिक प्रशंसा, मुस्कान, सिर हिलाना आदि सामाजिक संकेत जो व्यवहार को प्रोत्साहित करते हैं।जैसे "शाबाश", "बहुत अच्छा किया"या अच्छा कार्य करने पर तालियाँ बजाना।

(घ) प्रतीकात्मक सुदृढ़ीकरण:टोकन, अंक, स्टार आदि जिन्हें बाद में पुरस्कार में बदला जा सकता है। जैसे विद्यार्थियों को पांच स्टार जमा करने पर पुस्तक उपहार में देना।

शिक्षण में सुदृढ़ीकरण की रणनीतियाँ

तत्काल प्रतिक्रिया: सकारात्मक व्यवहार के तुरंत बाद प्रतिक्रिया देना अधिक प्रभावशाली होता है।

वैयक्तिकरण: सभी विद्यार्थियों की प्रेरणाएँ भिन्न होती हैं, अतः सुदृढ़ीकरण को उनकी रुचियों के अनुसार अनुकूलित किया जाना चाहिए।

क्रमिक सुदृढ़ीकरण: छोटे-छोटे कदमों पर सुदृढ़ीकरण देकर जटिल व्यवहार सिखाया जा सकता है।उदाहरण: किसी विद्यार्थी को सार्वजनिक भाषण सिखाने के लिए पहले उसे कक्षा के सामने एक वाक्य बोलने पर प्रोत्साहन देना, फिर पूरे परिचय पर, और अंततः पूरी प्रस्तुति पर।

समूह आधारित सुदृढ़ीकरण: समूह कार्यों में सफलता के लिए पूरे समूह को पुरस्कार देना।उदाहरण: कक्षा की सभी टीमें यदि समय पर कार्य पूरा करें तो उन्हें एक सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने का अवसर देना।

व्यवहार सुधार हेतु सुदृढ़ीकरण:व्यवहार अनुकरण (Shaping)जब कोई जटिल व्यवहार सिखाना हो, तो उसके छोटे भागों को क्रमशः सुदृढ़ किया जाता है।उदाहरण: एक अंतर्मुखी विद्यार्थी को पहले उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित करना, फिर प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करना।

अनुकरण द्वारा अधिगम (Observational Learning):दूसरों के प्रोत्साहन को देखकर स्वयं भी वैसा व्यवहार करना।उदाहरण: यदि एक विद्यार्थी को मंच पर बोलने के बाद तालियाँ मिलती हैं, तो अन्य विद्यार्थी भी ऐसा करने के लिए प्रेरित होते हैं।

सुदृढ़ीकरण और अनुशासन:सुदृढ़ीकरण केवल अधिगम नहीं, बल्कि अनुशासन बनाए रखने का भी सशक्त साधन है।कक्षा में शांत व्यवहार पर प्रशंसा

समय पालन पर अंक देना:यह दृष्टिकोण दंड की तुलना में अधिक स्थायी और प्रेरक परिणाम देता है।

सुदृढ़ीकरण की सीमाएँ :

- अत्यधिक सुदृढ़ीकरण से स्व-प्रेरणा कम हो सकती है।
- केवल पुरस्कार आधारित प्रणाली बाह्य प्रेरणा पर निर्भर हो जाती है।
- सभी विद्यार्थियों पर एक ही सुदृढ़ीकरण प्रभावी नहीं होता।

सुदृढ़ीकरण अधिगम परिवेश का एक अभिन्न हिस्सा है, जो विद्यार्थियों में वांछनीय व्यवहार को बढ़ावा देता है और अनुशासित वातावरण निर्मित करता है। शिक्षक यदि इस उपकरण का समुचित उपयोग करें, तो न केवल अधिगम की गुणवत्ता बढ़ेगी, बल्कि विद्यार्थियों का आत्मबल और आत्म-नियंत्रण भी विकसित होगा।

5.6 अधिगम परिवेश में सजा का शैक्षिक परिप्रेक्ष्य

सजा (Punishment) शिक्षा में एक विवादास्पद लेकिन यथार्थ विषय है। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी अवांछनीय या अनुचित व्यवहार को हतोत्साहित करने हेतु नकारात्मक प्रतिक्रिया दी जाती है। व्यवहारवाद के अनुसार, सजा का उद्देश्य यह होता है कि वह व्यवहार पुनः न दोहराया जाए।

सजा के प्रकार:

(क) प्रत्यक्ष सजा (Positive Punishment):इसमें किसी अवांछनीय व्यवहार के बाद अप्रिय परिणाम देना शामिल है।उदाहरण:अनुशासनहीनता पर कक्षा में डांटना या फिर अनुचित उत्तर देने पर सार्वजनिक रूप से टोकना।

(ख) अप्रत्यक्ष सजा (Negative Punishment):इसमें सुखद वस्तु या अनुभव को हटा लिया जाता है ताकि व्यवहार पर नियंत्रण किया जा सके।उदाहरण:शोरगुल करने पर अवकाश में खेलने से वंचित करना।समय पर कार्य न करने पर पुरस्कार न देना।

(ग) शारीरिक सजा: यह शारीरिक कष्ट पहुँचाने वाली सजा है, जो आज अधिकांश शैक्षिक व्यवस्थाओं में वर्जित है।उदाहरण:मारना, कान पकड़वाना, लंबे समय तक खड़ा करना आदि।

सजा के प्रभाव

(क) अल्पकालिक लाभ: सजा से अनुशासन की तात्कालिक स्थापना की जा सकती है जिससे बच्चों में नियंत्रण की भावना उत्पन्न होती है।

(ख) दीर्घकालिक दुष्प्रभाव: सजा से बच्चों में आत्म-सम्मान में कमी, डर और चिंता की भावना उत्पन्न हो सकती है।इसके अलावा शिक्षक से दूरी, आक्रोश और विद्रोह की प्रवृत्ति भी सजा के दुष्प्रभाव है।यदि एक छात्र कक्षा में बात करने पर बार-बार डांट खाता है, तो वह या तो कक्षा से डरने लगता है या उद्दंड बन जाता है।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में अनुशासन बनाए रखने हेतु कभी-कभी सजा का प्रयोग किया जाता है, परंतु इसका प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक और शैक्षिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। सजा का उद्देश्य बालक को केवल दंडित करना नहीं, बल्कि उसके व्यवहार को सुधारना और उसे सामाजिक रूप से स्वीकार्य आचरण के प्रति जागरूक बनाना होना चाहिए। प्रारंभिक बाल्यावस्था में बच्चों की समझ, संवेदनशीलता एवं आत्म-सम्मान का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है, क्योंकि कठोर या अपमानजनक दंड उनके मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को बाधित कर सकता है। इसके विपरीत, शिक्षकों को ऐसे वैकल्पिक उपायों को अपनाना चाहिए जो दंड की अपेक्षा सकारात्मक अनुशासन को बढ़ावा दें, जैसे- व्यवहारिक संवाद, समझाइश, प्राकृतिक परिणामों का अनुभव कराना, तथा व्यवहार संशोधन तकनीकें। आधुनिक शिक्षाशास्त्र यह मानता है कि दंड की जगहसकारात्मक सुदृढ़ीकरणऔर सहानुभूति आधारित अनुशासन अधिक प्रभावी होता है। यदि सजा दी भी जाए तो वहशारीरिक या मानसिक उत्पीड़नन होकर बालक की उम्र, समझ और परिस्थिति के अनुरूप होनी चाहिए। इस प्रकार, एक संवेदनशील और शिक्षणोन्मुख अधिगम परिवेश का निर्माण तभी संभव है जब दंड को सुधारात्मक उपकरण के रूप में समझा जाए, न कि नियंत्रण के साधन के रूप में। सजा शिक्षण का अंतिम उपाय हो सकती है, परंतु इसे विवेकपूर्ण और सीमित रूप में ही प्रयोग किया जाना चाहिए। व्यवहार संशोधन हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण जैसे प्रोत्साहन, संवाद, और सहयोग अधिक प्रभावशाली एवं स्थायी परिणाम देते हैं। शिक्षक को संवेदनशीलता और नैतिक दृष्टिकोण के साथ विद्यार्थियों के व्यवहार पर कार्य करना चाहिए ताकि अधिगम परिवेश सुरक्षित, प्रेरक और सहायक बन सके।

5.7अधिगम परिवेश में अनुशासन की भूमिका

अनुशासन (Discipline) का अर्थ है—नियमों, मूल्यों और अपेक्षित व्यवहार के अनुरूप कार्य करना, जिससे व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ सामाजिक सामंजस्य भी बना रहे। अधिगम परिवेश में अनुशासन का अभिप्राय केवल नियमों का पालन कराना नहीं, बल्कि ऐसा वातावरण निर्मित करना है जो शिक्षा को सुलभ, व्यवस्थित और प्रभावी बनाए।

अनुशासन के उद्देश्य:

- शांति और व्यवस्था बनाए रखना
- सकारात्मक अधिगम परिवेश का निर्माण
- आत्म-नियंत्रण और उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करना
- समूह जीवन के लिए आवश्यक सामाजिक कौशल विकसित करना

अनुशासन और अधिगम का संबंध:अनुशासन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के सुचारू संचालन हेतु अनिवार्य है।उदाहरण:यदि कक्षा में सभी विद्यार्थी ध्यानपूर्वक सुन रहे हों, तो शिक्षक प्रभावी रूप से विषय समझा सकता है।अनुशासनहीनता से शिक्षण बाधित होता है, जिससे अधिगम में गिरावट आती है।

अनुशासन बनाए रखने की शिक्षकीय रणनीतियाँ:

1. स्पष्ट नियम निर्धारण: कक्षा में स्पष्ट नियम बनाना और उनका उद्देश्य समझाना।उदाहरण:"पढ़ाते समय कोई न बोले" नियम का कारण बताना कि इससे सभी को समझने में सहायता मिलती है।

2. व्यवहार प्रबंधन योजना: पूर्व से नियम, दंड और सुदृढ़ीकरण की योजना बनाना।उदाहरण:तीन बार चेतावनी के बाद अस्थायी गतिविधि बहिष्कार।

3. सकारात्मक भूमिका मॉडल: शिक्षक स्वयं अनुशासन का पालन करें।उदाहरण:समय का पालन करने वाला शिक्षक विद्यार्थियों को भी समयनिष्ठ बनाता है।

4. प्रेरणात्मक वातावरण: विद्यार्थियों को सुदृढ़ीकरण देकर स्वानुशासन के लिए प्रेरित करना।उदाहरण:सप्ताह के सबसे अनुशासित विद्यार्थी को सम्मानित करना।

5. व्यवहार अनुबंध (Behaviour Contract): विद्यार्थी और शिक्षक के बीच सहमति से बनाए गए नियमों का लिखित समझौता।उदाहरण:छात्र यह लिखता है कि वह सप्ताह भर मोबाइल का उपयोग नहीं करेगा और प्रतिदिन गृहकार्य करेगा।

6. आत्म-प्रतिक्रिया पत्र (Self-reflection Sheet): गलत व्यवहार के पश्चात विद्यार्थी से आत्म-मूल्यांकन कराना।जैसे "आज मैंने कक्षा में बात क्यों की? इसका असर क्या हुआ? मैं अगली बार क्या करूँगा?"

7. कक्षा मीटिंग्स: नियमों और व्यवहार पर सामूहिक चर्चा, जिससे उत्तरदायित्व की भावना आए।उदाहरण:कक्षा में शांति बनाए रखने हेतु विद्यार्थियों से सुझाव लेना।

8. अनुशासन और समावेशी शिक्षा: समावेशी कक्षा में अनुशासन बनाए रखना चुनौतीपूर्ण होता है, लेकिन यह आवश्यक है किविविधताओं को स्वीकारते हुए व्यवहार अपेक्षाएँ तय हो और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार उसमें लचीलापन हो।

अनुशासन एक सकारात्मक अधिगम परिवेश की रीढ़ है। जब इसे दंड या दबाव की जगह सहानुभूति, संवाद, और सकारात्मक प्रबंधन के माध्यम से लागू किया जाता है, तब यह विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, सामाजिक कौशल, और आत्म-नियंत्रण को विकसित करता है। शिक्षक की भूमिका केवल नियंत्रक की नहीं, बल्कि मार्गदर्शक की होनी चाहिए जो छात्रों को आत्म-अनुशासन की दिशा में प्रेरित करे।

5.8अधिगम परिवेश मेंप्रेरणा की भूमिका

प्रेरणा (Motivation) वह आंतरिक शक्ति है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सक्रिय करती है। अधिगम में प्रेरणा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह विद्यार्थी की रुचि, सक्रियता, प्रयास और उपलब्धि को प्रभावित करती है।

प्रेरणा के प्रकार

(क) आंतरिक प्रेरणा (Intrinsic Motivation): यह तब उत्पन्न होती है जब विद्यार्थी स्वयं सीखने में रुचि रखता है।उदाहरण: एक बच्चा विज्ञान प्रयोग स्वयं करना चाहता है क्योंकि उसे यह रोचक लगता है।

(ख) बाह्य प्रेरणा (Extrinsic Motivation): यह तब उत्पन्न होती है जब कोई बाहरी पुरस्कार या दंड अधिगम को प्रेरित करता है।उदाहरण: शिक्षक द्वारा अच्छे अंक देने का वादा करना।

अधिगम परिवेश में प्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारक:

प्रेरणा, बालकों को सीखने के लिए तैयार, सक्रिय और सतत बनाए रखने वाली मानसिक और भावनात्मक शक्ति है। प्रारंभिक बाल्यावस्था में प्रेरणा के आधार पर ही बालक अपने अनुभवों, संवेदनाओं और परिवेश से ज्ञान अर्जित करता है। अतः अधिगम परिवेश में ऐसे कारकों की पहचान करना आवश्यक है, जो बालक की प्रेरणा को सकारात्मक दिशा में प्रभावित करते हैं।प्रेरणाकोप्रभावितकरनेवालेप्रमुखकारक निम्न है:

शारीरिक एवं मानसिक स्थिति: स्वस्थ शरीर और मानसिक शांति प्रेरणा के लिए आवश्यक है।थका हुआ, अस्वस्थ या चिंतित बालक अधिगम गतिविधियों में रुचि नहीं लेता।उदाहरण: नींद पूरी न होने पर बच्चा स्कूल में सक्रिय नहीं रहता।

सुरक्षित एवं स्नेहपूर्ण अधिगम वातावरण: जब बच्चा अपने वातावरण में स्वीकृत, संरक्षित और प्रिय अनुभव करता है, तो उसमें सीखने की स्वाभाविक प्रेरणा उत्पन्न होती है।शिक्षक का मुस्कराता चेहरा और विनम्र भाषा बच्चे को आत्मविश्वास देता है।

गतिविधिआधारित शिक्षण: खेल, चित्र, कहानी, संगीत, मॉडल आदि के प्रयोग से बच्चे अधिक प्रेरित होते हैं।अधिगम जितना अधिक इंद्रिय-आधारित होगा, प्रेरणा उतनी अधिक होगी।उदाहरण: संख्याओं को गिनने के लिए रंगीन मोतियों का उपयोग।

सकारात्मक सुदृढीकरण और प्रोत्साहन: बालकों को मौखिक, प्रतीकात्मक या व्यवहारिक पुरस्कार देने से उनकी आंतरिक प्रेरणा बढ़ती है।उदाहरण: प्रयास पर ताली बजाना या "बहुत अच्छा किया!" कहना।

शिक्षक का दृष्टिकोण और शैली: शिक्षक का सहयोगी, धैर्यवान और संवेदनशील व्यवहार प्रेरणा को बनाए रखता है।आलोचना, डर या अनदेखी से प्रेरणा में गिरावट आती है।उदाहरण: शिक्षक द्वारा प्रयास की सराहना करना, भले ही उत्तर सही न हो।

परिवार का सहयोग: घर में सीखने को प्रोत्साहित करने वाला वातावरण बालक की प्रेरणा को स्थायी बनाता है।उदाहरण: माता-पिता द्वारा पुस्तकें पढ़ना या गतिविधियों में भाग लेना।

सहकर्मी समूह का प्रभाव: समूह में अन्य बच्चों का व्यवहार, सहयोग और सहभागिता प्रेरणा को बढ़ाते हैं। उदाहरण: यदि एक बच्चा चित्र बना रहा है, तो अन्य भी प्रेरित होकर प्रयास करते हैं।

बालक की व्यक्तिगत रुचियाँ और आवश्यकताएँ: यदि गतिविधियाँ बालक की रुचियों से मेल खाती हैं, तो वह स्वप्रेरित रूप से भाग लेता है।उदाहरण: कहानी में रुचि रखने वाले बच्चे को चित्र कथाएं देना।

प्रारंभिक बाल्यावस्था में प्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारक संवेदनशील और परस्पर जुड़े हुए होते हैं। एक समावेशी, उत्तरदायी, उत्साहवर्धक और बाल-केंद्रित अधिगम परिवेश प्रेरणा को प्रबल बनाता है। इससे न केवल बालक की वर्तमान अधिगम यात्रा सशक्त होती है, बल्कि वह आजीवन अधिगम के लिए भी तैयार होता है।प्रेरणा अधिगम की आत्मा है। यह न केवल ज्ञान अर्जन को प्रेरित करती है, बल्कि नवाचार, आत्म-निर्भरता और आत्मविकास को भी बढ़ावा देती है। शिक्षक प्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों और तकनीकों का प्रयोग कर अधिगम परिवेश को जीवंत और समृद्ध बना सकते हैं।

5.9 अधिगम परिवेश का निर्माण

शिक्षार्थियों, अब आप जान गए होंगे कि अधिगम परिवेश में सुदृढ़ीकरण, सजा, अनुशासन एवं प्रेरणा का प्रारंभिक बाल्यावस्था में बहुत महत्त्व है। अब आप जानेंगे कि किस प्रकार एक अच्छे अधिगम परिवेश का निर्माण किया जा सकता है ताकि प्रारंभिक बाल्यावस्था में सीखने की प्रक्रिया अच्छी हो।प्रारंभिक बाल्यावस्था में एक स्वस्थ्य अधिगम परिवेश का निर्माण निम्न तरीकों से किया जा सकता है:

1. **खेल:** पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए खेल एवं गतिविधियाँ सर्वश्रेष्ठ शिक्षण माध्यम हैं। ये गतिविधियाँ बच्चों को खोजबीन करने, प्रयोग करने, परिवेश को अपने अनुसार ढालने और अनभुव करने के अवसर प्रदान करती हैं। इस प्रकार बच्चे स्वयं ही ज्ञान का सृजन करते हैं। खेलों का अधिकांश भाग स्वयं प्रेरित खेलों एवं गतिविधियों पर आधारित होना चाहिए जो बच्चों की रुचि और इच्छा पर आधारित हो।
2. **संवाद:** बच्चों के सीखने के लिए बड़ों के साथ प्रतिक्रियात्मक और सहयोग अंतःक्रिया (संवाद) अनिवार्य है।बच्चे अपने अभिभावकों, परिवार, शिक्षक व समाज के साथ अपने संबंधों के द्वारा सीखते हैं। संबंधों को बनाए रखने से बच्चों में सुरक्षा की भावना, आत्मविश्वास, कौतुहल और संवाद करने की क्षमता पैदाहोती है। इन संबंधों और अंतःक्रिया के आधार पर बच्चे यह भी सीखते हैं कि अपनी भावनाओ को किस प्रकार नियंत्रित किया जाए और उन्हें समाज में उपयोगी तरीके से कैसे दूसरों से जोड़ा जाए।
3. **अनुभव:** अनुभवजन्य अधिगम के लिए परिवेश निर्मित करने से बच्चे सीखते हैं।बच्चे अपने परिवेश में प्रत्यक्ष व क्रियात्मक अनुभवों द्वारा सीखते हैं जो उन्हें अपने शिक्षक और

साथियों के साथ पारस्परिक अंतःक्रिया करने और उनके निर्देशों के आधार पर अपने ज्ञान का सृजन करने में सहायक होते हैं। जब सीखना इस प्रकार से होगा तो वह स्थायी भी होगा। शुरुआती अवस्था में बच्चे अपने स्तर से आगे की जानकारी को भी जानने की कोशिश करते हैं, फिर वापस अपनी आयु अनुरूप जानकारी की खोजबीन करते हैं, पुनः आगे के स्तर की खोजबीन में जुट जाते हैं। इस प्रकार अधिगम का यह चक्र चलता ही रहता है। इस बात को सुनिश्चित करना बहुत जरूरी है कि बच्चों को उनके विकासात्मक प्रतिमानों के अनुरूप सामग्री, अनुभव और चुनौतियाँ दी जाएँ जिससे वे स्वयं ज्ञान का सृजन कर सकें। इस प्रक्रिया में कार्यों की पुनरावृत्ति भी होगी, अध्यापकों और अनुभवी मित्रों का मार्गदर्शन भी होगा। इससे सभी बच्चों को अपनी नैसर्गिक क्षमताओं का विकास करने का अवसर मिलेगा और वे स्वतंत्र रूप से काम करना भी सीखेंगे।

4. **पारस्परिक शिक्षण:** पारस्परिक शिक्षण अधिगम अनुभवों को समृद्ध करता हैं।बच्चों का आपस में एक-दूसरे के साथ काम करना, बच्चों का शिक्षक के साथ और सामग्री के साथ तरह-तरह के कार्य करना गुणवत्तापरक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का महत्वपूर्णपहल है। बच्चों के आपस में संवाद, परिवेशीय और सांस्कृतिक अनुभवों की विविधता तथा सार्थक संवाद सुदृढ़ ज्ञान के सृजन की नींव प्रदान करते हैं व उन्हें औपचारिक विद्यालय के लिए तैयार करते हैं।
5. **स्थानीय उपलब्ध सामग्री का उपयोग:** स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का विकास और उपयोग सीखने के अवसरों को समृद्ध करता है।स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग बच्चों को आरंभिक उत्प्रेरणा और शिक्षा देने में बहुत ही सहायक होता है। इससे स्थानीय रूप से महत्वपूर्ण मूल्यों और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के पहलुओं का संरक्षण तो होता ही है, साथ ही ये अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। ये शिक्षक, बच्चों, अभिभावकों और समुदाय को सक्रिय एवं रचनात्मक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में योगदान देने के अवसर भी प्रदान करते हैं।
6. **बच्चों की शैक्षणिक गतिविधियों में भागीदारी:** यह बहुत आवश्यक है कि सभी बच्चों को हर शैक्षिक अनुभव और गतिविधि में शामिल किया जाय। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को व्यक्तिगत रूप से निर्देश मिलने चाहिए जिससे बच्चे अपेक्षित कौशल, व्यवहार के तौर-तरीके और अवधारणाओ को सीख सकें और उन्हें विकसित कर सकें। चूँकि समाजीकरण पूर्व प्राथमिक शिक्षा का एक महत्वपर्ण लक्ष्य है, इसलिए बच्चों को खेल, सामूहिक गतिविधियों और भिन्न-भिन्न प्रकार के संवादों में भाग लेने के भरपूर अवसर मिलने चाहिए। यह बहुत ही महत्वपूर्णहै कि सभी बच्चों को, चाहे वे किसी भी जाति, वंश, जेंडर, क्षमता, लैंगिक रुझान, अक्षमता, भाषा, संस्कृति, धर्म, सामाजिक-आर्थिक स्थिति के हो, समान रूप से सीखने के अवसरसुलभ हो। पाठ्यचर्या संबंधी निर्णय ज्ञान के उन संदर्भों

और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि व अनुभवों को सम्मान व महत्त्व देने वाले हों जिन्हें बच्चे अपने संग पूर्व-प्राथमिक विद्यालय में लेकर आते हैं। इस तरह के अवसर भी दिए जाने चाहिए ताकि बच्चे एक-दूसरे की सांस्कृतिक और समूह की समझ तथा अंतर्निहित विविधता को स्वीकार कर सकें।

7. **मातृभाषा / घर की भाषा शिक्षण का माध्यम:** भाषा का बच्चों की पहचान और भावनात्मक सुरक्षा से साथ घनिष्ठ संबध है। भाषा उन्हें अपने विचार और भावनाओ को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने में सहायक है। हमारे जैसे बहुभाषी देश में सीखने-सिखाने की भाषा एक जटिल मुद्दा है। पूर्व प्राथमिक विद्यालयों में आने वाले, प्राथमिक विद्यालयों में आने वाले बच्चों के घर की भाषा, विद्यालय की भाषा या फिर उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा से भिन्न हो सकती है। शोध यह दर्शाते हैं कि जिन बच्चों को पूर्व-प्राथमिक कार्यक्रम में अपनी मातृभाषा में बोलने के अवसर मिलते हैं, वे आसानी से किसी विषय पर समझ बना लेते हैं। बच्चों की मातृभाषा/घर की भाषा में शिक्षण को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया गया है क्योंकि शुरुआती वर्षों में अवधारणाओं की समझ बनाने के लिए यही एक सर्वाधिक उपयुक्त तरीका है। यदि कक्षा का परिवेश ऐसा है जिसमें अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले बच्चे मौजूद हैं तो शिक्षक से अपेक्षा है कि वे अभिव्यक्ति के लिए हर भाषा को स्वीकृत करें और फिर धीरे-धीरे विद्यालय की भाषा से उनका परिचय करवाएँ। सभी बच्चों को सांकेतिक भाषा से परिचित होने के मौके भी दिए जाने चाहिए। यह समावेशन की नीति की नींव डालने में मददगार होगा।
8. **परिवार की सहभागिता:** अधिगम परिवेश निर्माण में परिवार की सहभागिता महत्वपूर्ण योगदान देती है।बच्चों के अधिगम और विकास में अभिभावकों और परिवार का बहुत ही महत्वपूर्णयोगदान होता है। पूर्व-प्राथमिक पाठ्यचर्या, पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों और घरों में परिवारों की सहभागिता और साझेदारी की अनुशंसा करती है।
9. **परिवेश का अन्वेषण:** बच्चे अपने परिवेश के साथ सतत रूप से परस्पर संवाद करते रहते हैं। विविध प्रकार की सामग्री और गतिविधियों के माध्यम से बच्चे वस्तुओं को जोड़-तोड़ करके, प्रश्न पूछकर, अनुमान लगाकर, सामान्यीकरण करके भौतिक, सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश का अन्वेषण करते हैं।सीखने का परिवेश इस प्रकार का होना चाहिए जो उन्हें अपनी ओर आकर्षित करे, सुरक्षित हो और अनुमान लगाने के मौके देता हो। साथ ही विकास के अनुरूप विविध प्रकार की सामग्री से सराहना करने, प्रोत्साहित करने और प्रतिक्रिया देने से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों सहित सभी बच्चों में सकारात्मक छवि बनती है और आत्मविश्वास पैदा होता है। बच्चे सक्रिय और जिज्ञासु शिक्षार्थी होते हैं, इसलिए पूर्व-प्राथमिक विद्यालय में उनकी सुरक्षा और शिक्षा की व्यवस्था सबसे चुनौतीपूर्ण

कार्य है। छोटे बच्चों के लिए सुरक्षित भौतिक स्थान का सृजन करना चाहिए जिससे उनकी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मदद हो सके।

10. **शिक्षकों की भूमिका:** यह शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह यह सुनिश्चित करें कि गतिविधि क्षेत्र में बच्चों को उनकी पहल वाले सहज खेल, जो पूर्व नियोजित नहीं हों, उन खेलों के लिए अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। शिक्षक को उपलब्ध स्थान, बच्चों की रुचि और शामिल किए जा रहे विषयों के अनुसार गतिविधि क्षेत्रों को आकर्षक बनाकर कक्षा की व्यवस्था करनी होती है।
11. **बच्चों के विकास में अभिभावकों की भूमिका एवं सहयोग:** शिक्षकों को अभिभावकों का सहयोग छोटे समूह की गतिविधियों, जैसे रचनात्मक गतिविधियाँ, कहानी, शैक्षिक भ्रमण में एक अतिरिक्त व्यक्ति के रूप में अभिभावक का सहयोग मिल सकता है।अभिभावक-शिक्षक संपर्क के द्वारा भी बच्चों के विकास में अभिभावकों का सहयोग मिल सकता है।
12. **समुदाय की भूमिका:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में समुदाय एक महत्वपूर्ण साझेदार है। समुदाय के सदस्यों की भागीदारी से बच्चों और उनके परिवार को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है। यदि समुदाय जागरूक होगा तो ही बच्चों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। समुदाय को जागरूकता सृजन कार्यक्रम जैसे लोकगीत, नुक्कड़ नाटक, कठपुतली का खेलआदि का में शामिल किया जा सकता है।पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में भी समारोह आयोजित करने चाहिए जिसमें समुदाय भाग ले सकें, जैसे उत्सव मनाना, खेल कार्यक्रम, बाल मेला आदि (कुछ अभिभावक एवं समुदाय के लोग कार्यक्रमों के आयोजन और प्रबंधन में भी मदद कर सकते हैं)।
13. **बच्चों के लिए गतिविधि क्षेत्र:** गतिविधि क्षेत्रों में खेलने से बच्चों को अपनी पसंद के अनुसार खेल-क्रिया चुनने और अपनी अभिरुचि को जानने में सहायता मिलती है। ऐसा करना उन्हें सृजन करने के चित्रांकन, अन्वेषण, हस्त-कौशल, नयी कुशलताएँ, सीखने एवं गलतियाँ करके अपनी कार्य शैली में सुधार करने के अवसर प्रदान करता है। साथ ही जिस क्रिया में वे संलग्न हों, जैसे टावर बनाना, पहेली को हल करना या किसी भूलभुलैया में मार्ग ढूँढ़ना, उनमें उपलब्धि एवं सफलता का अनुभव कराता है। जब बच्चे अन्य बच्चों के साथ खेलना सीखते हैं, सामग्री का उपयोग करने में भाग लेते हैं, साझा करते हैं, बारी-बारी से काम करना सीखते हैं और अन्य बच्चों की गतिविधि समाप्त होने तक प्रतीक्षा करना सीखते हैं, तो यह उनके सामाजिक, भावनात्मक विकास में मदद करता है। वे समय प्रबंधन के साथ आत्म-नियमन भी सीखते हैं। बच्चों का पानी से, रेत से खेलना, जोड़-तोड़ करना स्थूल एवं सूक्ष्म माँसपेशियों के विकास में सहायता करता है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था अवधि के दौरान प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षकों का बच्चों की क्षमताओं रुचियों, संस्कृतियों और योग्यताओं के बारे में ज्ञान बढ़ता जाता है। बच्चों के परिवारों से उनका मजबूत संबंध विकसित होता है। जब यह जानकारी प्राथमिक विद्यालयों के अन्य शिक्षकों से साझा की जाती है तब सीखने और विकास के नये अवसरों की योजना इस प्रकार बनाई जा सकती है जो बच्चों की क्षमताओंरुचियों, संस्कृतियों के अनुरूप हो और बच्चों ने जो पहले सीखा है उसे बढ़ावा देती हो। पूर्व-प्राथमिक से प्राथमिक कक्षाओं की ओर बढ़ने को बच्चों के अधिगम को सतत प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए।और समाज के सभी लोगों के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5.10 सारांश

शिक्षार्थियों आप इस इकाई को पड़ने के बाद समझ गए होंगे कि बाल्यावस्था में अधिगम परिवेश वह वातावरण है जिसमें बालक ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों का अर्जन करता है। प्रारंभिक बाल्यावस्था में यह परिवेश अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इसी समय बालकों की बुनियादी क्षमताओं का विकास होता है। एक प्रभावी अधिगम परिवेश की विशेषताओं में सुरक्षित, सहयोगात्मक, प्रेरक और बाल केंद्रित वातावरण प्रमुख हैं, जो बालकों की जिज्ञासा और आत्म-अभिव्यक्ति को बढ़ावा देता है। इस परिवेश में सुदृढ़ीकरण की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि सकारात्मक व्यवहारों को पुरस्कृत कर उन्हें दोहराने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाती है। इसके विपरीत, दंड का प्रयोग अत्यंत संयम और शिक्षात्मक उद्देश्य के साथ किया जाना चाहिए ताकि यह बालक के आत्म-सम्मान को ठेस न पहुँचाए। अनुशासन के माध्यम से बच्चों में उत्तरदायित्व, आत्मनियंत्रण एवं सामाजिक व्यवहार का विकास होता है, परंतु इसे दमनकारी न बनाकर सहयोगी व सहानुभूतिपूर्ण बनाए रखना आवश्यक है। प्रेरणा अधिगम प्रक्रिया की केंद्रीय शक्ति है, जो बालकों को सक्रिय रूप से सीखने और समस्याओं को हल करने के लिए प्रेरित करती है। अंततः, एक समुचित अधिगम परिवेश के निर्माण में खेल, भाषा, अनुभव, संवाद, परिवार, समुदाय, शिक्षक आदि कई महत्वपूर्ण कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो बच्चे के समग्र विकास को सुनिश्चित करती है।यह अवधि बेहद संवेदनशील होती है तथा इसका बच्चों के सर्वांगीण विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः प्रारम्भिक बाल्यावस्था में अधिगम परिवेश को बेहतर बनाने की अत्यंत आवश्यकता है।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर

1. C 2.B 3.C 4.C 5.C 6.C 7.C

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य 6. सत्य 7. असत्य 8. सत्य 9. असत्य 10. सत्य 11. असत्य 12. सत्य

5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Bandura, A. (1977). Social Learning Theory. Prentice-Hall.
- Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). Intrinsic Motivation and Self-Determination in Human Behavior. Plenum.
- Dreikurs, R., & Grey, B. (1968). Logical Consequences: A New Approach to Discipline. Meredith Press.
- Dreikurs, R., Grunwald, B. B., & Pepper, F. C. (1998). Maintaining Sanity in the Classroom. Taylor Publishing.
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा retrieved from https://www.nios.ac.in/media/documents/376_ECCE_PDF/ECCE_Book_1_Hindi.pdf on May, 2025.
- NCERT. (2020). Guidelines for Prevention of Corporal Punishment in Schools. नई दिल्ली: NCERT।
- NCERT. (2021). Guidelines for Positive Discipline. नई दिल्ली: NCERT।
- NCFTE. (2009). *National Curriculum Framework for Teacher Education*. NCTE, भारत।
- Nelsen, J. (2006). Positive Discipline. Ballantine Books.
- RTE Act. (2009). The Right of Children to Free and Compulsory Education Act. भारत सरकार।
- Skinner, B. F. (1957). Verbal Behavior. Appleton-Century-Crofts.

- Slavin, R. E. (2012). Educational Psychology: Theory and Practice. Pearson.
- Thorndike, E. L. (1911). Animal Intelligence: Experimental Studies. Macmillan.
- UNICEF. (2014). Child Friendly Schools Manual. United Nations Children's Fund.
- Vygotsky, L. S. (1978). *Mind in Society: The Development of Higher Psychological Processes*. Harvard University Press.
- Woolfolk, A. (2016). Educational Psychology (13th ed.). Pearson.
- प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा एन सी आर टी, महेन्द्रू, पटना retrieved from F-3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था_देखभाल_एवं_शिक्षा _(1).pdf on 2025

5.13 निबंधात्मकप्रश्न

1. अधिगम का परिवेश की विशेषताएं लिखिए।
2. प्रारंभिक बाल्यावस्था में एक स्वस्थ्य अधिगम परिवेश का निर्माण कैसे किया जा सकता है? विस्तारपूर्वक लिखिए।
3. प्रारंभिक बाल्यावस्था में सुदृढ़ीकरण, सजा, अनुशासन तथा प्रेरणा की भूमिका को समझाइए।

इकाई 6: बाल विकास के सिद्धांत

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 पियाजे के संज्ञानात्माक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय
6.4 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ
6.5 सिगमंड फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत
6.6 विकास की प्रमुख अवस्थाएं
6.7 मन के अभिकरण
6.8 इरिक्सन का मनोसामाजिक विकास सिद्धांत
6.9 ॲल्बर्ट बॅण्डुरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत
6.10 ॲल्बर्ट बॅण्डुरा के सिद्धांत के मूल संप्रत्यय
6.11 प्रभावी मॉडलिंग के लिए आवश्यक प्रक्रियाएं
6.12 सारांश
6.13 पारिभाषिक शब्दावली
6.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.15 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.16 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

शिक्षण एक व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ज्ञान, कौशल, मूल्यों और दृष्टिकोणों का संचरण होता है। यह केवल सूचना का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि एक सृजनात्मक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास की दिशा में कार्य करती है। शिक्षण को प्रभावशाली और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए कुछ सिद्धांतों का पालन किया जाता है जिन्हें हम "शिक्षण के सिद्धांत" कहते हैं। विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांतों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में ज्याँ पियाजे का अभूतपूर्व योगदान है। इसका मूल उद्देश्य बच्चों के विकास के अंतर्गत जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, तथा जटिल मानसिक क्रियाओं की सरलता से व्याख्या करना है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक सिगमन्ड फ्रायड हैं। यह सिद्धान्त मानव मन की

आन्तरिक अनुभूतियों (Feelings), आवेगों (impulses) तथा स्वमप्न-चित्रों (Fantasies) को समझने का प्रयास है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- जिन पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के प्रमुख संप्रत्ययों को जान पाएंगे;
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- इरिक्सन के मनोसामाजिक विकास के सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे;
- ऑल्बर्ट बॅण्डुरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।

6.3 पियाजे के संज्ञानात्माक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों (Important concepts) को समझना आवश्यक है जिनका वर्णन निम्नवत है:

i. स्कीमाटा (Schemata): पियाजे के अनुसार अनुभव या व्यवहार को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना को स्कीमाटा कहते हैं। एक नवजात शिशु में स्कीमाटा एक सहजात प्रक्रिया है, जैसे शिशु की चूसने की प्रतिक्रिया। बच्चा जैसे ही बाहरी दुनिया के साथ अन्त:क्रिया करना प्रारम्भ करता है, इन स्कीमाटा में भी तेजी से परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे बच्चे स्कीमाटा के सहारे समस्या समाधान के नियम तथा वर्गीकरण करना सीख लेते हैं। इस तरह स्कीमाटा का संबंध मानसिक संक्रिया (mental operation) से है।

ii. संगठन (Organization): संगठन से तात्पर्य प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करने से है जो इसे बाह्य वातावरण के साथ समायोजन करने में उसके कार्यों को संगठित करता है। व्यक्ति मिलने वाली नयी सूचनाओं को पूर्व निर्मित संरचनाओं के साथ संगठित करने की कोशिश करता है, परन्तु कभी-कभी इस कार्य में सफल नहीं हो पाता है, तब वह अनुकूलन करता है।

iii. अनुकूलन (Adaptation): पियाजे के अनुसार अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण के साथ समायोजित करने की कोशिश करता है। यह एक जन्मजात प्रवृत्ति है जिसके अंतर्गत दो प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं-

a. आत्मसातीकरण (Assimilation): मूलरूप से आत्मसातीकरण एक नयी वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि एक बालक के हाथ में टॉफी रख दी जाती है तो उसे वह तुरंत मुँह में डाल देता है, क्योंकि उसे यह पता है कि टॉफी खाने की वस्तु है। यहाँ बालक अनुकूलन के द्वारा खाने की क्रिया को आत्मसात कर रहा है अर्थात पुरानी बौद्धिक क्रिया को नवीन क्रिया के साथ समायोजित करता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवनपर्यंत चलती रहती है।

b. समाविष्टिकरण (Accommodation): वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक नये अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है जिससे वह वातावरण के साथ समायोजन कर सके। उदाहरण के लिए जब बालक को टॉफी के स्थान पर मिठाई देते हैं तो बालक यह जानता है कि टॉफी मीठी होती है पर अब वह अपने मानसिक सरंचना (Mental structure) में परिवर्तन लाता है, और इसमें नयी बातें जोड़ता है कि टॉफी और मिठाई दोनों अलग-अलग खाने की चीज़े हैं जबकि दोनों का स्वाद मीठा है। आत्मतसातीकरण तथा समाविष्टिकरण तभी संभव है जब वातावरण के उद्दीपक बालक के बौद्धिक स्तर के अनुरूप होते हैं।

iv. साम्यधारण (Equilibration): साम्यधारण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसातीकरण (Assimilation) और समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच संतुलन स्थापित करता है। पियाजे के अनुसार अगर किसी बालक के सामने जब कोई समस्या आती है जिसका पूर्व अनुभव उसे नहीं था तो वह पूर्व अनुभूति के साथ उसे आत्मसात (Assimilate) करता है। फिर भी अगर समस्या का हल नहीं होता है तो वह अपने पूर्व अनुभव को अपने अनुसार रूपान्तरित (Modification) करता है। अर्थात् वह संतुलन कायम रखने के लिए आत्मसातीकरण और समायोजन दोनों प्रक्रिया करना शुरू कर देता है।

v. संरक्षण (Conservation): पियाजे के अनुसार संरक्षण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक में एक ओर वातावरण के परितर्वन तथा स्थिरता में अंतर करने की क्षमता और दूसरी ओर वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व में परिवर्तन के बीच अन्तर करने की क्षमता निहित होती है।

vi. स्कीमा (Schema): पियाजे के अनुसार स्कीमा का अर्थ ऐसी मानसिक संरचना है, जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये।

1. एक नयी वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया ……कहलाती है।
2. अनुभव या व्यवहार को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना को …… कहते हैं।
3. ……वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण के बीच संतुलन स्थापित करता है।
4. …….. वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक नये अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है जिससे वह वातावरण के साथ समायोजन कर सके।

6.4 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

संज्ञानात्मक विकास की निम्न अवस्थाएं हैं:

i. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)

ii. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)

iii. मूर्त्त- संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage)

iv. अमूर्त्त- संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operations Stage)

क्रम सं.	अवस्था	आयु सीमा
1.	संवेदी पेशीय अवस्था Sensory Motor Stage	जन्म से लेकर 02 वर्ष
2.	पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था Pre-Operational Stage	02 से 07 वर्ष
3.	मूर्त संक्रियात्मक अवस्था Concrete Operational Stage	07 से 11वर्ष
4.	अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था	11 से 15 वर्ष

	Formal Operations Stage	

सामान्यतया यह चार अवस्थाएं विशेष आयु वर्ग से सम्बंधित होती हैं। जिन चार अवस्थाओं को ज्याँ पियाजे द्वारा प्रतिपादित किया गया है, इनका विवरण निम्नवत प्रस्तुत है:

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor Stage)- संज्ञानात्मक विकास की यह अवस्था जन्म से लेकर 02 वर्ष की आयु तक होती है। इस अवस्था में शिशु की मानसिक क्रियाएँ उसकी इन्द्रियों से जुड़ी हुई गामक क्रियाओं के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। बोलचाल की भाषा को उपयोग न कर सकने के कारण शिशु इस उस वस्तु को दिखाकर अपने को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। शिशु अपनी समझ को व्यक्त करने के लिए विभिन्न गामक क्रियाओं (Motor skills) का उपयोग करते हैं। यही कारण है कि इस अवस्था में जो वस्तु उसके सामने होती है उसी का उसके लिए अस्तित्व होता है। आँखों से ओझल होते ही वस्तु का अस्तित्व भी नहीं रहता है। यही कारण है कि इस अवस्था में शिशु 'खिलौने को बन्दर ले गया' जैसी बातों को मानने लगता है। इसी प्रकार किसी वस्तु को किसी चीज से ढक कर छुपाने पर वह शिशु उसको बाद में ढूँढने का प्रयास भी करता है। इस अवस्था में विकास की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

• शिशु अपनी गति और अनुभव के माध्यम से अपने आस पास की जानकारी ग्रहण करता है।

• बच्चे चीजों को चूसने, पकड़ने, देखने और सुनने जैसी क्रियाओं के माध्यम से सीखते हैं।

• संज्ञानात्मक विकास के इस प्रारंभिक चरण के दौरान बच्चे अपने अनुभवों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

• इस अवस्था के प्रारम्भ में बच्चे का संपूर्ण अनुभव सजगता, ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से और गामक प्रतिक्रियाओं (motor responses) के माध्यम से होता है।

• इस अवस्था में बच्चे विकास और सीखने की अवधि से गुजरते हैं। जैसे-जैसे बच्चा अपने वातावरण के साथ परस्पर क्रिया करता है, वह लगातार इस बारे में खोज कर रहा होता है कि चीजें कैसी काम करती हैं।

• इस अवस्था में होने वाला संज्ञानात्मक विकास अपेक्षाकृत कम समय में होता है और साथ ही इसमें वृद्धि भी होती है। बच्चे न केवल शारीरिक क्रियाएं करना सीखते हैं जैसे रेंगना और चलना, वरन वे जिनके साथ अन्त:क्रिया करते हैं उनसे भाषा के बारे में भी बहुत कुछ सीखते हैं।

2. पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था (Pre-Operational Stage) - संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक होती है। इस अवधि में शब्दों, वाक्यों का उपयोग कर शिशु/ बच्चा अपनी बात कहना शुरू कर देता है। इस प्रकार गामक क्रियाओं के स्थान पर भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगती है। इस अवस्था में मानसिक विकास की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

i. इस अवस्था में संप्रत्यय निर्माण (Concept Formation) की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। बच्चे अपने वातावरण में विद्यमान वस्तुओं के नाम और उनमें अंतर समझना प्रारम्भ कर देते हैं। उदाहरण- चार पैरों वाले प्राणियों के दो वर्गों जैसे 'कुत्ता और गाय' में अंतर कर सकना प्रारम्भ हो जाता है।

ii. निर्जीव व सजीव वस्तुओं में अंतर कर पाना प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ में बच्चे खिलौनों को भी सजीव समझते हैं। बाद में वे सब समझ जाते हैं कि निर्जीव वस्तुओं को सर्दी व गर्मी नहीं लगती है। इसी प्रकार उनकी समझ में आ जाता है कि गुड़िया या खिलौनों को भूख नहीं लगती है और वे दूध नहीं पीते हैं। इसको पियाजे ने जीववाद कहा है जिसमें बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है। उनके अनुसार जो भी वस्तुएँ हिलती हैं या घूमती हैं वे वस्तुएँ सजीव हैं। जैसे सूरज, बादल, पंखा ये सभी अपना स्थान परिवर्तन करते हैं, व पंखा घूमता है, इसलिए ये सभी सजीव हैं।

iii. इस अवस्था में बच्चे अत्यधिक आत्मकेंद्रित (Egocentrism) होते हैं। उनको लगता है कि आस-पास की सभी चीजें केवल उन्हीं के लिए हैं। अपने माता-पिता को वो केवल अपना ही मानते हैं तथा उन पर सिर्फ अपना अधिकार समझते हैं। बाद में धीरे-धीरे आत्मकेंद्रित रहने की स्थिति से वे सामाजिकता की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। साथ ही दूसरों के साथ चीजों को बांटना भी शुरू कर देते हैं।

iv. इस अवस्था में बच्चे कल्पनाशील होते हैं परन्तु इस कल्पना से कुछ नई चीज बनाने की क्षमता उनमें नहीं होती है। अपने द्वारा बनाए गए कागज़ के हवाई जहाज को वो वास्तविक हवाई जहाज समझते हैं। इस अवस्था में उन्हें परियों और जादू की कहानियाँ अच्छी लगने लगती हैं। तर्क पर आधारित चिंतन करने की क्षमता उनमें नहीं होती है और वे केवल हवाई किले बनाते हैं।

v. पियाजे के अनुसार इस उम्र के बच्चों में तार्किक चिन्तन की कमी रहती है, जिसे पियाजे ने संरक्षण का सिद्धान्त (Law of conservation) कहा है।

उदाहरण के लिए: दो अलग-अलग आकार प्रकार के कांच के बर्तनों में समान मात्रा में रखे गए दूध को इस अवस्था के बच्चे समान या बराबर नहीं मान पाते हैं। कम चौड़ाई के लंबे बर्तन में रखे समान

मात्रा के दूध को बच्चे अधिक चौड़ाई के छोटे बर्तन में रखे समान मात्रा के दूध के बराबर नहीं मान पाते हैं।

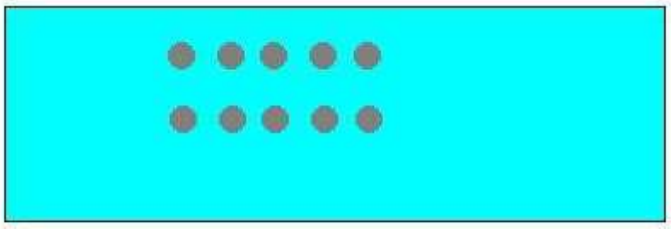

(a)

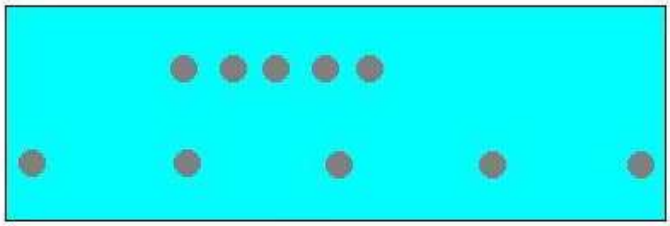

(b)

समान मात्रा के बटनों को ढेर बनाकर दिखाने तथा उन्हीं बटनों को फैलाकर दिखाने पर बच्चे फैले हुए बटनों को अधिक मानते हैं।

अपने घर से दोस्त के घर की दूरी को और अपने उसी दोस्त के घर से अपने घर की दूरी को बराबर मानने की समझ उनमें नहीं होती है।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage)- यह अवस्था 7 साल से 11 साल तक होती है। इस अवस्था में मानसिक विकास की विशेषताएँ निम्नवत हैं:

i. विभिन्न प्रकार के संप्रत्ययों की समझ स्पष्ट हो जाती है। गाय, पेड़, जंगल, खेत, तालाब आदि संप्रत्यय स्पष्ट हो जाते हैं। वस्तुओं को पहचानना, उनको अलग- अलग वर्गों में विभाजित करना तथा वस्तुओं में अंतर कर सकने की क्षमता विकसित हो जाती है।

ii. इस अवस्था में बच्चे चीजों के बीच की समानता, अंतर, सम्बन्ध और दूरी को समझने लगते हैं। वे 05 आमों और 10 आमों के संबंधों को समझना प्रारम्भ कर देते हैं। दो अलग-अलग वर्गों के प्राणियों में अंतर स्पष्ट होने लगता है। वे समझने लगते हैं कि कुछ प्राणी 'गाय' होते हैं, कुछ प्राणी 'कुत्ता' होते हैं तथा कुछ 'बिल्ली' होते हैं। इस अवस्था में वस्तुओं के सामने ना होने पर भी वे उन पर अमूर्त रूप से विचार प्रारम्भ कर देते हैं।

iii. उनके विचार करने के तरीके में क्रमबद्धता तथा तार्किकता आनी प्रारम्भ हो जाती है। उनकी कल्पनाशीलता धीरे- धीरे यथार्थ पर आधारित होने लगती है।

iv. पलट कर सोचने की समझ तथा संख्या तथा परिमाण के आधार पर सही समझ भी धीरे-धीरे विकसित होने लगती है। अधिक या कम बटनों को वे संख्या के आधार पर समझना प्रारम्भ कर देते हैं। उनकी समझ में यह बात भी आ जाती है कि समान मात्रा का दूध अलग-अलग आकार के बर्तनों में होने के बाद भी बराबर होता है। इतना होने पर भी इस अवस्था में मानसिक क्रियाएं अधिकांशत: मूर्त या स्थूल रूप में ही उपयोग में लाई जाती हैं।

4. अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Period of Formal Operations)- यह संज्ञानात्मक विकास की अंतिम अवस्था है जो लगभग 11-15 की आयु तक होती है। इस अवस्था के मानसिक विकास के महत्वपूर्ण बिंदु निम्नवत हैं-

i. संप्रत्ययों की समझ पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। भाषाई दक्षता एवं सम्प्रेषण तक पहुँचने के लिए विचार, सोच, तर्क, कल्पना, निरीक्षण, परीक्षण, अवलोकन, प्रयोग आदि करने के योग्य हो जाता है।

ii. स्मरण करने की योग्यता रटने के स्थान पर तर्क एवं समझ पर निर्भर करने लगती है।

iii. चिंतन करने के लिए चीजों का मूर्त रूप में दिखना आवश्यक नहीं रह जाता है। A, B, C, D एक चतुर्भुज है, गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत आदि की कल्पना संभव हो जाती है। वस्तुओं का निर्माण करने के लिए कल्पनाशक्ति का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है। तथ्यों, सूचनाओं से होते हुए नियमों और

सिद्धांतों की समझ विकसित होने लगती है। सृजनात्मकता के लिए आवश्यक योग्यताएं जैसे खोज करना, रचना करना, मौलिक चिंतन करना आदि बौद्धिक योग्यताएं विकसित हो जाती हैं।

6.5 सिगमंड फ्रायड का मनोविश्लेवषणवादी सिद्धांत

मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक सिगमन्ड फ्रायड हैं। यह सिद्धान्त मानव मन की आन्तरिक अनुभूतियों (Feelings), आवेगों (impulses) तथा स्वमप्न-चित्रों (Fantasies) को समझने का प्रयास है।

6.6 विकास की प्रमुख अवस्थाएं

सिगमंड फ्रायड का मानना था कि बच्चे के विकास की प्रत्येक अवस्था का सीधा संबंध उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और माँगों से होता है। प्रत्येक अवस्था शरीर के एक विशेष हिस्से पर आधारित होती है और सभी यौन आधारित होती हैं। फ्रायड ने मानव व्यवहार के लिए गतिशील और मनोसामाजिक स्पष्टीकरण दिया। उन्होंने विकास की मनो-यौन अवस्थाओं का संप्रत्यय दिया। फ्रायड का मानना था कि प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताएं होती हैं और प्रत्येक अवस्था के दौरान उन आवश्यकताओं की संतुष्टि महत्वपूर्ण है।

फ्रायड ने अपने शोध कार्य के परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला कि काम-भावनाएं (Sexual feeling) बाल्यावस्था से ही सक्रिय रहती हैं। फ्रायड 'कामुकता' (Sex) को केवल सम्भोग तक ही सीमित नहीं रखते हैं वरन् इसके अन्तर्गत वे दैहिक आनन्द सुख (Bodily pleasure) को उत्पन्न करने वाली सभी क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं।

फ्रायड के सिद्धान्त में 'सामान्य कामुक ऊर्जा' (general sexual energy) को 'लिबिडो' कहा गया है और शरीर के जिस हिस्से में यह ऊर्जा केन्द्रित होती है उसे कामोत्तेजक भाग (erogenous zone) कहा जाता है। शरीर का कोई भी हिस्सा कामोत्तेजक भाग बन सकता है लेकिन बाल्यावस्था में मुँह, गुदा तथा जननांग (the mouth, the anus, and the genital area) तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग हैं। बालक/बालिका की काम सम्बन्धी रुचियाँ इन कामोत्तेजक भागों में एक निश्चित अवस्था क्रम (specific stage sequence) से केन्द्रित रहती हैं। बच्चे की प्रथम काम सम्बन्धी रुचि 'मुँह' पर केन्द्रित रहती है। इसके बाद यह रुचि 'गुदा' केन्द्रित हो जाती है और अन्ततच: 'जननांग' पर केन्द्रित होती है।

फ्रायड का मानना था कि यह क्रम एक परिपक्वता प्रक्रिया से बनता है और यह प्रक्रिया अर्न्तजात (innate), जैविक (biological) कारकों पर आधारित होती है। इसके साथ ही बच्चे के निजी अनुभव भी इस 'क्रम' को सुनिश्चित करने में निर्णायक विकासात्मक भूमिका का निर्वहन करते हैं।

1. मुखीय अवस्था (Oral Stage): जन्म से 18 माह

मुखीय अवस्था को दो उप-अवस्थाओं में बांटा गया है:

a. मुखीय चूषण अवस्था (Oral Sucking Stage)- यह अवस्था जन्म से 06 माह की अवस्था तक रहती है। इस अवस्था में 'सामान्य कामुक ऊर्जा' यानी Libido का स्थिरीकरण मुंह, ओष्ठ और जीभ पर रहता है। इस अवस्था में बच्चे का व्यवहार पूर्णरूपेण 'इड' (id) से प्रभावित रहता है। फ्रायड ने लिखा है- 'यदि एक शिशु अपने को व्यक्त कर सकता होता तो वह निस्सन्देह यह बताता कि माँ के स्तनों को चूसना जीवन की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। चूसना वास्तव में अत्यावश्यक है, क्योंकि यह शिशु को पोषण प्रदान करता है, बच्चे को जीवित रहने के लिए उसे चूसना ही होगा। फ्रायड का विचार था कि 'चूसने' से स्वयं ही आनन्द/सुख प्राप्त होता है। यही कारण है कि भूखे नहीं होने पर भी शिशु अपने अंगूठे को चूसते हैं। फ्रायड इस प्रकार के सुख/आनन्द के लिए चूसने को 'Autoerotic' (आत्म-रति) कहते हैं क्योंकि शिशु अपने शरीर से ही परितोषण (Gratification) प्राप्त करते हैं। शिशु इस अवस्था में पूर्ण रूपेण दूसरों पर आश्रित रहते हैं परन्तु उन्हें इस बात का भान नहीं होता क्योंकि उन्हें दूसरों के अलग/पृथक अस्तित्व का बोध ही नहीं होता है। फ्रायड इस प्रारम्भिक वस्तुरहित स्थिति (initial objectless state) को एक प्राथमिक आत्मरति (as one of primary narcissism) की स्थिति बताते हैं। आत्मरति का अर्थ है 'स्वमप्रेम' (Self - love) और इसे ग्रीक मिथक (Greek Myth) से लिया गया है। इस मिथक में 'नार्सिसस' (Narcissus) नामक बालक तालाब के पानी में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उससे प्यार करने लगता है। आत्मरति से यह प्रदर्शित होता है कि शिशु मूल रूप से अपने शरीर पर ही केन्द्रित रहते हैं।

b. मुखीय काटना अवस्था (Oral Biting Stage)- यह अवस्था लगभग 6 माह से 18 माह तक की आयु तक रहती है। इस अवस्था से शिशु 'दूसरे' के प्रत्येय को समझना प्रारम्भ करते हैं, विशेष रूप से माँ को अपने से अलग आवश्यक 'दूसरे' के रूप में समझते लगते हैं। माँ के पास न होने पर या उसकी जगह किसी अन्य को देखने पर वे चिन्तित हो जाते हैं। इस अवधि में शिशु के जीवन में एक दूसरा महत्वपूर्ण विकास हो रहा होता है। दांतों का बढ़ना और दांत से काटने की उत्तेजना का प्रारम्भ होना। बच्चा अपनी मां से प्रेम करता है, क्योंकि वह उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है तथा मां से घृणा भी करने लगता है, क्योंकि वह अपना दूध छुड़ा कर उसे बोतल से दूध पिलाती है तथा उसका ठोस आहार प्रारम्भ करती है। बच्चा मां के स्तन को काट कर अपनी असन्तुष्टि को प्रकट करता है। इसे फ्रायड ने द्वितीय मानसिक आघात (Second Major Traumatic Experience) का नाम दिया है। फ्रायडवादी मानते हैं कि शिशु को ऐसा लगता है कि 'काटने' से माँ दूर हो सकती है। इस स्तर पर जीवन जटिल और कष्टप्रद हो जाता है। शिशु अपने जीवन के प्रारम्भिक समय में ही पहुँचना चाहता है जब जीवन काफी सरल और संतोषप्रद था। शिशु

स्तनपान से प्राप्त होने वाले आहार और सुख से 'दांत से काटने' की प्रवृति के कारण वंचित होने लगता है। यह शिशु के लिए मानसिक आघात के तुल्य होता है।

यहाँ पर हम आपको दो संप्रत्ययों से परिचित कराते हैं-

निर्धारण एवं प्रतिगमन (Fixation and Regression)- फ्रायड के अनुसार हम सब मुखीय अवस्था (Oral Stage) तथा मनोलैंगिक विकास के अन्य स्तरों से गुजरते हैं। लेकिन किसी स्तर पर एक व्यक्ति अपने को 'निर्धारित' (Fix) भी कर सकता है चाहे वह उससे कितना भी आगे क्यों न चला गया हो। ऐसी स्थिति में वह उस अवस्था के सुख/आनन्द से ही जुड़ा रह जाता है। उदाहरण के लिए 'मुखीय अवस्था' से जुड़े रह गए व्यक्ति भोजन करने, चीजों को चूसने या दांत से काटने (जैसे पेन्सिल आदि), धूमपान या मदिरापान की लत से सुख/आनन्द प्राप्त करते पाए जाते हैं। मनोविश्लेषणवादी सामान्यतया मानते हैं कि इसका कारण मुखीय अवस्था पर अत्यधिक परितोषण (excessive gratification) या अत्यधिक नैराश्य/कुण्ठा (excessive frustration) के कारण होता है।

कभी-कभी व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में थोड़े से ही मुखीय लक्षण (Oral Traits) को प्रदर्शित करते हैं जब तक कि वे कुछ नैराश्य/कुण्ठा से ग्रस्त नहीं होते हैं। तब वे मुखीय निर्धारण बिन्दु (Oral Fixation Point) पर लौट जाते हैं। एक नन्हा बच्चा अपनी छोटी बहन के जन्म के बाद जब माता-पिता के लाड़ प्यार में अपने लिए कमी पाता है तो अंगूठा चूसने की जिस क्रिया को वह छोड़ चुका होता है, उसे पुन: प्रारम्भ कर देता है। यह उसका मुखीय अवस्था (oral stage) पर लौट जाना (regress) है। इसी प्रकार एक किशोरी जो मुखीय अवस्था के मामलों से प्रमुख रूप से सरोकार नहीं रखती है, अपने किशोर-मित्र से सम्बन्ध टूट जाने पर अवसादित (depressed) होने के कारण 'खाते रहने' की ओर उन्मुनख हो जाती है।

2. गुदा अवस्था (The Anal Stage): 18 माह से 03 वर्ष

18 माह से 03 वर्ष तक आयु में शिशु की काम रुचियाँ (sexual interests) गुदा क्षेत्र (anal zone) पर केन्द्रित रहती हैं। गुदा क्षेत्र की श्लेष्मत झिल्लियों (mucous membranes) में आन्त्र क्रियाओं (Bowel movements) से उत्पन्न होने वाली आनन्ददायक अनुभूतियों (Pleasurable sensations) से बच्चे अवगत होने लगते हैं। वे मल-मूत्र विसर्जन की क्रियाओं को कुछ देर रोककर करने से गुदीय आनन्द प्राप्त करना प्रारम्भ कर देते हैं। वे अपने द्वारा उत्पन्न किए गए 'मल' में रुचि लेने लगते हैं और उससे खेलने-लीपने-पोतने से आनन्द प्राप्त करने लगते हैं। यह स्वाभाविक है कि माता-पिता इस प्रकार की क्रियाओं को बहुत देर तक नहीं चलने देते हैं। इसके लिए माता-पिता टॉयलेट- प्रशिक्षण (Toilet Training) देते हैं। कुछ बच्चे कुछ समय के लिए इसका विरोध करते हैं तथा अपने तथाकथित 'गन्दे' काम को जारी रखते हैं। इस विरोध को प्रदर्शित करने में वे चीजों को

बर्बाद करने, अव्यवस्थित रहने तथा अस्तव्यस्त रहते हैं। इस प्रकार का प्रदर्शन प्रौढ़ावस्था तक भी चल सकता है। फ्रायड माता-पिता की 'टॉयलेट-ट्रेनिंग' पर जोर देने के दूसरे परिणाम पर भी ध्यान देते हैं। उन्होंने देखा कि कुछ लोग इस कारण से स्वच्छ रहने, व्यवस्थित रहने तथा विश्वसनीय बने रहने में अत्यधिक जोर देने लगते हैं। ऐसे लोग माता-पिता के 'गन्दे काम' के विरोध को न मानने को बहुत जोखिम- भरा समझने लगते हैं और माता-पिता द्वारा बनाए नियमों का पालन करने में ही भलाई समझने लगते हैं। ऐसे बच्चे अपने द्वारा उत्पन्न 'मल' को तो दूसरों के कहने पर छोड़ देते हैं परन्तु बाद के जीवन में अपने द्वारा उत्पन्न वस्तुओं यथा 'धन-सम्पत्ति'को पकड़कर रखते हैं और किसी दूसरे को उसे कदापि नहीं लेने देते हैं।

3. लैंगिक अवस्था (The Phallic Stage): 3 वर्ष से 6 वर्ष

लगभग 3 वर्ष से 6 वर्ष की आयु में बच्चे लैंगिक अवस्था में प्रवेश करते हैं। फ्रायड ने इस स्तरे को बालिकाओं की तुलना में बालकों के सन्दर्भ में अधिक अच्छे तरीके से समझा है।

a. बालक का ओडिपस संकट (The Boy's Oedipus Crisis)- ओडिपस संकट बालक द्वारा अपने लिंग पर रुचि लेने से प्रारम्भ होता है। आसानी से उत्तेजित होने वाला, आकार में बदलने वाला और सनसनी से भरपूर यह अंग बालक के कौतुहल को प्रज्वलि।त कर देता है। बालक अपने लिंग की तुलना अन्य पुरूषों तथा जानवरों के लिंग से करने लगता है और वह लड़कियों और स्त्रियों के जननांगों को देखने के प्रयास करने लगता है। वह लिंग के प्रदर्शन से आनन्दित होने लगता है। वह बड़े होने पर अपनी काम सम्बन्धी (sexual) भूमिका की कल्पना करने लगता है। अपने कल्पना जगत (fantasy) में वह अपने को एक आक्रामक नायक पुरूष (aggressive, heroic male) के रूप में सोचता है और अपने विचारों को अपनी प्राथमिक प्रेम-वस्तु, अपनी माँ पर केन्द्रित करता है। वह अपनी माँ से विवाह करने की कल्पना करने लगता है। लेकिन बालक यह शीघ्र ही जान लेता है उसके ये विचार अनुचित माने जाते हैं। वह जान जाता है कि वह 'बड़ा बच्चा' (big boy) हो चुका है। यहाँ पर 'ओडिपस संकट' की रेखाएं खिंच जाती हैं। बालक अपने पिता को माँ के लिए प्यार में प्रतिद्वन्दी के रूप में देखने लगता है। पिता से ईर्ष्या होने पर भी वह पिता से प्यार करता है तथा उसे पिता की जरूरत होती है। अत: अपने विध्वंसकारी विचारों से स्वयं डर जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस स्थिति में बालक 'केसट्रेशन'(castration) की आशंका से ग्रस्त हो जाता है। 'ओडिपस संकट' से उबरने के लिए बालक माता के प्रति अपनी 'अगम्य गामी इच्छाओं' (incestuous desires) का दमन (repression) करता है। वह माँ के प्रति अपनी कामुक भावनाओं को गहरे अचेतन (unconscious) में धकेल देता है। वह अपनी माँ को अभी भी प्यार करता है। लेकिन ऐसा वह सामाजिक रूप से स्वीकृत शुद्ध-उद्दात रूप से करता है। पिता के प्रति विरोध का भी वह दमन करता है तथा उससे एकीकरण (identification) के लिए उसका जैसा बनने के प्रयास प्रारम्भ कर देता है।

'ओडिपस संकट' से अन्तिम रूप से निपटने के लिए बालक 'परम अहम' (super ego) का आत्मीकरण करता है। वह अपने माता-पिता के निषेधों (prohibitions) को आत्मीकृत करता है और स्वयं को एक 'पुलिस वाले' के रूप में देखता है जो उसे खतरनाक इच्छाओं तथा आवेगों से रोकता है।

b. बालिका का ओडिपस संकट (The Girl's Oedipus Complex)- फ्रायड का विश्वास था कि एक छोटी बालिका के लिए भी 'ओडिपस संकट' होता है लेकिन उन्होंने स्वीकार किया कि इस सन्दर्भ में उनकी समझ अपूर्ण एवं अस्पष्ट है। उनके अनुसार 5 वर्ष की आयु के आसपास से बच्ची अपनी माँ से निराश हो जाती है। उसको लगता है वह माँ के प्यार से वंचित हो रही है। छोटे भाई या बहन के जन्म होने से उसे ऐसा लगने लगता है। वह माँ की बढ़ती हुई रोक-टोक से क्षुब्ध होने लगती है। अन्ततः उसे सर्वाधिक निराशा तब होती है जब उसे लगता है कि माँ ने उसे अपर्याप्त रूप से सज्जित (insufficiently equipped) कर इस दुनिया में भेजा है क्योंकि उसके पास लिंग नहीं है। फ्रायड ने इसे लिंग ईर्ष्या/डाह (penis envy) कहा- लिंग पाने की चाह तथा एक बालक के समान होने की इच्छा। लेकिन कुछ समय बाद यह छोटी बच्ची अपने नारी जातीय गर्व (feminine pride) को पुनः प्राप्त कर लेती है। ऐसा तब होता है जब वह पिता द्वारा उस पर ध्यान दिए जाने को महत्व देने लगती है। बच्ची की शैशवावस्था में हो सकता है कि पिता का उसके प्रति विशेष ध्यान न हो परन्तु अब पिता उसकी प्रशंसा करने लगते हैं- पिता उसे 'मेरी छोटी राजकुमारी' (my little princess) कहने लगते हैं। वास्तविक दुनिया में वह माँ को अपना प्रतिद्वन्दी मानने लगती है। इस ओडिपस स्थिति को फ्रायड 'इलेक्ट्रा संकट' (Electra complex) कहते हैं।

4. अव्यक्ता अवस्था (The Latency Stage): 06 वर्ष से 11 वर्ष

ओडिपस अनुभूतियों (Oedipus Feelings) के विरोध में दृढ़ बचाव निर्मित कर, बच्चा 'अव्यक्ता अवस्था' में प्रवेश करता है जो 06 वर्ष से 11 वर्ष तक होती है, अधिकांश कामुक और आक्रामक फंतासियां (sexual and aggressive fantasies) अब अव्यक्त रहती हैं। वे अचेतन मन में गहराई में दबा दी जाती हैं। इस समय कामुकता का दमन काफी व्यापक होता है- इस दमन में न केवल ओडिपस अनुभूतियां और स्मृतियां समाहित होती हैं वरन् मुखी और गुदीय अनुभूतियां और स्मृतियां भी होती हैं। खतरनाक आवेग और फंतासियां अब जमींदोज/ भूमिगत (underground) होती हैं। इस समय बालक/बालिकाएं इनसे बहुत अधिक परेशान नहीं रहते हैं और यह अवस्था अपेक्षतया शांत होती है।

इस अवस्था में बालक-बालिकाएं अपनी ऊर्जाओं का मूर्त, सामाजिक रूप से स्वीकृत कार्यों यथा खेल-कूद तथा बौद्धिक क्रियाओं में उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। कुछ फ्रायडवादियों का तर्क है कि कामुक और आक्रामक फंतासियां इस अवस्था में पूर्ण रूप से लुप्त नहीं होती हैं जैसा कि

फ्रायड का मानना था। लेकिन वे भी यह मानते हैं कि काम-सम्बन्धी मामले अपना डरावना तथा दुर्दमनीय स्वरूप खो चुके होते हैं। सामान्यता, अव्यक्ता अवस्था में बच्चे एक नया सुव्यवस्थित आत्म-नियंत्रण प्राप्त कर लेते हैं।

5. तारूण्य – जनन सम्बन्धी अवस्था (Puberty– The Genital Stage)

अव्यक्ता अवस्था का स्थित्यत्व बहुत समय नहीं बना रहता है। नव- फ्रायडवादी इरिकसन इसे 'तूफान से पहले का सन्नाटा' (it is only a bull before the storm of puberty) कहते हैं। तारूण्य अवस्था में, जो बालिकाओं में लगभग 11 वर्ष से तथा बालकों में लगभग 13 वर्ष से प्रारम्भ होती है, काम-सम्बन्धी ऊर्जा (sexual energy) में वृद्धि हो जाती है और यह ऊर्जा स्थापित सुरक्षा कवचों को ध्वस्त सा कर देती है। इस अवस्था में ओडिपस अनुभूतियां पुन: चेतन स्तर पर आ धमकती हैं और युवक/युवतियां इन अनुभूतियों को वास्तविक धरातल पर उतारने के लिए सक्षम भी हो जाते हैं।

तारूण्य अवस्था के चलते व्यक्ति का एक प्रमुख कार्य 'माता-पिता से स्वतन्त्र होना है', यहाँ पर यह उल्लेख करना समीचीन है कि यह अवधारणा पाश्चात्य संस्कृति के सन्दर्भ में कदाचित सही हो परन्तु भारतीय परिवेश में इसके पूर्णरूपेण ठीक होने में सन्देह होना सम्भवत: गलत नहीं है। जन्म से लेकर तारूण्य अवस्था तक मानव अपने माता-पिता पर मजबूत निर्भरता निर्मित कर लेता है और उसके लिए अपने माता-पिता से स्वतंत्र होना भावनाओं के दृष्टिकोण से कष्टकारी होता है। वास्तव में अधिकतर लोगों के लिए माता-पिता से पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होना कभी भी सम्भव नहीं हो पाता है।

6.7 मन के अभिकरण

इस संदर्भ में फ्रायड ने तीन प्रत्ययों को प्रतिपादित किया है- इदम्, अहम् तथा परम अहम्।

i. इदम् (the Id)– फ्रायड ने प्रारम्भ में 'इदम्' को व्यक्तित्व का 'अचेतन' (unconscious) भाग कहा था। यह व्यक्तित्व का सर्वाधिक आदिम भाग है (the most primitive part of the personality) तथा मूल दैहिक प्रतिक्रियाएं तथा अंतर्नोद (the basic biological reflexes and drives) इसमें सन्निहित रहती हैं। इदम् 'आनन्द/सुख का सिद्धान्त' (Pleasure principle) से शासित रहता है। इसका उद्देश्य अधिकतम आनन्द/सुख की प्राप्ति तथा पीड़ा को न्यूनतम करना होता है। तनाव को कम करना इसका लक्ष्य होता है। फ्रायड के अनुसार लम्बे समय तक भूखा रहने के बाद भोजन की प्राप्ति तथा मल-मूत्र के देर तक बाधित होने के बाद इसके निष्कासन की क्रिया आनन्ददायक होती है।

सामान्यतया, इदम प्रत्येक उत्तेजना को दूर करने तथा शान्त स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करता है – यह स्थिति गहरी और शांत निद्रा की स्थिति होती है। जीवन में अनेक प्रभावों तथा आवेगों को हम

'इदम्' में दमित कर देते हैं और वे वहाँ मूल अंतर्नोदों के साथ अस्तित्व में बने रहते हैं। मन के इस अंधेरे और अगम्य भाग में ऐसा कुछ नहीं होता है जो तर्क पर आधारित हो तथा जहाँ समय का कोई भान हो। ये प्रभाव तथा आवेग एक प्रकार से अमर होते हैं तथा समय बीत जाने पर भी ऐसे प्रकट होते हैं मानो वे अभी घटित हुए हैं। इदम् महासागरीय, अस्तव्यस्त तथा असंगत (Oceanic, chaotic, and illogical) होता है। यह बाह्य जगत से पूर्णरूपेण असम्बद्ध होता है। इस रहस्यमय क्षेत्र के बारे मं, जानकारी सपनों के अध्ययन से प्राप्त होती है।

इदम् में मूल अंतर्नोद तथा प्रतिक्रियाओं के साथ-साथ दमित अनुभव तथा चित्र समाहित रहते हैं। इसके साथ ही इदम् में आक्रामकता तथा विध्वंसकारी शक्तियां भी सन्निहित रहती हैं।

ii. अहम् (The Ego)- यदि हम 'इदम्' से ही शासित रहेंगे तो हम लम्बे समय तक जीवित ही नहीं रह पाएंगे। अस्तित्व में बने रहने के लिए, पूर्ण रूपेण मतिभ्रम (Hallucinations) के आधार पर कार्य करने या केवल अपने आवेगों के अनुरूप कार्य करना सम्भव नहीं है। हमें वास्तमविकता से सम्बन्ध रखना सीखना पड़ता है। उदाहरण के लिए, एक छोटा बच्चा जल्दी ही सीख जाता है कि जो कुछ सामने दिख रहा है वे सब खाद्य पदार्थ नहीं खाए जा सकते हैं। वह जान जाता है कि यदि वह किसी बड़े बच्चे की चॉकलेट को खा लेगा तो वह पिट भी सकता है। वह अभिकरण जो तात्कालिक आवेगों को टालना सिखाता है और वास्तविकता को समझना सिखाता है, वह अहम् (ego) कहलाता है।

फ्रायड के अनुसार जहाँ एक ओर इदम् अनियंत्रित (untamed) आवेग है, वहीं अहम् तर्क तथा लाभदायक समझ (reason and good sense) पर आधारित होता है। अहम् वास्तविकता का ध्यान रखता है अत: यह 'वास्तविकता सिद्धान्त' (reality principle) का अनुसरण करता है।

अंग्रेजी भाषा का 'ईगो' का दैनिक जीवन में उपयोग कुछ अलग तरीके से होता है। हम सुनते हैं कि उसका ईगो बहुत बड़ा है- big ego, जिसका तात्पर्य है कि उसकी स्व-धारणा (self-image) आडम्बरपूर्ण है। वास्तव में 'अहम्' (ego) कुछ निश्चित कार्यों से प्रदर्शित होता है जैसे- वास्तविकता का सही अनुमान लगाना, आवेगों को नियंत्रित करना। 'स्वधारणा' व्यक्ति की उसके द्वारा बनाई गई छवि है और यह 'अहम्' से भिन्न है।

यद्यपि 'अहम्' अपने कार्य 'इदम्' से स्वतंत्र रहकर करता है, यह अपनी समस्त ऊर्जा 'इदम्' से ही प्राप्त करता है। फ्रायड ने 'अहम्' से 'इदम्' का सम्बन्ध घुड़सवार और घोड़े जैसा बताया है। घोड़ा इंजन ऊर्जा (locomotive energy) की आपूर्ति करता है तथा घुड़सवार को अधिकार प्राप्त होता है कि वह यात्रा के लक्ष्य को निर्धारित करे तथा घोड़े को उसी ओर ले जाए। लेकिन कभी-कभी यह भी होता है कि घुड़सवार की तमाम कोशिशों के बाद भी घोड़ा अपनी मर्जी से ही चलता है।

iii. परम अहम् (Super ego)- परम अहम् व्यक्तित्व की 'नियन्त्रण व्यव स्थाओं' (control systems) में से एक है। अहम् का कार्य इदम् के प्रचण्ड आवेगों को नियन्त्रित कर प्राणी को नुकसान से बचाना है। एक छोटा बच्चा खाद्य पदार्थ को छीनकर खाने से पहले ठीक तरह से सुनिश्चित कर लेता है कि ऐसा करना वास्तव में सुरक्षित है या नहीं। लेकिन हम ऐसा केवल खतरे से बचने के लिए ही नहीं करते हैं, हम कुछ अन्य कारणों से भी ऐसा करते हैं। हम दूसरों की चीजों को इसलिए भी नहीं छीनते हैं कि ऐसा करना हमें अनैतिक लगता है। हमारे अच्छे और बुरे के बारे में निर्णय लेने के मानक हमारे द्वितीय 'नियन्त्रण व्यवस्था' से निर्मित होते हैं जिसे परम अहम् (super ego) कहा जाता है।

फ्रायड ने परम अहम् की विवेचना दो भागों में की है-

• प्रथम भाग- विवेक (conscience) - यह परम अहम् का दण्डात्मक (punitive), ऋणात्मक (Negative) तथा आलोचनात्मक (critical) भाग है। यह व्यक्ति को बताता है कि उसे क्या नहीं करना चाहिए तथा उस स्थिति में व्यक्ति को अपराध-बोध से दण्डित करता है जब व्यक्ति इस भाग की मांग की अवहेलना करता है।

• द्वितीय भाग- अहम् आदर्श (Ego ideal) - इस भाग में धनात्मक अभिलाषाएं (positive aspirations) सन्निहित रहती हैं। इसमें व्यक्ति के धनात्मक आदर्श, जैसे दयालु तथा निर्भीक बनने की इच्छाएं या न्याय तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों के प्रति समर्पण समाहित रहते हैं। तारूण्य अवस्था में ऐतिहासिक महापुरूषों जैसा बनने की इच्छा, अन्याय -असमानता के प्रति विद्रोह की भावना इसी भाग से संचालित होती है।

6.8 इरिक्सन का मनोसामाजिक विकास सिद्धांत

इरिक्सन (1963) नव-मनोविश्लेषणवादी, नव- फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक माने जाते हैं। परन्तु इनका मानना था कि विकास में जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। इरिक्सन इदम् की अपेक्षा अहम् को विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इरिक्सन के अनुसार व्यक्तित्व मानसिक विकास के आठ अवस्थाओं के माध्यम से एक पूर्वनिर्धारित क्रम में विकसित होता है, शैशवावस्था से वयस्कता तक। प्रत्येक अवस्था के दौरान,व्यक्ति एक मनोसामाजिक संकट का अनुभव करता है जो व्यक्तित्व विकास के लिए सकारात्मक या नकारात्मक परिणाम हो सकता है। इरिक्सन ने विकास को आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है जो की निम्नवत हैं-

1. आस्था बनाम अनास्था (Trust Vs Mistrust)- यह अवस्था जन्म से डेढ़ वर्ष की आयु तक रहती है, इस अवस्था में बालक परिवार में रहता है, उसका सामाजिक परिवेश सीमित रहता है। प्यार

मिलने के कारण उसकी माता-पिता के प्रति आस्था का विकास होता है। यदि प्यार नहीं मिला तो अनास्था का विकास होगा तथा इस अविश्वास (अनास्था) के साथ ही अगली अवस्था में प्रवेश करेगा। अपने माता- पिता या देख रेख करने वालों के साथ अंत:क्रिया के दौरान बच्चे उनके चाल चलन, गतिविधियों में कुछ स्थिरता, पूर्वानुमान और विश्वसनीयता पाते हैं। जब उन्हें लगता है कि माता-पिता सुसंगत और भरोसेमंद हैं, तो वे माता-पिता के प्रति बुनियादी विश्वास की भावना विकसित करते हैं और सीखते हैं कि माता-पिता भरोसेमंद हैं और विश्वास करने योग्य हैं। ठीक इसके विपरीत अविश्वास की भावना है, जिसमें बच्चा यह महसूस कर सकता कि माता-पिता अप्रत्याशित और अविश्वसनीय हैं, और जरूरत पड़ने पर हमारे साथ नहीं हो सकते हैं।

2. स्वायतता बनाम सन्देह (Autonomy Vs Shame & Doubt)- यह अवस्था डेढ़ से 03 वर्ष तक की अवधि तक रहती है। इस आयु में पर्यावरण के प्रति जिज्ञासा का विकास होता है। बालक में आत्म-नियंत्रण एवं इच्छा-शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मनियंत्रण एवं इच्छा शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मविश्वास बढ़ता है। दण्डित किये जाने पर शर्महीनता तथा निराशा का विकास होता है। मजाक बनाने पर उसे अपनी क्षमता पर सन्देह होने लगता है। इस अवस्था में बच्चे को एक और महत्वपूर्ण बात सामना करना पड़ता है या तो स्वायत्तता की भावना का विकास या संदेह की भावना, जिसके साथ वह दुनिया का सामना करेगा। बच्चा खुद के लिए चीजें करने के लिए अपनी क्षमताओं के बारे में बुनियादी भावनाएं बनाता है। इस संकल्प में माता-पिता भी महत्वपूर्ण हैं। यदि वे बच्चे के लिए सब कुछ करते हैं, उसके अन्वेषणों को रोकते हैं, या बहुत अधिक दंड देते हैं, तो वह अपनी क्षमताओं पर संदेह करते हुए इस चरण को छोड़ सकता है।

3. पहल बनाम ग्लानि (Initiative Vs Guilt)- यह अवस्था 4 से 5 वें वर्ष की होती है इसमें बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है। उसके परिवेश में वृद्धि होती है। इस अवस्था में कुछ करने की अभिलाषा तथा जिम्मेदारी की भावना का विकास होता है। कार्य में सफलता मिलने पर प्रंशसा मिलती है। बच्चे में पहल करने की भावना का विकास होता है। निन्दा करने पर वह स्वयं को दोषी ठहराता है। यदि उसे असफलता पर निन्दा मिलती है तो वह काम की तरफ से मन चुराने लगता है। अतः इस आयु में असफलता का भान नहीं होने देना चाहिये। 4 से 5 साल की उम्र में पहल की भावना (या अपराध बोध, अगर पहल का समर्थन नहीं किया जाता है) के निर्माण का काम होता है। बालक यहाँ उस स्तर पर पहुंच गया हैजहां अब वह अपने लिए कई गतिविधियों पर निर्णय ले सकता है। दूसरे लोग बालक के सवालों, उसकी गतिविधियों पर कैसी प्रतिक्रिया करते हैं, वही बालक के भीतर पहल व ग्लानि की भावना का विकास करती है।

4. परिश्रम बनाम हीनता (Industry Vs Inferiority)- यह अवस्था 6 से 11 वर्ष तक मानी जाती है।

6 से 11 वर्ष की आयु के दौरान, प्राथमिक विद्यालयी वर्ष, बच्चे में निपुण तर्क और नियमों के अनुसार खेल खेलने की क्षमता विकसित होती है। परिश्रम का तात्पर्य याह इस बात से है कि बच्चा इस बात में रुचि दर्शाता है कि चीजें कैसे काम करती हैं और हीनता इंगित करती है कि उनके कौशल और क्षमता अपर्याप्त या निराशाजनक हैं। जिन बच्चों को चीजों को बनाने, परियोजनाओं को पूरा करने, मित्रता स्थापित करने और स्वयं के लिए नई रुचियों की खोज करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, वे अपनी उत्पादकता का आनंद ले रहे होते हैं। लेकिन अगर उन्हें कहीं भी सफलता नहीं मिलती है, तो स्कूल के कामों में रूचि, खेल, परियोजनाओं या यहां तक कि मित्रतामें उनकोनुकसान हो सकता है या असफलतामिल सकता है।पूर्व अवस्था में यदि बालक को असफलता मिली होती है तो वह हीनता के भाव से ग्रस्त हो जाता है तथा कार्य से बचने की प्रक्रिया अपनाता है। उसे प्रोत्साहन देकर कार्य में आगे बढ़ने की प्रेरणा देनी चाहिये ताकि वह एक सामाजिक प्राणी बन सके।

5. अस्तित्व बनाम भूमिका द्वन्द्व (Identity Vs Role Confusion) - यह अवस्था 12 से 18 वर्ष तक की आयु तक मानी जाती है। इसमें व्यक्ति अपनी पहचान बनाना चाहता है। 'पहचान' एक सामान्य तस्वीर है जो स्वयं की है और यह एक ऐसी अवस्था है जिसके लिए व्यक्ति प्रयास करता है। पहचान का गठन करना एक आजीवन प्रक्रिया है और पहचान की समस्या किशोरावस्था में अपने संकट (crisis) तक पहुँचती है। इस समय इतने सारे आंतरिक परिवर्तन हो रहे होते हैं, और भविष्य की प्रतिबद्धता के संदर्भ में बहुत कुछ दांव पर होता है। किशोर अपना लक्ष्य निर्धारित करता है। यदि वह असफल होता है तो वह द्वन्द्व की स्थिति में आ जाता है उससे उनमें कर्त्तव्य परायणता तथा निष्ठा का भाव अवरोधित हो जाता है।

6. आत्मीयता बनाम पार्थक्य (Intimacy Vs Isolation) - यह अवस्था 19 से 25 वर्ष की आयु तक रहती है, युवा वयस्कता प्रेमालाप और प्रारंभिक पारिवारिक जीवन के वर्षों की अवस्था है। इस स्तर पर किए जाने वाले समायोजन को शास्त्रीय मनोविश्लेषकों द्वारा काफी हद तक अनदेखा किया गया है- इसमें अंतरंगता और अलगाव के आयाम शामिल हैं। इरिकसन जिस अंतरंगता की बात करते हैं वह यौन अंतरंगता से अधिक भिन्न है। यह अंतरंगता अपनी पहचान को खोने से भय मुक्त होकर, दूसरे के साथ खुद को साझा करने की क्षमता है। इस आयाम को स्थापित करने में एक व्यक्ति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है की उसने अपने पिछले पांच चरणों का किस प्रकार समाधान किया है। इस अवस्था में मित्रता, प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग की भावना बढ़ती है। परन्तु निराशा, असफलता, हीनता एवं द्वन्द्व होने पर एकाकीपन की प्रवृत्ति विकसित होती है। समायोजन तथा उपलब्धि निम्नस्तर की हो जाती है।

7. उत्पादकता बनाम निष्क्रियता (Productivity Vs Inaction)- इस अवस्था का विस्तार 26 से 65 वर्ष तक होता है। यह अवस्था मानव जीवन की मध्यावस्था होती है। यह अवस्था स्वयं के स्वास्थ्य, जरूरतों, आराम का ध्यान रखने यादूसरों के लिए चिंता के बीच चुनाव की अवस्था है।

इसमें व्यक्ति के (सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत) दायित्व बढ़ते हैं, जिससे क्षमता विभाजित हो जाती है। समाज तथा परिवार विभिन्न प्रकार की अपेक्षाएं करते हैं। यदि वह अपने दायित्व का ठीक प्रकार पालन नहीं करता तो उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है। यह वह अवस्था है जब परिवार की इकाई फैलने लगती है। माता-पिता अपने विषय में सोचने के लिए खुद को अधिक स्वतंत्रत पाते हैं। इस नई स्वतंत्रता का उपयोग अपने हितों के लिए या बाहरी कामों में भागीदारी करने के लिए इस्तेमाल करना इस अवस्था विशेष का विकासात्मक कार्य (developmental task) है।

8. सत्यनिष्ठा बनाम निराशा (Integrity Vs Despair)- इस अवस्था का प्रारम्भ 65 वर्ष की आयु से जीवन के अन्त तक रहता है। मनोसामाजिक विकास की आठवीं और अंतिम अवस्था में व्यक्ति तेजी से वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहा होता है। उसे अपनी उपलब्धियों तथा अपना अतीत बार-बार याद आता है और वह अपना स्वमूल्यांकन करने लगता है। यदि वह पाता है कि वह विकास की पिछली अवस्थाओं में पर्याप्त मात्रा में विश्वास (Trust), स्वायतता (Autonomy), अस्तित्व (Identity), आत्मीयता (Intimacy) आदि के भाव विकसित कर चुका है और समाज के प्रति अपना सम्पूर्ण योगदान दे चुका है तो वह जीवन की इस अंतिम अवस्था को पूरे उत्साह के साथ जीता है। यदि वह असफल रहा है तो उसका आगामी जीवन निराशा तथा चिन्ता के द्वारा कष्टमय बन जाता है।

इरिक्सन के आठ विकास चरणों में से प्रत्येक के दौरान, दो परस्पर विरोधी विचारों को सफलतापूर्वक हल किया जाना चाहिए ताकि किसी व्यक्ति को समाज का एक विश्वसनीय सदस्य बनाया जा सके। इन कार्यों को करने में विफलता अपर्याप्तता की भावनाओं को जन्म देती है।

6.9 ॲल्बर्ट बॅण्डुरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत

ॲल्बर्ट बॅण्डुरा एक प्रभावशाली सामाजिक संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक हैं, वह सामाजिक अधिगम सिद्धांत और उनके प्रसिद्ध बोबो डॉल प्रयोगों की अवधारणा के लिए प्रसिद्ध हैं। बॅण्डुरा, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में एक प्रोफेसर एमेरिटस हैं और वर्तमान में महानतम जीवित मनोवैज्ञानिकों में से एक हैं। 2002 में एक सर्वेक्षण के अनुसार बी.एफस्किनर, सिगमंड फ्रायड, और ज्यां पियाजे के बाद उन्हें बीसवीं सदी का चौथा सबसे प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक घोषित किया गया। 1963 में बॅण्डुरा और वाल्टर्स ने अपनी पुस्तक "Social learning and personality development" व्यक्तित्व विकास में वातावरण की भूमिका को स्पष्ट किया। उन्होंने इस तथ्य को उजागर किया की बालक अधिकांश व्यवहारों को सामाजिक परिस्थितियों में सीखता है। इस सिद्धांत का केन्द्रीय तथ्य यह है कि बालक का विकास मुख्य रूप से उसके सामाजिक अधिगम का परिणाम होता है। सामाजिक अधिगम में व्यक्ति के सामाजिक परिवेश की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। सामाजिक परिस्थितयों में

बालक कैसे सीखता है, इस दिशा में बॅण्डुरा दवारा किए गए अध्ययन और उनके द्वारा दिया गया सिद्धांत विकासात्मक मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

सामाजिक अधिगम सिद्धांत का मानना है कि लोग एक दूसरे को देखकर, उनकी नक़ल कर के और मॉडलिंग के माध्यम सीखते हैं। बालक अपने माता-पिता, भाई-बहन, पड़ोसियों, साथियों और शिक्षकों के व्यवहारों का अवलोकन करता है तथा भविष्य में उसे दोहराने की कोशिश करता है। सामाजिक अधिगम सिद्धांत को अक्सर व्यवहारवादी और संज्ञानात्मक सीखने के सिद्धांतों के बीच एक पुल कहा जाता है क्योंकि यह सिद्धांत ध्यान, स्मृति और प्रेरणा को सम्मिलित करता है। सामाजिक अधिगम एक अत्यंत सरल प्रक्रिया है। बालक को किसी व्यस्क व्यक्ति या आपने साथियो को ध्यानपूर्वक देखना होता है, उनका अवलोकन करना होता है। सामाजिक अनुकरण के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। घर के अंदर बच्चे अपने माता-पिता के व्यवहारों का अनुकरण करते हैं। लड़के या लड़की की भांति आचरण करना सीखते हैं। टेलीविजन के कार्यक्रमों से अनेक कौशल सीखते हैं, बच्चे नायक-नायिकाओं की तरह कपड़े पहनना, हाव-भाव बनाना सीखते हैं यहाँ तक की बच्चे आक्रामक व्यवहार, गुस्सा करना, लड़ाई झगड़ा करना आदि भी दूसरों से सीखते हैं।

6.10 ॲल्बर्ट बॅण्डुरा के सिद्धांत के मूल संप्रत्यय

बॅण्डुरा ने अपने सामाजिक अधिगम सिद्धांत में कई संप्रत्ययों का प्रयोग किया है। यह संप्रत्यय उनके सिद्धांत को समझाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। उनके सिद्धांत के कुछ प्रमुख संप्रत्यय निम्नवत हैं-

i. अवलोकन (Observation)

ii. अनुकरण (Imitation)

iii. मॉडलिंग (Modeling)

लोग दूसरों के व्यवहार और उन व्यवहारों के परिणामों को देखकर सीखते हैं। बॅण्डुरा के अनुसार अधिकांश मानव व्यवहार को मॉडलिंग के माध्यम से अवलोकन करके सीखा जाता है: दूसरों को देखने से पता चलता है कि किस व्यवहार कैसे किए जाते हैं और बाद में यही जानकारी कई अवसरों में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है। सामाजिक अधिगम सिद्धांत संज्ञानात्मक, व्यवहारिक और वातावरणीय प्रभावों के बीच निरंतर पारस्परिक संपर्क के संदर्भ में मानव व्यवहार की व्याख्या करता है।

सामाजिक परिस्थतियों में जिस भी व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन और अनुकरण किया जाता है उसे बॅण्डुरा ने मॉडल की संज्ञा दी है। किसी व्यक्ति या मॉडल के व्यवहार को ध्यानपूर्वक देखना और उसको मस्तिष्क ले संचित करना अवलोकन (Observation) की प्रक्रिया है। अवलोकन किए गए व्यवहार को मूल रूप से दोहराना अनुकरण (Imitation) है। किसी व्यक्ति या मॉडल का अनुकरण करके उसी के अनुरूप बनना या उसकी विशेषताओं को अपने भीतर विकसित करना मॉडलिंग है। मॉडलिंग मात्र अनुकरण की नहीं उसके आगे की प्रक्रिया है। बॅण्डुरा के अनुसार सामाजिक अधिगम या मॉडलिंग के अनके लाभ होते हैं।

6.11 प्रभावी मॉडलिंग के लिए आवश्यक प्रक्रियाएं

i. ध्यान (Attention)- किसी व्यक्ति या मॉडल का अनुकरण करके सफलतापूर्वक सीखने हेतु व्यक्ति विशेष पर ध्यान देना आवश्यक है। ध्यान देने से उसके व्यवहार की विशेषताओं को, बारीकियों को पहचाना जा सकता है। विभिन्न कारक ध्यान देने की मात्रा में वृद्धि या कमी करते हैं। किसी व्यक्ति या मॉडल पर ध्यान देना अधिक सरल हो जाता है यदि उस मॉडल में विशिष्टता, भावात्मकता, व्यापकता, जटिलता, कुछ नयापन मौजूद हो और वह अपने व्यवहार को प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित कर रहा हो। अनुकरण करने वाली की विशेषताएं जैसे संवेदी क्षमता, उत्तेजना स्तर, आदि ध्यान को प्रभावित करते हैं।

ii. प्रतिधारण/ संचय करना या याद रखना (Retention)- मॉडल के व्यवहार के अनुकरण तथा मॉडलिंग के लिए ध्यान के साथ साथ संचय या याद रखने की क्रिया भी आवश्यक है। व्यवहार को अच्छी तरह याद करना इसलिए आवश्यक होता है जिससे की उस व्यवहार का अनुकरण किया जा सके और उसकी पुनरावृत्ति की जा सके। अवलोकित व्यवहार के जो अंश हमारे ध्याम से हट जाते हैं या जिन्हें हम याद नहीं रख पाते है वो हमारी पुनरावृत्ति में बाधक बनते हैं। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि व्यवहार को अवलोकनकर्ता द्वारा जल्दी ही प्रदर्शित किया जाए। अधिकांश सामाजिक अधिगम तात्कालिक नहीं होता है , इसलिए यह प्रक्रिया उन मामलों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहाँ सीखे गए व्यवहार का प्रदर्शन तत्काल संभव नहीं है।

iii. क्रियात्मक पुनरावृत्ति- अवलोकित व्यवहार को सीखने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी पुनरावृत्ति की जाए। क्रियात्मक पुनरावृत्ति मॉडल द्वारा किए गए व्यवहार को करने की, दोहराने की क्षमता है । हम प्रतिदिन कई प्रकार के व्यवहार देखते हैं जिनकी हम नकल करना चाहते हैं लेकिन यह हमेशा संभव नहीं है। कई बार हम सीखे हुए, देखे हुए, याद किए हुए व्यवहार को प्रदर्शित करना चाहते हैं लेकिन हम हम अपनी शारीरिक क्षमताओं के कारण बाध्य होते हैं और सीमित भी। इस वजह से भी हम वह व्यवहार चाहते हुए भी नहीं कर सकते हैं।

इस प्रकार की बाध्यता या सीमाएं हमारे निर्णयों को प्रभावित करती हैं कि हमें क्या करने की कोशिश करनी है और किस चीज का अनुकरण करना है नकल करना है। उदाहरण के लिए एक 80 वर्षीय महिला की कल्पना करें, जो चलने के लिए तक संघर्ष कर रही है क्या उस महिला के लिए मार्शल आर्ट्स का प्रदर्शन कर पाना संभव है। वह मार्शल आर्ट्स के कौशल की सराहना कर सकती है, लेकिन वह इसका अनुकरण करने का प्रयास नहीं करेगी क्योंकि वह शारीरिक रूप से ऐसा नहीं कर सकती है।

iv. अभिप्रेरणा (Motivation)- व्यवहार करने की इच्छाशक्तियां अनुकरण करने की इच्छा ही अभिप्रेरणा है। किसी व्यवहार का पालन करने पर मिलने वाले पुरस्कार या दण्ड को अवालोकनकर्ता द्वारा ध्यान में रखकर की किसी व्यवहार का अनुकरण किया जाएगा। यदि व्यवहार की पुनरावृत्ति करने से मिलने वाला प्रोत्साहन, पुरूस्कार या लाभ की गयी मेहनत से कम होने की दशा में अवालोकनकर्ता द्वारा ऐसे व्यवहार के नक़ल करने की संभावना को कम कर देगा और इसके विपरीत यदि अनुकरण करने के लाभ अधिक हो तो अवालोकनकर्ता द्वारा व्यवहार की नकल करने की अधिक संभावना होगी।

सामाजिक अधिगम सिद्धांत ने सीखने के व्यवहारात्मक एवं संज्ञानात्मक सिद्धांतों को एकीकृत किया जिससे कि सीखने के अनुभवों की एक विस्तृत श्रृंखला का एक व्यापक मॉडल प्रदान किया जा सके । इस सिद्धांत के प्रमुख आयाम हैं-

ii. सीखना विशुद्ध रूप से व्यवहार नहीं है बल्कि, यह एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जो एक सामाजिक संदर्भ में होती है।

ii. सीखना किसी व्यवहार को देखने से और व्यवहार के परिणामों को देखने से हो सकता है ।

iii. अवलोकन करना, उन अवलोकनों से सूचना प्राप्त करना और उस अवलोकित व्यवहार का प्रदर्शन संबंधी निर्णय लेना (मॉडलिंग) अधिगम में शामिल है।

iv. प्रबलन सीखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है लेकिन सीखने के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार नहीं है।

v. सीखने वाला जानकारी का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं है। अनुभूति, पर्यावरण और व्यवहार सभी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

6.12 सारांश

इस इकाई में हमनें जीन पियाजे के संज्ञानात्माक विकास के सिद्धान्त, सिगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत, इरिक्सन के मनोसामाजिक विकास सिद्धांत तथा ॲल्बर्ट बॅण्डुरा के

सामाजिक अधिगम सिद्धांत के बारे में अध्ययन किया। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में जीन पियाजे का अभूतपूर्व योगदान है। इसका मूल उद्देश्य बच्चों के विकास के अंतर्गत जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, तथा जटिल मानसिक क्रियाओं की सरलता से व्याख्या करना है। पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों को समझना आवश्यक है- जैसे स्कीमाटा, संगठन, अनुकूलन, साम्यधारण, संरक्षण, स्कीमा। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक सिगमन्ड फ्रायड हैं। यह सिद्धान्त मानव मन की आन्तरिक अनुभूतियों (Feelings), आवेगों (impulses) तथा स्वप्न -चित्रों (Fantasies) को समझने का प्रयास है। बॅण्डुरा दवारा किए गए अध्ययन और उनके द्वारा दिया गया सिद्धांत विकासात्मक मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बॅण्डुरा ने अपने सामाजिक अधिगम सिद्धांत में कई संप्रत्ययों का प्रयोग किया है। यह संप्रत्यय उनके सिद्धांत को समझाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

6.13 पारिभाषिक शब्दावली

- **संज्ञान:** मानसिक प्रक्रिया जिसका संबंध चिंतन, समस्या-समाधान तथा अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से है।
- **स्कीमाटा:** अनुभव या व्यवहार को संगठित करने की संज्ञानात्मक संरचना।

6.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. आत्मसातीकरण
2. स्कीमाटा
3. साम्यधारण
4. समाविष्टिकरण

6.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, ए0 के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।

2. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।

3. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.

4. लाल,जे0 एन0, श्रीवास्तव, अनीता (2014-15): नवीन विकासात्मक मनोविज्ञान,आगरा,अग्रवाल पब्लिसर्श।

6.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञानात्मक विकास से आप क्या समझते हैं? पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
2. सिगमंड फ्रायड के सिद्धांत के अनुसार मन के अभिकरणों का वर्णन कीजिए।
3. इरिक्सन के विकास के मनोसामाजिक सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
4. ॲल्बर्ट बॅण्डुरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?

खंड III

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और पालन-पोषण

इकाई 7: विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और विशेष शिक्षा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों से अभिप्राय
7.4 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान एवं लक्षण
7.5 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रकार
7.6 भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और विशेष शिक्षा की स्थिति
7.7 भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए क़ानून एवं प्रावधान
7.8 सारांश
7.9 पारिभाषिक शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

विशेष आवश्यकता वाले या विकलांग बच्चों को शिक्षित करना और उन्हें विद्यालय के अन्य बच्चों के साथ शिक्षा देना लगातार एक बड़ी चुनौती रही है। जहाँ विकसित देश अपनी शिक्षा प्रणाली में समावेशी शिक्षा को कानूनी और औपचारिक रूप से सुनिश्चित करने में सक्षम हैं वहीं भारत अपने बच्चों के लिए शिक्षा के मौलिक अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए अभी भी प्रयासरत है। इस बात पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है कि ऐसी प्रणाली कैसे विकसित की जाए जहाँ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य स्कूलों में शिक्षा दी जाए। भारत में निजी अपनी अपनी तरह से मानसिक रूप से अविकसित अथवा अल्पविकसित बच्चों को विद्यालय परिसर में ही शिक्षा देने की व्यवस्था करते हैं। कुछ लोग ऐसे बच्चों के लिए अलग से शिक्षक नियुक्त करते हैं। जब हम विभिन्न विकलांगताओं के लिए प्रारंभिक पहचान प्रक्रियाओं और मूल्यांकन विधियों पर विचार करते हैं तो कई समस्याएँ होती हैं। भारत एक बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी देश है जहाँ मानकीकृत उपकरणों और मूल्यांकन प्रक्रियाओं के उपयोग की सीमाएँ हैं। विकलांग बच्चों के शिक्षकों और माता.पिता में जागरूकता की कमी भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा की मौजूदा स्थितियों को और खराब करती है। इस इकाई में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे जैसे: विकलांग बच्चे,

असाधारण और प्रतिभाशाली बच्चे और साथ ही विशेष शिक्षा में भारत सरकार की भूमिका पर प्रकाश डाला जाएगा।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के पश्चात आप निम्न को जानने में सक्षम होंगे ;

- 'विशिष्ट अधिगम अक्षमता' की अवधारणा के बारे में जागरूकता प्राप्त करेंगे और उसके प्रकारों की पहचान करेंगे।
- 'बुद्धिमत्ता' की संरचना को परिभाषित करेंगे।
- बौद्धिक अक्षमता के स्तरों की पहचान करेंगे।
- प्रतिभाशाली और असाधारण बच्चों के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे ।
- प्रतिभाशाली बच्चों की पहचान और मार्गदर्शन के लिए भारत सरकार द्वारा किए गए प्रयासों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.3 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों से अभिप्राय

सामान्य रूप से जो बच्चे औसत शारीरिक एवं मानसिक स्तर IQ 90-110 वाले होते हैं, उन्हें हम सामान्य बच्चे के रूप में जानते हैं। विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे सामान्य बच्चों से किस प्रकार विशिष्ट होते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि सामान्य बच्चे सामान्य शारीरिक एवं मानसिक श्रम वाले कार्यों को करने में किसी बाधा का अनुभव नहीं करते हैं। कक्षा में अधिकांश बच्चों की भाँति वे शैक्षिक उपलब्धि में भी औसत होते हैं। इनके सीखने की गति भी औसत होती है। इसके विपरीत विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे इस प्रकार के कार्यों को करने में अपने को असहज एवं असमर्थ पाते हैं।

हीबर्ड के अनुसार विशिष्ट बच्चों की श्रेणी में वे बच्चे आते हैं जिन्हें सीखने में कठिनाई का अनुभव होता है या जिनमें मानसिक या शैक्षिक निष्पादन या सृजन अत्यन्त उच्चकोटि का होता है या जिनको व्यावहारिक, सांवेगिक एवं सामाजिक समस्याएँ घेर लेती हैं या वे विभिन्न शारीरिक अपंगताओं या निर्बलताओं से पीड़ित रहते हैं जिनके कारण ही उनके लिए अलग से विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती है।

क्रो एण्ड क्रो के अनुसार, विशिष्ट प्रकार या विशिष्ट पद किसी गुण या उन गुणों से युक्त व्यक्ति पर लागू होता है जिसके कारण वह व्यक्ति साथियों का ध्यान अपनी ओर विशिष्ट रूप से आकर्षित करता है तथा इससे उसके व्यवहार की अनुक्रिया भी प्रभावित होती है।

क्रिक के अनुसार विशिष्ट बच्चे मानसिक शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बच्चों से भिन्न होते हैं। उनकी भिन्नता कुछ ऐसी सीमा तक होती है कि उन्हें स्कूल के सामान्य कार्यों में विशिष्ट शिक्षा सेवाओं की आवश्यकता होती है। ऐसे बच्चों के लिए कुछ अतिरिक्त अनुदेशन भी चाहिए होता है ऐसी दशा में उनका सामान्य बच्चों की अपेक्षा अधिक विकास हो सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओ के आधार पर हम कह सकते हैं कि, ''विशिष्ट बच्चे वह बच्चे हैं जो कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांवेगिक एवं व्यावहारिक विशेषताओं के कारण किसी सामान्य या औसत बच्चे से उस सीमा तक स्पष्ट रूप से विचलित या अलग होता है जहाँ कि उसे अपनी योग्यताओं, क्षमताओं एवं शक्तियों को समुचित रूप से विकसित करने के लिए परम्परागत शिक्षण-विधियों में परिमार्जन या विशिष्ट प्रकार के कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है, उन्हें विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे कहा जाता है। इस श्रेणी में शारीरिक रूप से अक्षम, प्रतिभाशाली, सृजनात्मक, मन्दबुद्धि, शैक्षिक रूप से श्रेष्ठ एवं पिछड़े, बाल-अपराधी, असमायोजित, समस्याग्रस्त, सांवेगिक, अस्थिरतायुक्त आदि प्रकार के बच्चे सम्मिलित हैं। हेवेट तथा फोरनेस के अनुसार, 'विशिष्ट' ऐसा व्यक्ति है जिसकी शारीरिक, मानसिक, बुद्धि, इन्द्रियाँ, मांसपेशियों की क्षमताएँ अनोखी हो अर्थात सामान्यतया ऐसे गुण दुर्लभ हों, ऐसी अनोखी दुर्लभ क्षमताएँ उसकी प्रकृति तथा कार्यों के स्तर में भी हो सकती है।

इस प्रकार से विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से सम्बन्धित सभी प्रश्नों के समाधान के लिए मनौवैज्ञानिक, चिकित्साशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद, गृहविज्ञान वेत्ता आदि अपने-अपने दृष्टिकोणो के अनुसार अध्ययनरत हैं। वैयक्तिक भिन्नताओं के ज्ञान के साथ-साथ इन प्रश्नों का महत्व और अधिक हो गया है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि सभी व्यक्ति प्रायः शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक एवं सामाजिक रूप से किसी न किसी रूप में परस्पर भिन्न होते हैं, किन्तु कभी-कभी भिन्नताएँ इस सीमा तक पायी जाती हैं कि बच्चों को विशिष्ट वर्गों में रखकर शिक्षा देना आवश्यक हो जाता है। भारत जैसे प्रजातान्त्रिक प्रणाली वाले राष्ट्र में सरकार, समाज तथा शिक्षा संस्थाओं का यह कर्त्यव्य है कि वे इन विशिष्ट बच्चों की पहचान कर उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा एवं निर्देशन प्रदान करें।

7.4 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान एवं लक्षण

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे सामान्य बच्चों से विशिष्ट लक्षणों वाले होते हैं। सामान्य बच्चों में पाये जाने वाली निम्नलिखित विशिष्ट प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं- यह अन्तर्मुखी, निराशावादी, सांवेगिक, स्थिर, शर्मीले, निष्क्रिय, आत्मकेन्द्रित, चिन्ताग्रस्त, निर्भर प्रवृत्ति, कभी-कभी उग्र, एकाकी भावना वाले होते हैं। इनकी पहचान हम निम्नलिखित तरीके से कर सकते हैं -

1. **निरीक्षण द्वारा-**अध्यापक अपने कक्षा-कक्ष में शिक्षण के दौरान उपरोक्त लक्षणों के आधार पर विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को चिन्हित कर सकता है और उन्हें आवश्यकतानुसार शिक्षा प्रक्रिया से लाभान्वित कर सकता है।
2. **चिकित्सकीय परीक्षण द्वारा-** कभी-कभी ऐसा होता है कि विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान न होने के कारण विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के शरीर एवं मस्तिष्क का चिकित्सकीय परीक्षण कर उनकी पहचान की जा सकती हैं।
3. **मानसिक परीक्षण द्वारा-** छात्रों का मानसिक परीक्षण कर उनकी विशिष्टता का पता लगाया जा सकता है। यह थिमेंटिक अपरसेप्सन टेस्ट (TAT), हरमन रोशा का स्याही धब्बा परीक्षण आदि जैसे परीक्षणों का प्रयोग कर पता लगाया जा सकता है।
4. **शैक्षिक परिणामों के द्वारा**-विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे के कक्षा के परीक्षा में प्राप्त परिणामों का अवलोकन एवं विश्लेषण के द्वारा इनकी विशिष्टता का पता लगाया जा सकता है।
5. **व्यवहार के अवलोकन के द्वारा-** विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों द्वारा किये गये व्यवहारों के मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं विश्लेषण से उनकी विशिष्टताओं का पता लगाया जा सकता है।
6. **समाजमिति एवं साक्षात्कार के द्वारा-** विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान के लिए समाजमिति एवं उनका प्रत्यक्ष विधि से साक्षात्कार कर उनकी विशिष्टताओं का पता लगाया जा सकता है।

7.5 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रकार

सामान्य बच्चों से भिन्नता रखने वाले विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे आपस में भी अनेक असमानताएँ रखते हैं। कुछ बच्चे सीखने की निर्योग्यताओं के कारण, कुछ बौद्धिक क्षमताओं के कारण तथा कुछ असामान्य शैक्षिक उपलब्धि के कारण विशिष्ट आवश्यकता वाले होते हैं। सामान्यतः हमें विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे को निम्नलिखित प्रकार से विभक्त कर सकते हैं;

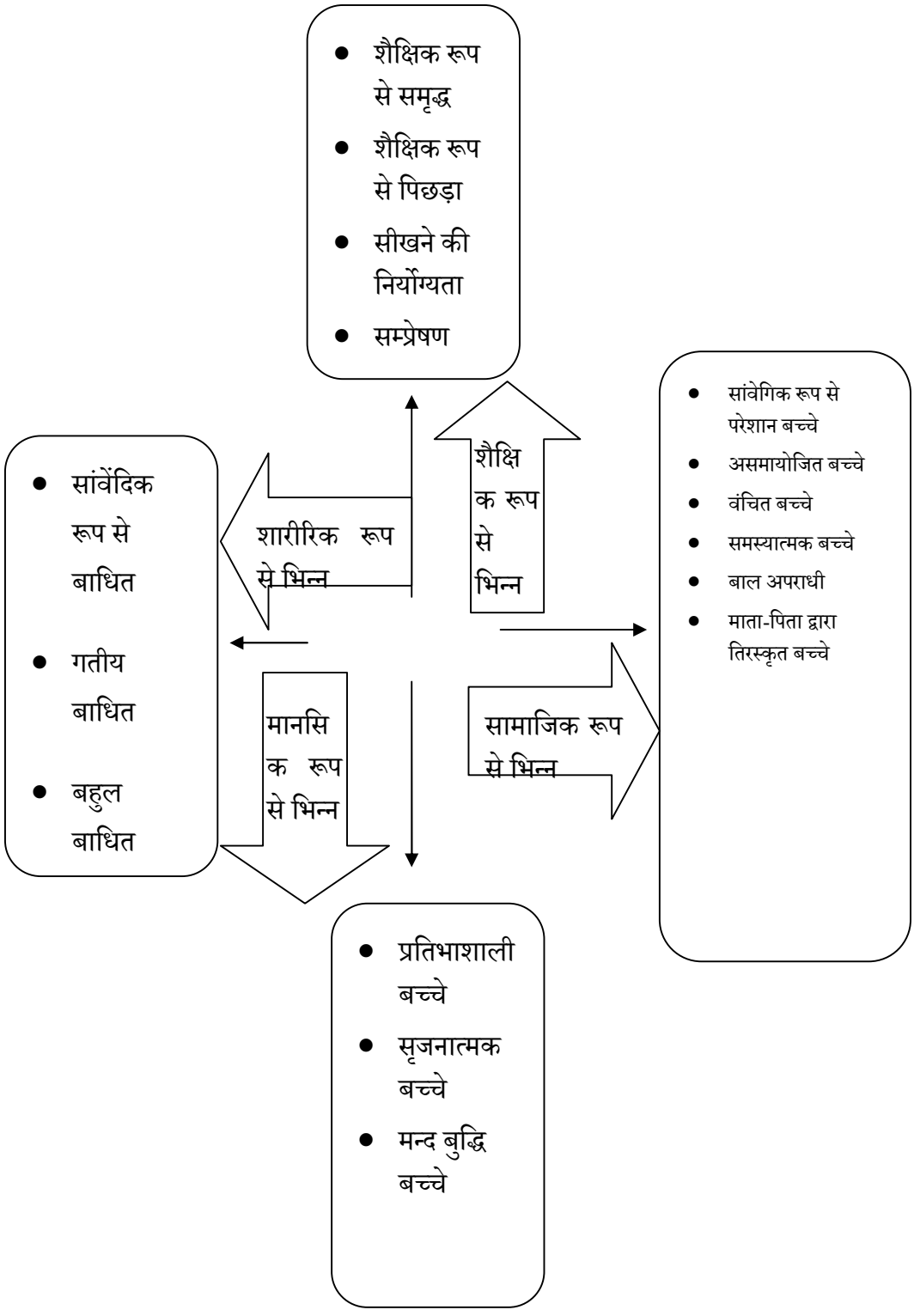
शैक्षिक रूप से समृद्ध
शैक्षिक रूप से पिछड़ा
सीखने की निर्योग्यता
सम्प्रेषण
सांवेदिक रूप से बाधित
गतीय बाधित
बहुल बाधित
शारीरिक रूप से भिन्न
शैक्षिक रूप से भिन्न
मानसिक रूप से भिन्न
सामाजिक रूप से भिन्न
सांवेगिक रूप से परेशान बच्चे
असमायोजित बच्चे
वंचित बच्चे
समस्यात्मक बच्चे
बाल अपराधी
माता-पिता द्वारा तिरस्कृत बच्चे
प्रतिभाशाली बच्चे
सृजनात्मक बच्चे
मन्द बुद्धि बच्चे

विशिष्ट बालकों के कुछ प्रमुख प्रकारों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है;

1. **प्रतिभाशाली बालक:** जिन बालकों की बुद्धिलब्धि 120 से अधिक पाई जाती है वे प्रतिभाशाली बालक के अन्तर्गत आते हैं। स्कीमर तथा हैरीमन का यह मानना है कि प्रतिभाशाली बालक का प्रयोग उन एक प्रतिशत बालकों के लिए किया जाता है जो सबसे अधिक बुद्धिमान है। क्रो एंड क्रो का यह मानना है कि प्रतिभाशाली बालक दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे बालक जिनकी बुद्धिलब्धि 130 से अधिक होती है और दूसरा वे बालक जो कला, संगीत, गणित अभिरूप आदि में प्रतिभाशाली सृजनशील होते हैं । टर्मन तथा ओडन की यह मान्यता है कि प्रतिभाशाली बालक शारीरिक गठन, सामाजिक समायोजन, व्यक्तित्व के लक्षणों, विद्यालयी उपलब्धि तथा खेल और रुचियों की बहुलता में सामान्य बालकों से श्रेष्ठ होते हैं ।

प्रतिभाशाली बालकों की प्रकृति निम्नानुसार है;

i. वे नवीन ज्ञान शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं।
ii. उनके किए पुनरावृत्ति की कम आवश्यकता पड़ती है।
iii. उनमें तार्किक क्षमनए मनन क्षमताए स्मरण शक्तिए सामान्यीकरण की क्षमता अधिक होती है।
iv. उनमें शब्द भंडार में व्यापकता होती है
v. उनकी रुचियों में पर्याप्त वैभिन्य दिखाई देता है ।
vi. उन्हें सामान्य बालकों में समायोजित करने में कठिनाई होती है।
vii. इनका सामान्य ज्ञान अधिक होता है ।

2. **मानसिक मंदबुद्धि बालक-** सामान्यतः मानसिक मंदता के संबंध में यह धारणा है कि मानसिक रूप से मंदबुद्धि बालकों की मानसिक योग्यताएं कम होती हैं। ऐसे बालकों की बुद्धिलब्धि भी साधारण बालकों की बुद्धिलब्धि से कम होती है। स्कीनर के अनुसार मानसिक मंदता वाले बालकों के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे- अल्प बुद्धि, विकल बुद्धि, मूढ बालक, बुद्धि शिथिलता वाले बालक आदि। सन 1913 तक मंदबुद्धि और पिछडे हुए बालकों में कोई भी अंतर नहीं किया जाता था। इसके बाद जैसे - जैसे मनोविज्ञान का विकास हुआ है वैसे - वैसे इन दोनों में विभिन्नता की जाने लगी।

क्रो एवं क्रो मानते हैं कि जिन बालकों की बुद्धिलब्धि 70 से कम होती है, वे मंदबुद्धि बालक हैं। स्कीनर के अनुसार प्रत्येक कक्षा के छात्रों को एक वर्ष में शिक्षा का एक निश्चित पाठ्यक्रम पूरा करना पड़ता है पर जो बालक इस पाठ्यक्रम को पूरा नहीं कर पाते मंदबुद्धि बालक कहलाते हैं।

मंदबुद्धि बालक कक्षा में पृथक रहना चाहते हैं और इनकी प्रकृति असामाजिक व असमायोजित रहती है। इनमें हताशा व निराशा भी रहती है। इनकी मानसिक आयु कम होती है अर्थात् ये अपनी कक्षा का कार्य ठीक प्रकार से करने में असमर्थ कहते हैं। इनकी रुचियाँ भी भिन्न होती हैं। इनमें ज्ञानेन्द्रिय संबंधी दोष पाए जाते हैं।

मंदबुद्धि बालकों की प्रमुख विशेषताएं ये हैं;

i. आत्म विश्वास की कमी
ii. असंतुलित व्यवहार
iii. कम बुद्धिलब्धि
iv. सूक्ष्म चिंतन का अभाव
v. संवेगात्मक अस्थिरता
vi. व्यवहार कुशलता की कमी
vii. उत्तरदायित्व वहन करने में असमर्थ
viii. सीखने की क्षमता में कमी
ix. ज्ञानेन्द्रिय दोष
x. अपनी मान्यताओं पर अटल विश्वासए
xi. अधिगम स्थानांतर में कमी
xii. निर्णय लेने में परिस्थितियों की अवहेलना
xiii. पढ़ाई में असफलता
xiv. दूसरे बालकों को मित्र बनाने की इच्छा किन्तु मूल्यों के द्वारा मित्र बनाए जाने की कम इच्छा।

3. **अधिगम बाधित (Learning disabled):** सीखने संबंधी कमी या असमर्थता वाले बालक विशेष आवश्यकता वाले इस वर्ग में आते हैं। ये बालक मानसिक रूप से मंद नहीं होते परन्तु सामान्य बालकों की तुलना में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए होते हैं। कक्षा में सामान्य बालकों को जो कुछ पढ़ाया जाता है उसे ग्रहण करने में ये बालक असफल रहते हैं। इस कारण से वे दुःखी व तनावग्रस्त रहते हैं। उनके मन में ऐसी धारणा बन जाती है कि जीवन में सफल नहीं हो सकते। कुछ बच्चे शाला से भागकर आवारागर्दी करने लगते हैं। प्राथमिक स्तर पर लगभग 20 प्रतिशत बालक अधिगम दृष्टि से अयोग्य होते हैं। प्रायः अधिगम बाधित बालक पढ़ने, समझने, गणित करने, तर्क-वितर्क करने में बहुत कम उपलब्धि का प्रदर्शन करते हैं।

क्लीमेंट ने अधिगम असमर्थता से संबंधित 9 विशेषताओं की सूची बनाई है जिनमें से ये सभी अधिगम असमर्थ बालकों में पाई जाती हैं;

i.अतिक्रियाशीलता
ii.प्रात्यक्षिक गतिक न्यूनता
iii.सांवेगिक अस्थिरता
iv.सामान्य समन्वय का अभाव
v.अवधान (ध्यान समस्या)
vi.प्रोत्साहनीय
vii.स्मृति व चिंतन अभाव
viii.विशेष शैक्षिक समस्याएं
ix.तांत्रिकीय तरंगों में असमरूपता

4. **गति संबंधी बाधा से ग्रसित बालक-** चलने-फिरने,उठने, बैठने में न्यूनता या कमी रखने वाले बालक इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले विशेष आवश्यकता वाले बालकों में आते हैं। इसमें पूर्णरूप से असमर्थ तथा कम मात्रा में असमर्थता से युक्त दो प्रकार के बालक आते हैं, जन्म से दुर्घटना से या बीमारी (लकवा या पोलियो) से ग्रसित होकर ये बालक चलने फिरने में पूर्ण असमर्थ या बिना सहारे के चलने-फिरने में असमर्थ रहते हैं। वैशाखी, ट्रायसिकल अथवा व्हील चेयर के उपयोग से अनेक अपंग बालक एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने जाने में समर्थ होते हैं।

क्रो व क्रो ने विकलांग, दिव्यांग या निःशक्त बालक की परिभाषा इस प्रकार दी है; वह बालक जिसका शारीरिक दोष उसे साधारण क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है या सीमित रखता है विकलांग बालक कहा जाएगा।

गत्यात्मक बाधा ग्रसित बालकों की कुछ प्रमुख विशेषताएं ये हैं;

i. पोलियो बीमारी के कारण, प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात आदि से ग्रसित ऐसे बालक या तो सामान्य बुद्धि के होते हैं या असामान्य क्षमता वाले।
ii. शारीरिक रूप से ये सामान्य बालकों से अक्षम या निर्बल होते हैं।
iii. विकलांगता वाले बालक शिक्षा प्राप्त करने में बाधा का सामना करते हैं।
iv. चलने- फिरने में कमी होने के कारण खेलकूद, भाग-दौड़ आदि में से अच्छा निष्पादन नहीं दे पाते।
v. सामाजिक कार्यक्रमों में अधिक सक्रिय नहीं होते।
vi. विकलांगता के कारण वे कभी- कभी व्यंग्य-उपहास के पात्र बन जाते हैं।
vii. उनमें अपनी विकलांगता को लेकर हीन भावना उत्पन्न हो जाती है।
viii. वे प्रभावी व्यक्तित्व के स्वामी नहीं बन पाते।

ix. विकलांग बालक अपनी कमी प्रायः किसी न किसी दूसरे क्षेत्र में पूर्ण करते हैं जैसे संगीत, कला, वाद- विवाद अध्ययन आदि।

x. कुछ अपंग बालक कृत्रिम अंग लगाने, उपकरणों, फिजियोथैरेपी से कुछ सीमा तक ठीक हो जाते हैं।

5. **नेत्रहीन या दृष्टि क्षति से युक्त बालक-** इस वर्ग में पूर्ण अंधे, काने (एक आंखए वाले या कम दृष्टि रखने वाले) बालक आते हैं। यदि बालक की दृष्टि एक्यूटी 20/200 या इससे कम पाई जाती है तो उसे दृष्टि क्षतियुक्त बालक कहा जाता है। पूर्णांध बालक को आंख को छोड़कर नाक, कान, मुँह, हाथ, त्वचा आदि अन्य जागृत इन्द्रियों पर निर्भर होना पड़ता है। कहा गया है कि अंधे अक्षम नहीं होते वास्तव में वे भिन्न तरीके से सक्षम होते हैं। साधारण दृष्टि क्षति युक्त बालक चिकित्सा, आंख के ऑपरेशन, चश्मा आदि से देख पाते हैं। पूर्ण रूप से अंध बालक ब्रेल लिपि में लिखित पुस्तकें पढ़ सकते हैं। पूर्ण अंध या अधिक दृष्टि क्षति युक्त बालकों की शिक्षा विशेष विद्यालयों में तथा शेष सामान्य रूप से दृष्टि क्षतियुक्त बालक समावेशी विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने हेतु सक्षम होते हैं।

दृष्टिहीन बालकों में निम्नलिखित विशेषताएं दिखाई देती हैं;

i. बालक का बार- बार आंखों को मलना
ii. एक आंख खोलना और एक आंख बंद करना
iii. प्रकाश के प्रति संवेदनशील होना
iv. किसी कार्य को करते हुए चेहरे की अभिव्यक्ति में असामान्य होना
v. आंखों में दर्द का अनुभव करना व जलन का अहसास होना
vi. विषय सामग्री को बहुत नजदीकी से पढ़ना या दूर से पढ़ना
vii. जीवन की वास्तविकता से अनभिज्ञ होना
viii. आत्मविश्वास की कमी
ix. एक साथ दो- दो वस्तुएं दिखाई देना
x. पढ़ते हुए बीच- बीच में विषय वस्तु को छोड़ देना
xi. गति मंद होना
xii. सामूहिक कार्यों में कम सहभागिता
xiii. नेत्र के अलावा अन्य ज्ञानेन्द्रियों का संवेदनशील होना
xiv. तीव्र समय गति होना
xv. अपने आसपास के वातावरण पर नियंत्रण में कमी
xvi. अमूर्त चिंतन में कमी
xvii. 10-12 पाइंट अक्षरों वाली किताबों से पढ़ पाने में असमर्थता

6. **श्रवण क्षति युक्त बालक-** बधिर या कम (ऊंचा सुनने वाले) सुनने वाले बालक इस वर्ग में आते हैं। कुछ बालक जन्म से बधिर होते हैं तथा कुछ बीमारी, दुर्घटना आदि के कारण श्रवण क्षति मुक्त हो जाते हैं। सुनने में अक्षमता के कारण ऐसे बालकों की बोलने की शक्ति का भी विकास तथा भाषा का विकास नहीं हो पाता। शाला- कक्षा में ऐसे बालकों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है। इस प्रकार के बालक पाठ्यसहगामी क्रियाओं में भाग नहीं ले पाते क्योंकि उनका श्रवण दोष बाधा उत्पन्न करता है। अल्प श्रवण बाधित या ऊंचा सुनने वाले बालकों को प्रायः 3 श्रेणियों में बाँटा जाता है;

a) साधारण श्रवण बाधित जिनकी श्रवण क्षमता का स्तर 65 डेसीबल होता है।
b) मध्यम श्रवण बाधित बालक जो प्रायः 65 डेसीबल स्तर पर भी नहीं सुन पाते तथाए
c) गंभीर श्रवण बाधित बालक जिनमें 70- 90 डेसीबल तक की श्रवणबाधिता होती है।

श्रवण बाधित बालकों की प्रमुख विशेषताएं (लक्षण) इस प्रकार हैं;

i. इनमें आत्म विश्वास की कमी होती है।
ii. ऐसे बालक अपने भविष्य के प्रति चिंतित रहते हैं।
iii. ऐसे बालक प्रायः तनावग्रस्त रहते हैं।
iv. भाषा का विकास न होने से इनका बौद्धिक विकास भी कम हो जाता है।
v. ऐसे बालकों में सामाजिकता का अभाव दिखाई देता है।
vi. बधिर बालक प्रायः मूक भी होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1.

1. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान एवं लक्षण बताइये।
2. मंदबुद्धि बालक किन्हें कहते हैं?
3. श्रवण बाधित बालकों की प्रमुख विशेषताएं बताइये।

7.6 भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और विशेष शिक्षा की स्थिति

किसी भी सामाजिक एवं शैक्षिक प्रणाली की परिपक्वता की महत्त्वपूर्ण कसौटी है कि वह समाज अपने विकलांग सदस्यों की ओर कितना ध्यान देता है। यही कारण है कि शैक्षिक व नवाचारों के माध्यम से शिक्षा जगत में सुधार लाया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप शैक्षिक परिवर्तन ने शैक्षिक समस्याओं नवीन ज्ञान एवं शैक्षिक तकनीक के माध्यम से शैक्षिक प्रगति के नूतन आयाम प्रस्तुत किए हैं। परिवर्तन की इस तीव्र व गत्यात्मक प्रक्रिया ने "विशिष्टीकरण" की माँग को जन्म दिया है अतः विकलांग बच्चों के लिए सहायताओं, नवीन उपकरणों व यंत्रों व नवीन प्रणालियों को

विकसित रूप प्रदान किया जा रहा है।सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्रीय पुनरुत्थान और विकास की सबसे पहली आवश्यकता है शिक्षा का समुचित प्रचार व प्रसार एवं मानव संसाधन का विकास। संसार के सभी देशों में विकलांग बालकों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है, इन बालकों की समुचित शिक्षा के लिए प्रचार एवं प्रसार पर अत्यन्त बल दिया जा रहा है। राष्ट्रीय विकलांग एवं पुनर्वास सूचना केन्द्र दुबारा विकलांगता व सम्बद्ध क्षेत्रों के बारे में व्यापक संचार योजना पैकेज तैयार किया गया है।

भारत में, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (CWSN) के लिए विशेष शिक्षा की स्थिति अभी भी विकासशील है। हालांकि, सरकार और गैर-सरकारी संगठन समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए प्रयास कर रहे हैं।

विशेष आवश्यकता वाले बालकों हेतु शिक्षा का प्रावधान

- भारतीय संविधान में प्रावधान किया गया है कि संविधान लागू होने के पश्चात् से 10 वर्षों के अंतर्गत सभी राज्य 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेंगे। राज्य अपनी आर्थिक क्षमता के अन्तर्गत विकलांग बालकों के लिए जीवनयापन शिक्षा एवं रोजगार की व्यवस्था करेगा।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत बालकों व विकलांग बालकों के लिए किए गए प्रावधान का वर्णन किया गया। "जो बच्चे विकलांग हों या विक्षिप्त भावनाओं वाले हों या जिनका मानसिक विकास कम हुआ हो, उनको विशेष उपचार, शिक्षा पुनः स्थापन और देखभाल की सुविधायें प्रदान की जायेगी।"
- नई राष्ट्रीय शिक्षा– नीति में बालकों व विकलांग बालकों के लिए प्रावधान के अन्तर्गत वर्णन किया गया कि भारतीय संसद ने मानवतावादी आदर्शों की पुनः स्थापना करने का निश्चय दोहराया है। शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के लिए एक अद्वितीय विनियोजन है। इस नीति के अनुसार अनुमानतः 5 प्रतिशत विकलांग बच्चे ही विशेष विद्यालयों में शिक्षा एवं रोजगार हेतु सुविधाएं पाते हैं अतः इन्हें सामान्य बालकों के साथ सहभागी के रूप में समन्वयन करके उन्हें सामान्य विकास के लिए तैयार करना है जिससे वह "शिक्षा की मुख्यधारा में सबके साथ तैर सके।
- 20 नवम्बर, 1959 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा में 78 देशों के प्रतिनिधियों की एक वृहद सभा के बालकों के अधिकारों के घोषणा पत्र को पारित किया व 9 दिसम्बर, 1975 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में विकलांग व्यक्तियों के घोषणा पत्र को पारित किया।

- संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1981 अंतर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष घोषित किया था जिसके फलस्वरूप विकलांगों के हित में अनेक योजनायें व कल्याणकारी कार्यक्रम सरकार व स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रारंभ किये गये। विकलांगों की बहुमुखी समस्याओं एवं आवश्यकताओं के प्रति समस्त विश्व में चेतना लाने के लिए 20 दिसम्बर 1959 में ज्यूरिक सम्मेलन में विश्व विकलांग दिवस का शुभारम्भ हुआ तब से मार्च के तृतीय रविवार को यह दिवस विश्व के अनेक राष्ट्रों में मनाया जाता है।

भारत में विशेष विद्यालयीन शिक्षा की प्रकृति इस प्रकार है–

(i) पृथक्कीरण– पूर्ण बाधित या अक्षम बालकों के लिए पृथक विद्यालयों की स्थापना का प्रावधान निशक्त व्यक्ति (समान अधिकार, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 (जो भारत में 1 जनवरी 1996 से प्रभावशील है) को धारा 27 'घ' में भी है। जिसमें उल्लेख है कि समुचित सरकारें और स्थानीय प्राधिकारी निःशक्त बालकों के लिए विशेष विद्यालयों को व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाओं से सुसज्जित करने का प्रयास करेंगे। धारा 27 'ग' के अनुसार उनके लिए जिन्हें विशेष शिक्षा की आवश्यकता है, सरकारी और प्राइवेट सेक्टर में विशेष विद्यालयों की स्थापना में ऐसी रीति से अभिवृद्धि करेंगे कि जिससे देश के किसी भी भाग में रहे निःशक्त बालकों की ऐसे विद्यालयों तक पहुँच हो।

पृथक विद्यालयों में समावेशी व सामान्य विद्यालयों के समान सामान्य बालकों व विशेष बालकों का एकीकरण का प्रयास नहीं होता बल्कि अधिक बाधित या पूर्ण बाधितों के लिए अलग से स्कूलों की स्थापना होती है जहाँ अंध, मूक, बधिर, मानसिक मंदिता के शिकार, अपंग (लंगड़े लूले) बालकों की विशेष आवश्यकताओं की पहचान कर प्रशिक्षित शिक्षक, स्त्रात शिक्षक, स्त्रोत सामग्री, अधोसंरचनागत विकास, विशिष्ट पाठ्यक्रम व विशिष्ट शिक्षण विधिया तथा मूल्यांकन विधियों के द्वारा ऐसे विशेष बालकों को शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है।

पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित इन विशेष विद्यालयों में बाधित बालकों को समावेशी विद्यालय के सामाजिक शैक्षिक अलगाव का सामना नहीं करना पड़ता तथा अपने समान सभी छात्रों के साथ शिक्षा प्राप्त करने में सहजता का अनुभव करते हैं। सामान्य शिक्षक पूर्णत: या 80 प्रतिशत से अधिक बाधित बालकों को शिक्षा देने में असमर्थ रहते हैं अतः ऐसे बालकों के लिए पृथक विद्यालय ही उपयुक्त होते हैं।

भारत में केन्द्र व राज्य सरकारों तथा अनुदान प्राप्त गैर सरकारी संगठनों द्वारा ऐसे पृथक विद्यालय प्रायः नगरों, महानगरों में संचालित हैं।

(2) पृथक शैक्षिक व्यवस्था– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निःशक्तजनों की शैक्षिक व्यवस्था विकसित करने हेतु निम्न प्रावधान थे–

- जिला मुख्यालयों पर अनेक प्रकार के विकलांगों के लिए विशेष विद्यालय तथा छात्रावास खोले जायें,
- विकलांगों को व्यावसायिक शिक्षा देने हेतु बाधित प्रबंध किये जायें,
- विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए प्राथमिक स्तर पर विशेष शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाये
- विकलांगों की शिक्षा के लिए स्वैच्छिक प्रयासों को बढ़ावा दिया जाये।।

(3) अक्षम छात्रों का शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक विकास– शैक्षिक विकास के अतिरिक्त इन विशिष्ट विद्यालयों में नि:शक्त छात्रों के सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक विकास पर भी ध्यान दिया जाता है जो विशेष प्रकार के बालकों की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप होता है। छात्रों का नियमित स्वास्थ्य परीक्षण, चिकित्सकों द्वारा निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधाएं, आवश्यक होने पर उपकरणों का प्रदाय औषधियों का प्रदाय, पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सहभागिता, मिल– जुलकर कार्य करने से सामाजिक विकास तथा मनोचिकित्सक या परामर्शदाता द्वारा छात्रों की कुंठा, दिवास्वप्नी होगा असामाजिक होना, डिप्रेशन में आना आदि समस्याओं का निराकरण भी विशेष विद्यालय में होता है।

(4) अधोसंरचनात्मक तथा संसाधनात्मक सुविधाओं का विकास– विशेष विद्यालय के भवन की निर्माण संबंधी विशेषताएं, अपंग छात्रों हेतु रैंप निर्माण, स्रोत कक्षों की साज सज्जा, पुस्तकालय, ब्रेल लिपि में पुस्तकें, संसाधनों उपकरणों का बाहुल्य, दृश्य– श्रव्य सामग्री युक्त कक्षाएं, स्वच्छ शौचालय,शुद्ध पेयजल, मंदबुद्धि बालकों हेतु खिलौनों के रूप में शिक्षण सामग्री, उपयुक्त फर्नीचर, क्लीनिक या चिकित्सा कक्ष, कम्प्यूटर कक्ष, शिक्षण उपकरण, सहायक शिक्षण सामग्री इत्यादि अधोसंरचनात्मक व संसाधनात्मक सुविधाएं जो विशेष बालकों की आवश्यकताओं के अनुरूप हों विशेष विद्यालय की प्रकृति में सम्मिलित हैं।

(5) विशिष्ट शिक्षण प्रविधियाँ, विशिष्ट पाठ्यक्रम, विशेष प्रशिक्षित शिक्षक– विशिष्ट बालकों हेतु निर्मित विशेष विद्यालयों में विभिन्न प्रकार या श्रेणी के बाधितों हेतु आवश्यक विशिष्ट पाठ्यक्रम, विशिष्ट पाठ्यक्रमेत्तर गतिविधियाँ, विशिष्ट आधुनिक मनोवैज्ञानिक क्रियाशील शिक्षण प्रविधियाँ तथा उन्हें पढ़ाने वाले विशेष प्रशिक्षित शिक्षक होने चाहिए। वीडियो टेप, टी.वी., स्मार्ट

विजुअल क्लास, ओवरहेड प्रोजेक्टर, कम्प्यूटर, टेबलेट, फिल्म आदि शैक्षिक सामग्रियाँ भी इन विद्यालयों में आवश्यक हैं।सबसे अच्छे ऑनलाइन कोर्स

(6) विशिष्ट व्यावसायिक शिक्षा तथा पुनर्वास सुविधाएं– राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विकलांगों (जिनमें अस्थि बाधित, दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, वाणि बाधित, मंद बुद्धि आदि सम्मिलित हैं) के लिए व्यावसायिक शिक्षण को भी सामान्य शिक्षा के साथ आवश्यक बताया है। इसकी पृष्ठभूमि में यह तथ्य छिपा है कि पढ़ लिख जाने के बाद विकलांगों को किसी व्यवसाय या नौकरी से जीवन यापन करना आवश्यक होता है ताकि वे अपनी आजीविका की समस्या का हल पा सकें । विशेष विद्यालयों में बाधित बालकों की प्रकृति व क्षमता को देखते हए उन्हें कई प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है जैसे संगीत.टाइप राइटिंग कताई– बनाई. पाक़ विद्या, बिजली का काम, लाइब्रेरियन का नाम इत्यादि । व्यावसायिक प्रशिक्षण से वे भविष्य में पढ़ लिख कर नौकरी पाने या स्वरोजगार स्थापित करने में समर्थ हो सकेंगे।

(7) आवासीय विद्यालय– विशिष्ट बालकों के लिए प्राचीनतम शिक्षा व्यवस्था की प्रकृति छात्रावासी विद्यालयों के रूप में थी जो आज भी अनेक अंध, मूक, बधिर, मंदबुद्धि विद्यालयों में है। छात्रावास में रहने से विभिन्न श्रेणियों के छात्रों में अपनत्व, भाईचारा, दूसरे की सहायता करने की भावना उत्पन्न होती है । छात्रावास में रहकर उनमें आत्मनिर्भरता का गुण भी उत्पन्न होता है तथा भोजन आवास आदि समस्या से मुक्त होकर ऐसे बाधित व्यक्ति शिक्षा हेतु समीप स्थित विद्यालय में जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।सबसे अच्छे ऑनलाइन कोर्स

ii. समावेशी विद्यालय– समावेशी विद्यालय बाधित तथा विशिष्ट बालकों के लिए स्थापित विशेष विद्यालयों से इस रूप में भिन्न होते हैं कि समावेशी विद्यालयों में सामान्य बालकों के साथ विशेष ऐसें बालकों को प्रवेश दिया जाता है जो पूर्णतः अंधे, बधिर, अपंग, मंदबुद्धि न होकर कम मात्रा या परिमाण में अक्षम होते हैं तथा अन्य सामान्य बालकों के साथ समायोजित हो जाते हैं। यद्यपि उनके लिए विशेष कक्षा, विशेष स्रोत शिक्षक, विशेष शिक्षण विधियों की आवश्यकता पड़ती है। विशेष विद्यालय बाधित बालकों के ग्राम या नगर से दूर केन्द्रित नगरों में स्थापित होते हैं जहाँ जाकर अध्ययन करने में बाधित वर्ग के बालकों को यातायात, आर्थिक व्यय,शारीरिक अक्षमता आदि की समस्या आती है तथा उनके निवास स्थान के निकट विद्यालयों में ऐसे बालकों को सामान्य बालकों के साथ समायोजित किया जाता है। इससे वे समाज के मुख्य धारा के निकट आते हैं तथा पृथक्करण के स्थान पर एकीकरण के सिद्धान्त पर शिक्षा अर्जित कर सकते हैं।

भारत में विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा में समावेशी शिक्षा की प्रकृति इन तथ्यों से स्पष्ट है–

(1) शिक्षा व्यवस्था में सामान्य एवं अक्षम छात्रों को एक साथ शिक्षित किया जाता है। पृथक्करण के स्थान पर एकीकरण के सिद्धान्त को अपनाया जाता है।

(2) इसमें विशेष आवश्यकता वाले बालकों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयास होते हैं। वांग के अनुसार, "मुख्य धारा से अभिप्राय सामान्य और विशिष्ट बालकों का एक विद्यालय के पर्यावरण से है जहाँ सभी बालक सीखने हेतु समान साधनों एवं अवसरों का उपयोग करने में हर समय समान रूप से भागीदार होते हैं।"

(3) यह शिक्षा समावेश के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें बिना किसी अपंगता या विशिष्टता का भाव लिए विशेष आवश्यकता वाले बालक सामान्य बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(4) विशेष विद्यालयों की प्रकृति महँगी है परन्तु समावेशी शिक्षा सस्ती व सुलभ है |

(5) समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बालक तथा सामान्य बालकों की सहभागिता व साझेदारी होने से सामाजिक गुण, टीम भावना, भाईचारा पनपता है। परस्पर सहयोग की भावना भी विकसित होती है। सबसे अच्छे ऑनलाइन कोर्स

(6) यह शिक्षा भेदभाव रहित होने से पृथकता की शिक्षा की विरोधी है।

(7) इस समावेशी शिक्षा से विशिष्ट बालकों में आत्मविश्वास विकसित होता है।

(8) भारत में विशेष विद्यालय कम स्थापित हैं अतः समावेशी शिक्षा भारतीय परिस्थिति के अनुकूल होने के साथ– साथ सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक है।

(9) इसमें शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर विभिन्न बाधित बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं को समझकर उसके अनुसार शिक्षा देते हैं।

(10) विद्यालय की अधोसंरचना व संसाधनों में सामान्य बदलाव कर विद्यालय को समावेशी विद्यालय बनाया जा सकता है।

(11) समावेशी विद्यालयों में भी विशिष्ट बालकों हेतु उनकी क्षमताओं के अनुसार शिक्षण देने में शिक्षण तकनीक, लोचदार पाठ्यक्रम, प्रशिक्षित शिक्षक तथा विशिष्ट पाठ्य सहगामी क्रियाओं व विशेष कक्षाओं की आवश्यकतानुसार जरूरत होती है ताकि बाधित बालकों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार । शिक्षित किया जा सके । सामान्य बालकों हेतु दृश्य– श्रव्य साधन, अद्यतन शिक्षण विधियाँ विशेष बालकों हेतु भी उपयोगी सिद्ध होती है।

(12) सर्वांगीण विकास (शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक) सामान्य व विशिष्ट दोनों प्रकार के छात्रों हेतु आवश्यक है जो समावेशी विद्यालय में थोड़े बहुत बदलाव के प्रयासों से अर्जित किया जा सकता है।

(13) गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सामान्य व बाधित दोनों प्रकार के छात्रों के लिए उपयोगी है। इसी प्रकार व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दोनों प्रकार के छात्रों हेतु उपयोगी है। इसे समावेशी विद्यालयों में पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जा सकता है।

(14) सामान्य विद्यालयों या कक्षाओं में पढ़ रहे बाधित बालकों हेतु अतिरिक्त कक्षा की व्यवस्था होने से मंदबुद्धि, अधिगम बाधित व अन्य श्रेणी के बाधित बालकों को सामान्य बालकों के साथ उनके स्तर तक समायोजित किया जा सकता है।

(15) निदेशन व परामर्श बाधित बालकों के लिए समावेशी विद्यालयों में आवश्यक है तथा इससे सामान्य बालक भी लाभान्वित हो सकते हैं।

(16) समावेशी विद्यालय में मूल्यांकन का विशेष महत्त्व बाधित बालकों के लिए है क्योंकि मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों के आधार पर विशेष बालकों की वैयक्तिक कमियों की पहचान कर उसके अनुरूप शिक्षण देने में शिक्षक को सहायता मिलती है। बेशक मूल्यांकन व्यवस्था अन्य सामान्य बालकों के लिए भी उपयोगी है। सतत तथा समग्र मूल्यांकन की व्यवस्था समावेशी विद्यालयों हेतु आवश्यक है।

(17) खेलकूद, पाठ्यसहगामी क्रियाएं विशिष्ट तथा सामान्य बालकों के विकास हेतु उपयोगी है। शैक्षिक यात्राएं भी समावेशी विद्यालयों की प्रकृति में सम्मिलित होनी चाहिए इससे विशिष्ट बालकों को बाहर की दुनिया का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है।

विशेष शिक्षा में चुनौतियाँ

- **पहचान और मूल्यांकन:**

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान और मूल्यांकन में देरी हो सकती है, जिससे उनके लिए समय पर शिक्षा और समर्थन प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है।

- शिक्षक प्रशिक्षण:
  विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी है, जिससे वे अपनी शिक्षा के प्रति प्रतिक्रिया करने में सक्षम नहीं होते हैं।
- बुनियादी ढांचा:

स्कूलों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए उपयुक्त बुनियादी ढांचे की कमी है, जैसे कि रैंप, विशेष बाथरूम और अन्य सुविधाएँ।

- सामाजिक रूढ़िवादी:
  कुछ माता-पिता और शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अलग करने के प्रति पूर्वाग्रह रखते हैं, जिससे उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होती है।
- वित्तीय संसाधन:
  विशेष शिक्षा और सहायता सेवाओं के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों की कमी है।

विशेष शिक्षा में प्रगति

कानूनी ढांचा:भारत सरकार ने राइट टू एजुकेशन एक्ट (RTE Act) और राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसेबिलिटीज एक्ट (RPWD Act) जैसे कानूनों को लागू किया है, जो सभी बच्चों के लिए शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित करता है, जिनमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी शामिल हैं।

समावेशी शिक्षा: सरकार समावेशी शिक्षा को बढ़ावा दे रही है, जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य स्कूलों में शामिल करना शामिल है।
गैर-सरकारी संगठन: कई गैर-सरकारी संगठन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा और समर्थन प्रदान करने के लिए काम करते हैं।
प्रशिक्षण: विशेष शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए कार्यक्रम शुरू किए गए हैं।
सामुदायिक भागीदारी: विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा के समर्थन के लिए सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा दिया जा रहा है।

भारत में अन्य कई देशों के समान बाधित बालकों को अलग कर विशेष संस्थाओं में रखा जाता है। परन्तु शिक्षा की दृष्टि से उन्नत देशों में अब विशिष्ट बाधित बालकों को नियमित समेकित शालाओं में प्रवेश दिलया जा रहा है इससे दोहरे लाभ हैं एक तो समावेशी शिक्षा मितव्ययी व सुलभ है दूसरे इसमें तथा सामान्य बच्चों में परस्पर एक दूसरे को समझने व सद्भाव में वृद्धि होती है। शत प्रतिशत विकलांगता से ग्रसित बालकों को समावेशी शालाओं में प्रवेश से उनकी समुचित शिक्षा व्यवस्था में कठिनाई आएगी अतः ऐसे विकलांग बालकों हेतु विशेष विद्यालय में शिक्षा दिलाया जाना उचित है।

7.7 भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए क़ानून एवं प्रावधान

भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए कानून और प्रावधान मुख्य रूप से बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (RTE), विकलांग व्यक्तियों के

अधिकार अधिनियम, 2016 (RPWD Act), और राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 के तहत कवर किए जाते हैं। RTE अधिनियम 6 से 14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा का अधिकार देता है, जबकि RPWD अधिनियम विकलांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा और भेदभाव के खिलाफ संरक्षण की बात करता है।

मुख्य कानून और प्रावधान:

निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (RTE):

यह अधिनियम 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है, जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी शामिल हैं।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 (RPWD Act):

यह अधिनियम विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करता है, जिसमें समावेशी शिक्षा और भेदभाव के खिलाफ संरक्षण शामिल है।

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 (NCPCR):

यह अधिनियम बच्चों के अधिकारों की रक्षा और बाल संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय आयोग स्थापित करता है।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015:

यह अधिनियम बच्चों की देखभाल और संरक्षण से संबंधित है, जिसमें बाल अपराध, पुनर्वास और देखभाल शामिल है ।

समावेशी शिक्षा:

भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा को बढ़ावा दिया जाता है, जिसका अर्थ है कि वे सामान्य बच्चों के साथ एक ही कक्षा में सीख सकते हैं।

विशेष शिक्षा:

विशेष शिक्षा विकलांग बच्चों को सीखने में मदद करने के लिए केंद्रित है, जिसमें व्यक्तिगत शिक्षा योजनाएं (IEPs) शामिल हैं।

माता-पिता का समर्थन:

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के माता-पिता को बच्चों की शिक्षा और देखभाल के लिए सहायता और संसाधन उपलब्ध कराए जाते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण:

शिक्षकों को विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के लिए प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वे प्रभावी ढंग से उनकी जरूरतों को पूरा कर सकें।

भारत सरकार ने विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए मजबूत कानूनी और नीतिगत ढांचे को स्थापित किया है, जो उनके अधिकारों की रक्षा करता है और उन्हें शिक्षा और देखभाल के समान अवसर प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न 2.

1. भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए क़ानून एवं प्रावधानों पर चर्चा कीजिए।
2. विशेष शिक्षा में आने वाली चुनौतियों पर संक्षिप्त में लिखिए।

7.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे क्या होते हैं एवं उनकी आवश्यकताएं क्या क्या हैं। इसके अतिरिक्त आपने यह भी पढ़ा कि विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था किस प्रकार की जाती है। आपने विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के प्रमुख लक्षणों एवं प्रकारों को भी पढ़ा। भारत के सन्दर्भ में आपने देखा कि भारत में विशेष शिक्षा की स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन अभी भी बहुत काम किया जाना है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा तक पहुंच, गुणवत्ता वाली शिक्षा और समर्थन सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए, सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, माता-पिता और शिक्षकों को मिलकर काम करना चाहिए।

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

पृथक : विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अलग से पढ़ाना।

एकीकृत : विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ पढ़ाना।

समावेश: पाध्यक्रमों में संशोधन हेतु नए अनुसंधानों को शामिल करना।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. बिंदु 7.4 देखें
2. बिंदु 7.5 देखें
3. बिंदु 7.5 देखें

अभ्यास प्रश्न2.

1. बिंदु 7.7 देखें।

2. बिंदु 7.6 देखें

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Indira Gandhi National Open University. (2024). Curriculum and Pedagogy for early years and foundational stage education: Part 1. School of continuing education, IGNOU.
- Ministry of Human Resource Development. (n.d.). National Education Policy 2020. Government of India. Retrieved from https://www. education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
- Ministry of Women and Child Development. (2013). National early childhood care and education (ecce) policy. Government of India. Retrieved from https://www.nitiforstates.gov.in/public-assets/Policy/ policy_files/PNC503P000013.pdf
- National Council of Educational Research and Training. (2022). National curriculum framework for foundational stage. Retrieved from https://ncert.nic.in/pdf/NCF_for_Foundational_Stage_20_October_2022.pdf
- National Council of Educational Research and Training. (2022). Vidya Pravesh Three-month Play-based School Preparation Module for Grade-I. Publication Division, NCERT, New Delhi. Retrieved from https://ncert.nic.in/pdf/vidyapravesh.pdf

- National Institute for Public Cooperation and Child Development. (2024). Navchetana national framework for early childhood stimulation for children from birth to three years. Government of India. Retrieved from https://drive.google.com/file/d/1ucOk_x8wITTFuymbE0-khfR4I38VGSOn/view
- National Institute for Public Cooperation and Child Development. (2024). Aadharshila national curriculum for early childhood care and education for children from three to six years. Government of India. Retrieved from https://drive.google.com/file/d/1eUkr9XC7z1Sjy6mvoA5aMfF9xNGyqXRR/view
- https://www.egyankosh.ac.in
- https://www.researchgate.net/publication/354193079_The_Universality_of_Education_for_Children_with_Special_Needs_in_India_Current_Status
- भार्गव, महेश - विशिष्ट बच्चे
- शर्मा, आर0ए0 - विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप
- सिरिल, बर्ट - एक्सेप्सनल चिल्ड्रेन
- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन - जे0सी0 अग्रवाल
- विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे की शिक्षा तथा निदेशन एवं परामर्श-डॉ0 विनय ऋषिश्वर
- भारत में प्राथमिक शिक्षा - जे0सी0 अग्रवाल

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की सीखने-सिखाने की व्यवस्था कैसे करेंगे स्पष्ट करिए ?

2. विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य शिक्षण ग्रहण करने में क्यों कठिनाई होती है? स्पष्ट करिए ?

इकाई 8: परिवारों के प्रकार और बच्चे के विकास पर उनका प्रभाव

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3परिवार की परिभाषा
8.4 परिवार की विशेषताएं
8.5 परिवार के कार्य
8.6 परिवार के प्रकार
8.7 पारिवारिक सम्बंधों का महत्व तथा बाल विकास में इनकी भूमिका
8.8 पारिवारिक संरचना में परिवर्तन से बच्चों पर पड़ रहे प्रभाव
8.9 सारांश
8.10 पारिभाषिक शब्दावली
8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

बुनियादी रूप से परिवार दो या दो से अधिक लोगों का समूह होता है जो आपस में जन्म, विवाह या गोद लेने से संबंधित होते हैं तथा एक घर में साथ रहते हैं। परिवार एक मौलिक सामाजिक इकाई हैं, जो बच्चों के प्रजनन, पालन-पोषण और समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

परिवार शब्द लैटिन शब्द 'फ़ैमिलिया' से आया है जिसका अर्थ होता है घर। यह 'प्राथमिक समूह' का सबसे कुशल उदाहरण है। परिवार एक समूह और एक संस्था है, क्योंकि इसके कुछ आधारभूत कुछ नियम और प्रक्रियाएँ होती हैं। मानवविज्ञानी सह-निवास नियमों, अधिकार के पैटर्न, वंश, विवाह, संपत्ति और आपसी रिश्तों सहित विभिन्न आयामों के संदर्भ में परिवार का अध्ययन करते हैं। एक संस्था के रूप में इसकी स्थापना मनुष्य की आवश्यक जैविक और सामाजिक अनिवार्य आवश्यकताओं पर की गई। इसे समाज में सबसे बुनियादी और मौलिक इकाई माना जाता है और इसलिए मानव समाज में एक सार्वभौमिक समूह है। यह रिश्तेदारी का एक बंधन होता है जो मुख्य

रूप से एक पारिवारिक समूह के सदस्यों को एक साथ जोड़ता है। एकीकरण के दो मौलिक सिद्धांत जो परिवार को अक्षुण रखने के लिए बाध्यकारी बल के रूप में काम करते हैं, वे विवाह और वंश के माध्यम से उत्पन्न होने वाले संबंधों पर आधारित हैं। ये सिद्धांत तीन प्रमुख प्रकार के रिश्तों को बनाने के लिए काम करते हैं जो पति और पत्नी, माता-पिता और बच्चों और भाई-बहनों के बीच मौजूद हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी;

- परिवार को परिभाषित कर पाएंगे;
- परिवार की विशिषताओं तथा कार्यों को जान पाएंगे;
- परिवार के विभिन्न वर्गीकरणों को समझ पाएंगे; तथा
- परिवार का बच्चों के विकास तथा मानसिकता पर प्रभावों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

8.3 परिवार की परिभाषा

विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा परिवार की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी गई हैं:

1. बर्गेस एवं लॉक के अनुसार "एक परिवार विवाह, रक्त सम्बंध अथवा गोद लेने के सम्बंधों से सम्बद्ध व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं और परस्पर पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री तथा भाई-बहन की अपनी सम्बंधित सामाजिक भूमिकाओं में एक दूसरे के साथ बातचीत और संवाद करते हैं तथा एक साझा संस्कृति का निर्माण करते हैं।

2. थॉमस क्लेयर के अनुसार "परिवार अभिभावकों तथा बच्चों के मध्य विद्यमान सम्बंधों की एक प्रणाली है"।

3. डी0एन0 मजूमदार के अनुसार परिवार व्यक्तियों का एक समूह है जो एक छत के नीचे रहते हैं तथा रिश्तों के सूत्रों से बँधे रहते हैं और स्थानीयता, रुचि और दायित्व की पारस्परिकता के आधार पर प्रकार की सम्बंध की चेतना रखते हैं।

4. एक प्रमुख मानवविज्ञानी जॉर्ज मरडॉक ने परिवार को एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें समान निवास, आर्थिक सहयोग और प्रजनन की विशेषता होती है। इसमें दोनों लिंगों के वयस्क शामिल होते हैं, जिनमें से कम से कम दो सामाजिक रूप से स्वीकृत यौन संबंध रखते हैं, और एक या अधिक बच्चे (स्वयं के या गोद लिए हुए) होते हैं।

5. इलियट और मिरिल के अनुसार परिवार को पति-पत्नी और उनके बच्चों की जैविकीय समाजिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर एक परिवार में निम्न विशेषताएं होती हैं:

- विवाह सम्बंध
- सामाजिक रूप से स्वीकार्य संबंध (रक्त सम्बंध अथवा गोद लेने सम्बंधी रिश्ता)
- वंश व्यवस्था
- आर्थिक व्यवस्था
- कुछ व्यक्तियों के समान निवास
- छोटा स्थायी समूह

8.4 परिवार की विशेषताएं

परिवार की कई विशेषताएं होती हैं जो उसे एक विशिष्ट रूप प्रदान करती हैं। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. सार्वभौमिकता: परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। इसका अस्तित्व कई सरल समाजों में भी पाया गया है। उन्नत समाजों में, संपूर्ण सामाजिक संरचना पारिवारिक इकाइयों से बनी होती है। मैकआइवर के अनुसार, यह सभी समाजों में तथा सामाजिक विकास के सभी चरणों में पाया जाता है। हर इंसान किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है।

2. पति-पत्नी के बीच स्थायी संबंध: परिवार पति-पत्नी और उनके बच्चों से मिलकर बनता है। इस प्रकार, पुरुष और महिला के बीच किसी प्रकार का स्थायी संबंध स्थापित होना पारंपरिक परिवार की मुख्य विशेषता है। यह संबंध बच्चों के पालन-पोषण और समाजीकरण के लिए अनिवार्य माना जाता है।

3. यौन संबंध परिवार के आधार के रूप में: परिवार पति-पत्नी के बीच यौन संबंधों पर टिका होता है। पारंपरिक व्यवस्था में विवाह, यौन संबंध और परिवार को एक-दूसरे का पूरक माना जाता था। दूसरे शब्दों में, संतानोत्पत्ति हेतु लिए यौन संबंधों की वैधता के लिए पुरुष और महिला के विवाह को संस्थागत बनाया गया। इससे समाज की मूल इकाई प्राथमिक परिवार का निर्माण हुआ।

4. रक्त संबंधों का महत्व: पारंपरिक परिवार में रक्त सम्बंधों का बहुत महत्व है। रक्त से जुड़े सभी लोग एक ही परिवार के सदस्य माने जाते हैं। एक ही परिवार के सभी सदस्य एक ही पूर्वज के वंशज होते हैं।

5. वित्तीय और आर्थिक जिम्मेदारी का बंटवारा: पारंपरिक परिवार में वित्तीय और आर्थिक जिम्मेदारी सदस्यों के बीच बांटी जाती है। यानी कमाने वाले सदस्य परिवार के गैर-कमाऊ सदस्यों की देखभाल करते हैं। पारंपरिक व्यवस्था में जिम्मेदारी का बंटवारा लैंगिक श्रम विभाजन के आधार पर होता था। पुरुष आजीविका कमाने के लिए बाहर जाते थे तथा महिलाओं को घरेलू काम सौंपा जाता था।

6. साझा निवास: पारम्परिक रूप से परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहते हैं। एक ही घर में रहने से सदस्यों को आर्थिक जिम्मेदारी साझा करने में मदद मिलती है।

7. बातचीत और संचार की प्रणाली: परिवार उन व्यक्तियों से बना होता है जो अपनी सामाजिक भूमिकाओं जैसे पति और पत्नी, माता और पिता, बेटा और बेटी आदि के रूप में एक-दूसरे के साथ बातचीत और संवाद करते हैं।

8.5 परिवार के कार्य

परिवार विभिन्न समाजों में कई प्रकार के कार्य करता है। परिवार के कुछ सामान्य कार्य निम्न हैं:

1. उत्पादन और उपभोग का संगठन: पूर्व-औद्योगिक समाजों में, आर्थिक व्यवस्था प्रत्येक परिवार के उपभोग के स्थान पर उसके उत्पादन पर अधिक निर्भर करती है। परिवार अपने सदस्यों की उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने का पारंपरिक साधन रहा है।

2. यौन आवश्यकताओं की संतुष्टि: यह परिवार द्वारा किया जाने वाला एक आवश्यक कार्य है। यौन वृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक और जैविक इच्छा है। यौन इच्छा की संतुष्टि के लिए यह आवश्यक है कि पुरुष और महिला परिवार में पति-पत्नी के रूप में एक साथ रहें। परिवार विवाह संस्था के माध्यम से पुरुष और महिला की यौन इच्छाओं को संतुष्ट करता है। आधुनिक परिवारों में यौन वृत्ति की संतुष्टि पारंपरिक परिवार की तुलना में अधिक है।

3. प्रजनन: वंश को बढ़ाने का कार्य हमेशा से परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य रहा है। एक सतत् समाज को अपने सदस्यों को प्रतिस्थापित करते रहना चाहिए। यह मुख्य रूप से परिवार के सदस्यों के जैविक प्रजनन पर निर्भर करता है। परिवार प्रजनन और बच्चों के पालन-पोषण के लिए एक उत्कृष्ट संस्था है। यह यौन व्यवहार को विनियमित करके प्रजनन के लिए एक वैध और जिम्मेदार

आधार सुरक्षित करता है। यह नवजात शिशुओं और बच्चों को देखभाल और व्यक्तिगत सुरक्षा प्रदान करता है।

4. बच्चों का समाजीकरण: परिवार न केवल प्रजनन के लिए जिम्मेदार है, बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक है कि उसके बच्चों को अनुमत जीवनशैली को अपनाने, उसके द्वारा मूल्यवान कौशल में महारत हासिल करने और आवश्यक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। समाज पूर्वानुमानित सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है जिसके भीतर उसके बच्चों का समाजीकरण होता है और परिवार समाज से नए सदस्यों तक संचरण की इकाई है।

5. संपत्ति हस्तांतरण: परिवार संपत्ति रखने और हस्तांतरित करने के लिए एक एजेंसी के रूप में कार्य करता है। अधिकांश परिवार बहुत सारी संपत्ति जैसे भूमि, सामान, धन और अन्य प्रकार की संपत्ति जमा करते हैं। परिवार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संपत्ति हस्तांतरित करता है।

6. सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करना: किसी व्यक्ति का परिवार में जन्म लेना उसे एक सामाजिक स्थिति प्रदान करता है। इस प्रकार, सबसे पहले, व्यक्ति खुद को उस परिवार के संबंध में परिभाषित करता है जिससे वह संबंधित है। परिवार के भीतर विभिन्न भूमिकाएँ निभाने के मामले में अपनेपन की भावना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी व्यक्ति की अधिकांश निर्धारित स्थितियाँ सीधे उस परिवार से संबंधित होती हैं जिससे वह संबंधित है, उदाहरण के लिए, आयु, जाति, राष्ट्रीयता, सामाजिक वर्ग, धर्म आदि किसी व्यक्ति को इसलिए प्रदान किए जाते हैं क्योंकि उसका जन्म एक विशेष परिवार में हुआ था।

7. मनोवैज्ञानिक कार्य: परिवार में परस्पर स्नेह, आदर, विश्वास, सहयोग आदि भावनाओं से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है। ऐसे परिवार जो किसी कारण से विघटित हो जाते हैं अथवा जिन परिवारों में स्वस्थ स्नेह भरा माहौल नहीं होता है, उन परिवारों के बच्चों के मानसिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे परिवारों के सदस्य अपराधिक प्रवृत्तियों में लिप्त हो जाते हैं।

8. सामाजिक नियंत्रण: परिवार व्यक्ति के क्रियाकलापों पर नियंत्रण रखने हेतु एक आवश्यक संस्था है। एक प्राथमिक समूह होने के नाते परिवार के सदस्य आपस में जुड़े रहते हैं। कोई भी गलत कार्य करने से पूर्व व्यक्ति अपने परिवार के बारे में अवश्य सोचता है कि इससे उसके परिवार पर क्या प्रभाव होगा अथवा इस कार्य को करने से उसके परिवार की समाज में बदनामी होगी।

9. धार्मिक कार्य: प्रत्येक परिवार एक धर्म विशेष का पालन करता है। परिवार के धार्मिक कार्य में धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाना शामिल है। इसमें बच्चों

को प्रार्थना, धर्मग्रंथ पढ़ने और पूजा स्थलों में जाने जैसी साझा प्रथाओं के माध्यम से ईश्वर, नैतिकता और उनके विश्वास के अनुष्ठानों के बारे में सिखाया जाता है।

10. मनोरंजनात्मक कार्य: परिवार के मनोरंजन कार्य में सदस्यों को विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से अवकाश, विश्राम और मौज-मस्ती के अवसर प्रदान करना शामिल है। इसमें खेल खेलना, रुचियों का आनंद लेना, साथ में बाहर समय बिताना या एक-दूसरे की संगति का आनंद लेना शामिल हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

i. परिवार शब्द लैटिन शब्द ..... से आया है जिसका अर्थ होता है घर।

ii. परिवार सभी समाजों में तथा सामाजिक विकास के सभी चरणों में पाया जाता है, यह परिवार की ..... विशेषता को दर्शाता है।

iii. परिवार में परस्पर स्नेह, आदर, विश्वास, सहयोग आदि भावनाओं से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है, यह परिवार का ..... कार्य है।

iv. एक सतत् समाज में सदस्यों का प्रतिस्थापन मुख्य रूप से परिवार के सदस्यों के ..... पर निर्भर करता है।

8.6 परिवार के प्रकार

यद्यपि परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है, लेकिन इसकी संरचना या स्वरूप एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न होता है। समाजशास्त्रियों और मानवविज्ञानियों ने विभिन्न संस्कृतियों में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के परिवारों का उल्लेख किया है तथा विभिन्न आधारों पर परिवार के प्रकारों को बताया गया है।

1. संगठन के आधार पर: संगठन के आधार पर परिवार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है:

अ. एकल परिवार (Nuclear Family)

एकल परिवार पति, पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों से बनी इकाई है। एकल परिवार का आकार बहुत छोटा होता है। यह परिवार के बुजुर्ग सदस्यों के नियंत्रण से मुक्त होता है। आधुनिक समाज में इसे परिवार का सबसे प्रभावशाली और आदर्श रूप माना जाता है। एकल परिवार वैवाहिक बंधनों पर आधारित होता है। भारत में एकल परिवार की प्रकृति पर चर्चा करते हुए, पॉलीन कोलेंडा ने

एकल परिवार संरचना में परिवर्धन/संशोधन पर चर्चा की है। उन्होंने इसकी निम्नलिखित संरचनागत श्रेणियाँ दी हैं।

(क) एकल परिवार से तात्पर्य ऐसे दम्पति से है जिनके बच्चे हों या न हों।

(ख) पूरक एकल परिवार से तात्पर्य ऐसे एकल परिवार से है जिसमें माता-पिता के अविवाहित बच्चों के अलावा एक या अधिक अविवाहित, विलग या विधवा सम्बंधी शामिल होते हैं।

(ग) उप-एकल परिवार को पूर्व एकल परिवार के एक अंश के रूप में परिभाषित किया जाता है, उदाहरण के लिए एक विधवा/विधुर अपने अविवाहित बच्चों या भाई-बहनों (अविवाहित, विधवा, विलग या तलाकशुदा) के साथ एक साथ रह रहे हों।

(घ) परिवार में एकल व्यक्ति।

(ङ) पूरक उप-एकल परिवार सम्बंधियों के एक समूह को संदर्भित करता है, जो पूर्व में पूर्ण एकल परिवार के सदस्य थे और साथ ही कुछ अन्य अविवाहित, तलाकशुदा या विधवा रिश्तेदार जो एकल परिवार के सदस्य नहीं थे।

ब. विस्तारित परिवार (Extended Family)

विस्तारित परिवार शब्द का उपयोग माता-पिता-बच्चे के संबंधों के विस्तार के आधार पर दो या अधिक एकल परिवारों के संयोजन को इंगित करने के लिए किया जाता है। मर्डोक के अनुसार, एक विस्तारित परिवार में दो या अधिक एकल परिवार होते हैं जो अभिभावक-बच्चों के संबंधों के विस्तार के माध्यम से जुड़े होते हैं। एक विस्तारित परिवार में, एक आदमी और उसकी पत्नी अपने विवाहित बेटों के परिवारों और अपने अविवाहित बेटों और बेटियों, पोते-पोतियों के साथ रहते हैं। बॉटमोर के अनुसार विस्तारित परिवार के विभिन्न प्रकार हैं:

1. पितृवंशीय विस्तारित परिवार- पिता-पुत्र संबंधों के विस्तार पर आधारित

2. मातृवंशीय विस्तारित परिवार- माँ-बेटी के संबंधों पर आधारित

3. भ्रातृ या संपार्श्विक परिवार- क्षैतिज रूप से विस्तारित परिवार जिसमें दो या दो से अधिक भाई, उनकी पत्नियाँ और बच्चे शामिल होते हैं।

स. संयुक्त परिवार (Joint Family)

संयुक्त परिवार भाई-बहनों, उनके जीवनसाथी और उनके आश्रित बच्चों के समूह से मिलकर बनता है। एम.एस. गोरे के अनुसार संयुक्त परिवार में एक पुरुष और उसकी पत्नी और उनके वयस्क बेटे, उनकी पत्नियाँ और बच्चे तथा पैतृक दंपत्ति के छोटे बच्चे शामिल होते हैं। संयुक्त परिवार का

आकार बहुत बड़ा होता है। आम तौर पर, सबसे बड़ा पुरुष परिवार का मुखिया होता है। इस प्रकार के परिवार में सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य शक्ति और अधिकार के पदानुक्रम क्रम द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। संयुक्त परिवार के बच्चे पैतृक पीढ़ी के सभी पुरुष सदस्यों के बच्चे होते हैं। वैवाहिक संबंध या पति और पत्नी के बीच के रिश्ते को संतान संबंधी संबंधों या पिता और पुत्र के बीच के संबंधों से कम महत्वपूर्ण माना जाता है।

2. अधिकार के आधार पर: अधिकार के आधार पर परिवार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है:

अ. पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)

पितृसत्तात्मक परिवार एक प्रकार का परिवार है जिसमें सभी अधिकार पितृ पक्ष के पास होते हैं। इस परिवार में सबसे बड़ा पुरुष या पिता परिवार का मुखिया होता है। वह परिवार के सदस्यों पर अपना अधिकार जताता है।

ब. मातृसत्तात्मक परिवार (Matriarchal Family)

यह परिवार का एक रूप है जिसमें अधिकार पत्नी या माँ में केंद्रित होता है। मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था का अर्थ है कि परिवार पर पिता का नहीं बल्कि माँ का शासन होता है, इस प्रकार के परिवार में महिलाएँ धार्मिक अनुष्ठान करने की हकदार होती हैं और घर का स्वामित्व महिला/माँ के पास होता है।

3. निवास के आधार पर: निवास के आधार पर परिवार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है:

अ. पितृस्थानीय परिवार (Patrilocal Family)

ऐसा परिवार जहाँ पत्नी पति के परिवार के साथ रहने जाती है, पितृस्थानीय परिवार कहा जाता है।

ब. मातृस्थानीय परिवार (Matrilocal Family)

जब विवाह के बाद दम्पति पत्नी के परिवार के साथ रहने के लिए चले जाते हैं। ऐसे निवास को मातृस्थानीय कहा जाता है। पति का पत्नी के परिवार में गौण स्थान होता है।

स. नवस्थानीय निवास (Neolocal Residence)

जब विवाह के बाद दम्पति एक स्वतंत्र निवास में बसने के लिए चले जाते हैं, जो न तो पत्नी के मूल परिवार से जुड़ा होता है और न ही पति के मूल परिवार से, तो इसे नवस्थानीय निवास कहा जाता है।

4. आधुनिकता के आधार पर: इस आधार पर परिवार को निम्न रूप से वर्गीकृत किया गया है:

अ. पारंपरिक परिवार (Traditional Family)

एक पारंपरिक परिवार में एक पुरुष, एक महिला और उनके एक या अधिक जैविक या गोद लिए गए बच्चे होते हैं। अधिकांश पारंपरिक परिवार दादा-दादी, चाचा-चाची, माता-पिता और बच्चों सहित विस्तृत होते हैं। ये मुख्यत: संयुक्त परिवार का ही रूप होते हैं।

ब. आधुनिक परिवार (Modern Family)

आधुनिक परिवार एकल परिवार होते हैं जो आकार में छोटे होते हैं और इसमें पिता, माता और एक या दो बच्चे होते हैं।

स. उत्तर आधुनिक समाज में परिवार (Family in Postmodern Society)

उत्तर आधुनिक समाज में पारिवारिक संरचना अविश्वसनीय रूप से विविध होती है और व्यक्तियों के पास अपने जीवन के उन पहलुओं में चुनाव की बहुत अधिक स्वतंत्रता होती है जो अतीत में अपेक्षाकृत सीमित थे जैसे कि जीवन शैली, व्यक्तिगत संबंध और पारिवारिक व्यवस्था। ऐसे समाज में, परिवार के सदस्य कानूनी विवाह, रक्त या गोद लेने से एक दूसरे से बंधे नहीं होते हैं। यह अवधारणा उन विविध रूपों का वर्णन करती है जिनमें परिवार की संस्था हो सकती है। यह परिवार की एक वैकल्पिक समझ सामने लाता है जिसके लिए पुरुष और महिला को अपने जैविक संतानों के साथ एक घर साझा करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसके विपरीत एक परिवार एक ही लिंग के दो व्यक्तियों के साथ भी बनाया जा सकता है, जो विवाह और प्रजनन के साथ घर साझा करते हैं। आधुनिक परिवार के निम्न अलग-अलग रूप हैं:

1. लिव-इन परिवार, या अविवाहित जोड़े जो एक ही घर में रहते हैं।
2. एकल-अभिभावक परिवार, जिसमें माता अथवा पिता और एक या अधिक जैविक या गोद लिए गए बच्चे होते हैं।
3. समान लिंग वाले परिवार, जिसमें समान लिंग के जोड़े और एक या अधिक जैविक या गोद लिए गए बच्चे होते हैं।
4. मिश्रित परिवार, दूसरे विवाह साथी और पिछली शादी से हुए बच्चों के साथ बना परिवार।

8.7 पारिवारिक सम्बंधों का महत्व तथा बाल विकास में इनकी भूमिका

परिवार का प्रकार चाहे जो भी हो, परिवार के सदस्य आपस में जुड़े रहते हैं तथा उनके सम्बंध आपस में बने रहते हैं। परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति जिम्मेदारियाँ निभाते हैं तथा आपस में एक दूसरे के काम आते हैं।

पारिवारिक संबंध् मज़बूत हों तो परिवार सुखी व सुरक्षित रहता है। पारिवारिक संबंध तभी मज़बूत होते हैं, जब:

- हर सदस्य परिवार के अन्य सदस्यों का आदर करे।
- हर सदस्य दूसरे के प्रति ज़िम्मेदारी निभाए।
- एक सदस्य दूसरे सदस्यों की भावनाओं को ठेस न पहुँचाए।
- सभी एक-दूसरे की मदद करें।
- लड़ने-झगड़ने के बजाय बातचीत द्वारा आपसी मनमुटाव दूर करें।

परिवार में अभिभावक की यह जिम्मेदारी होती है कि वे अपने बच्चों को उचित संस्कार दें। बच्चों के अच्छे भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि बच्चा स्वस्थ, शिक्षित, होनहार और समझदार बने। वह अच्छे संस्कार और अच्छी आदतें सीखे। जन्म से छ: वर्ष की आयु बहुत महत्वपूर्ण होती है। इस आयु में बच्चा जो सीखता है, वह जीवन-भर उसी पर चलता है। इसलिए इस दौरान उसे अच्छी आदतें और संस्कार सिखाने ज़रूरी हैं।

चूँकि परिवार वह पहला सामाजिक समूह है जिसके साथ कोई व्यक्ति बातचीत करता है, इसलिए इसका व्यक्ति के विकास और व्यवहार पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि अक्सर यह माना जाता है कि बच्चे के विकास पर परिवार का प्रभाव, या सीधे शब्दों में कहें तो, बच्चे के पालन-पोषण के तरीकों में परिवार की भूमिका बहुत बड़ी है।

1. मूल्यों का महत्व जानना

बच्चा अपने आस-पास जो कुछ भी देखता और सुनता है, उसे वह अपना लेता है। इसलिए यदि परिवार के सदस्य लोगों या समूहों का सम्मान करते हैं, तो बच्चे में भी इसी तरह के व्यवहार विकसित होने की संभावना होती है। दूसरी तरफ, यदि परिवार के सदस्य किसी के प्रति अनादरपूर्ण व्यवहार करते हैं, तो बच्चा भी उसे अपना लेगा। इसलिए अच्छे मूल्यों को सिखाने का सबसे अच्छा तरीका है कि इसे कम उम्र से ही शुरू कर दिया जाए। बच्चे तब बेहतर सीखते हैं जब वे

अपने कार्यों के परिणामों को समझते हैं। उन्हें समझाएँ कि अगर वे एक निश्चित तरीके से व्यवहार करते हैं तो क्या हो सकता है और अगर वे अलग तरीके से व्यवहार करते हैं तो उसके क्या परिणाम होंगे। इससे उनके लिए अच्छे विकल्प बनाने के महत्व को समझना आसान हो जाता है।

2. भावनात्मक विकास

भावनात्मक विकास बाल विकास के सबसे महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील पहलुओं में से एक है। यह एक व्यवहारिक पहलू भी है जहाँ परिवार अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार के सदस्यों से बच्चे को मिलने वाला अपनत्व और स्नेह उनके भावनात्मक कल्याण के लिए आवश्यक वातावरण बनाता है। इस तरह का समर्थन बच्चे के भीतर सुरक्षा और मूल्य की भावना को बढ़ावा देता है। एक प्यार करने वाला परिवार बच्चों को जीवन के उतार-चढ़ाव से निपटने के लिए ज़रूरी सहारा देता है, जिससे उनमें भावनात्मक लचीलापन विकसित होता है। यह गुण उन्हें जीवन भर प्रतिकूलताओं से निपटने में मदद करता है।

3. सामाजिक विकास

परिवार बच्चे का पहला सामाजिक समूह होता है, जिसका अर्थ है कि बच्चा जो कुछ भी सीखता है, वह अपने परिवार के सदस्यों को देखकर ही सीखता है। जो परिवार एक-दूसरे के साथ प्यार और सम्मान से पेश आते हैं, वे बच्चों के लिए एक सकारात्मक उदाहरण पेश करते हैं, जिससे उन्हें बेहतरीन सामाजिक कौशल और रिश्तों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में मदद मिलती है। भोजन साझा करना , साथ में टीवी देखना या परिवार के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताना जैसी सरल गतिविधियाँ बच्चे के सामाजिक विकास में बहुत योगदान दे सकती हैं और परिवार के महत्व को रेखांकित करती हैं। ये बातचीत बच्चों को यह सीखने में मदद करती है कि कैसे संवाद करना है, सहयोग करना है और दूसरों के साथ सार्थक संबंध बनाना है। बच्चे के सामाजिक विकास पर परिवार के प्रभाव को को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:

- **सामाजिक कौशल और मानदंड सीखना**

परिवार समाज के लघु रूप में कार्य करते हैं जहां बच्चे परस्पर बातचीत करना, साझा करना और सहानुभूति करना सीखते हैं। ये कौशल व्यापक सामाजिक संदर्भों में प्रदर्शित होते हैं।

- **संचार और भाषा विकास**

परिवार के सदस्यों के साथ मौखिक आदान-प्रदान भाषा कौशल को बढ़ावा देता है और संचार क्षमताओं को बढ़ाता है, जो स्वयं को अभिव्यक्त करने और दूसरों को समझने का एक महत्वपूर्ण मार्ग है।

- **सहकर्मी संपर्क और मित्रता**

दोस्ती के प्रति बच्चे का दृष्टिकोण अक्सर पारिवारिक संबंधों को दर्शाता है। सकारात्मक बातचीत से भरा पारिवारिक माहौल स्वस्थ सहकर्मी संबंधों को विकसित करने के लिए आधार तैयार करता है।

4. ज्ञान संबंधी विकास

एक बच्चे के समग्र विकास के लिए उसमें आवश्यक क्रियात्मक, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और भाषा कौशल विकसित होने चाहिए। माता-पिता अपने बच्चों के संज्ञानात्मक कौशल को बेहतर बनाने के लिए निम्न भूमिकाएं निभाते हैं:

- **बौद्धिक उत्तेजना**

  पारिवारिक खेल सिर्फ़ मनोरंजन का ही कार्य नहीं करते बल्कि बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए भी बहुत जरूरी हैं। बोर्ड गेम, पहेलियाँ या एक साथ मिलकर सामान्य कार्यों को करने के माध्यम से परिवार के सदस्यों के साथ जुड़ना बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह बच्चे की बौद्धिक जिज्ञासा को बढ़ाता है और एक जिज्ञासु मानसिकता विकसित करने में मदद करता है, जिससे आजीवन सीखने और अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त होता है।

- **कल्पना और रचनात्मकता**

  बचपन के खेल जैसे घर-घर के खेल, कल्पनात्मक कहानियाँ और उँगलियों से पेंट करके बनाई गई कृतियाँ बच्चों की कल्पना और रचनात्मकता विकास के लिए पोषक वातावरण हो सकते हैं। कल्पनाशील खेल, कलात्मक अभिव्यक्ति या बच्चे की जिज्ञासु प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करके परिवार बच्चों कुछ अलग सोचने में सक्षम बनाता है और महत्वपूर्ण समस्या-समाधान और आलोचनात्मक सोच क्षमताओं का निर्माण करता है जो उनके पूरे जीवन में उनके लिए उपयोगी साबित होते हैं।

5. नैतिक विकास

नैतिक दिशा-निर्देश जो एक बच्चे को जीवन भर मार्गदर्शन करते हैं, वह परिवार के भीतर ही निर्धारित होते हैं। बच्चे के नैतिक विकास में परिवार की भूमिका इस प्रकार है:

- **परिवार में सिखाए जाने वाले मूल्य और नैतिकता**

  भारतीय परिवार अक्सर मूल्यों को स्थापित करने का प्राथमिक स्रोत होते हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी ईमानदारी , निष्ठा और सम्मान के महत्व के बारे में शिक्षा देते हैं।

- **सहानुभूति और करुणा का विकास**

  परिवार के सदस्यों के बीच भावनात्मक आदान-प्रदान, जैसे कि बीमारी के दौरान एक-दूसरे की देखभाल करना, बच्चों को सहानुभूति और करुणा सिखाता है जो सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण गुण हैं।

- **सही और ग़लत को समझना**

  सुधार और मार्गदर्शन के माध्यम से पारिवारिक इकाइयाँ नैतिक सीमाओं को रेखांकित करने में मदद करती हैं, जिससे बच्चों को सही और गलत में अंतर करने में मदद मिलती है।

6. पहचान निर्माण

व्यक्तिगत पहचान, व्यक्तिपरक और विरासत दोनों के संदर्भ में, पारिवारिक पृष्ठभूमि से गहराई से प्रभावित होती है।

- **व्यक्तिगत पहचान के आधार के रूप में परिवार**

  बच्चे अक्सर अपने परिवार की संस्कृति, विश्वासों और प्रथाओं के माध्यम से स्वयं को परिभाषित करते हैं, जिससे उनकी समग्र पहचान के विकास का आधार तैयार होता है।

- **सांस्कृतिक और जातीय पहचान**

  भारत में जहां सांस्कृतिक और जातीय पहचान मजबूत है, परिवार बच्चों को भाषा, अनुष्ठान और रीति-रिवाज सिखाने का एक सशक्त माध्यम है।

- **आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास**

  परिवार बच्चे की प्रतिभा और प्रयासों को प्रोत्साहित करता है तथा एक स्वस्थ आत्म-छवि और बाहरी दुनिया का सामना करने के लिए आवश्यक आत्मविश्वास का विकास करता है।

7. शैक्षणिक सफलता

शिक्षा सामाजिक प्रगति का एक प्रमुख चालक है तथा बच्चे के शैक्षणिक पथ में परिवार के योगदान में इसकी गहरी जड़ें हैं।

- **सीखने के लिए सहायक वातावरण**

  शिक्षा को महत्व देने वाला घरेलू वातावरण बच्चे के शैक्षणिक प्रयासों के लिए उत्प्रेरक का काम करता है, अध्ययन के लिए एक शांत स्थान प्रदान करता है तथा महत्वपूर्ण समय के दौरान नैतिक समर्थन प्रदान करता है।

- **शैक्षिक अवसर और संसाधन**

  जो परिवार पुस्तकों, तकनीकी उपकरणों और पाठ्येतर गतिविधियों में निवेश करते हैं, वे बच्चे के सीखने के अनुभव को समृद्ध करते हैं तथा शैक्षणिक परिणामों को बढ़ाते हैं।

- **माता-पिता की भागीदारी का महत्व**

  स्कूल से संबंधित मामलों में माता-पिता की सक्रिय भागीदारी, जैसे अभिभावक-शिक्षक बैठकें और गृहकार्य, बच्चे की शैक्षणिक भागीदारी और सफलता में बहुत योगदान देती हैं।

8.8 पारिवारिक संरचना में परिवर्तन से बच्चों पर पड़ रहे प्रभाव

आधुनिक समय में परिवार की संरचना तथा प्रकारों में परिवर्तन हो रहा है। आधुनिकता, नगरीकरण और बढ़ते उपभोक्तावाद के कारण परिवार विघटित हो रहे हैं। संयुक्त परिवारों का विघटन कुछ सीमा तक पारिवारिक शक्ति को क्षीण कर रहा है। यद्यपि संयुक्त तथा एकल दोनों तरह के परिवारों के स्वयं के कुछ फायदे तथा नुकसान हैं। परिवार हमारी शक्ति और आंतरिक ऊर्जा का केंद्र है। परिवार से ही हमारे भीतर सद्गुणों का विकास होता है। बच्चों के विकास में परिवार का बहुत बड़ा योगदान होता है। बच्चे के आरम्भिक जीवन का निर्माण और विकास परिवार में ही होता है। वह परिवार में जन्म लेता है और उसी से उसको पहचान मिलती है तथा वह कई अच्छे बुरे लक्षणों को सीखता है। बच्चे पर प्रथम प्रभाव पारिवारिक वातावरण का ही पड़ता है। यदि पारिवारिक माहौल अच्छा है तो बच्चा तेजी के साथ मानसिक रूप से सबल होने लगता है। उसकी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षमता में सकारात्मक परिवर्तन देखा जा सकता है। इसके विपरीत यदि परिवार का माहौल ठीक न हो तो बच्चा टूटने लगता है। उसका विकास अवरुद्ध होने लगता है। वह मानसिक एवं बौद्धिक रूप से कमजोर होने लगता है। उसके स्वभाव में नकारात्मकता आने लगती है। वह उदिग्न रहने लगता है। कभी कभी वह हिंसक भी हो जाता है।

यदि बच्चा पारिवारिक स्नेह और शिक्षा से वंचित रह जाते हैं तो उन्हें पारिवारिक जिम्मेदारियों की शिक्षा नहीं मिल पाती है जिससे बड़े होकर वे पारिवारिक सम्बंधों की अहमियत को समझ नहीं पाते हैं। यह पारिवारिक संरचना पर भी निर्भर करता है कि बच्चा एकल परिवार का सदस्य है या संयुक्त परिवार का जहां उसे समाजीकृत करने में परिवार के अन्य सदस्यों की भी अहम् भूमिका होती है।

अतः परिवार की संरचना न केवल आरंभिक अनुभवों को प्रभावित करती है बल्कि सामाजिक अभिवृतियों एवं व्यवहारों के संरूपों के विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

वे बच्चे जिन्हें परिवार में स्वीकृति मिलती है वे बाहरी परिवेश से भी स्वीकृति की प्रत्याशा करते हैं। परंतु प्रत्याशा के अनुरूप बाहरी लोगों से व्यवहार न मिलने पर बालक आहत होता है। कभी-कभी उग्र भी हो जाता है। वे बच्चे जो घर के बाहर एवं अंदर अस्वीकृति पाते हैं, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के हो जाते हैं। वहीं यदि माता-पिता या परिवार के सदस्यों का प्रोत्साहन मिलता है तो बच्चों में बहिर्मुखता विकसित होता है। इस प्रकार बच्चा अनेक सामाजिक व्यवहारों को अर्जित करता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. निम्न वाक्यों हेतु एक शब्द दीजिए।

i. पति, पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों से बनी इकाई।
ii. दो या अधिक एकल परिवार होते हैं जो अभिभावक-बच्चों के संबंधों के विस्तार के माध्यम से जुड़े होते हैं।
iii. परिवार का एक प्रकार जिसमें सभी अधिकार पितृ पक्ष के पास होते हैं।
iv. ऐसा निवास जहाँ विवाह के बाद दम्पति पत्नी के परिवार के साथ रहने के लिए चले जाते हैं।
v. दूसरे विवाह साथी और पिछली शादी से हुए बच्चों के साथ बना परिवार।

8.9 सारांश

परिवार एक समूह और एक संस्था है, क्योंकि इसके कुछ आधारभूत कुछ नियम और प्रक्रियाएँ होती हैं। मानवविज्ञानी सह-निवास नियमों, अधिकार के पैटर्न, वंश, विवाह, संपत्ति और आपसी रिश्तों सहित विभिन्न आयामों के संदर्भ में परिवार का अध्ययन करते हैं। एक संस्था के रूप में इसकी स्थापना मनुष्य की आवश्यक जैविक और सामाजिक अनिवार्य आवश्यकताओं पर की गई। इसे समाज में सबसे बुनियादी और मौलिक इकाई माना जाता है और इसलिए मानव समाज में एक सार्वभौमिक समूह है। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा परिवार की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी गई हैं जैसे बर्गेस एवं लॉक के अनुसार "एक परिवार विवाह, रक्त सम्बंध अथवा गोद लेने के सम्बंधों से सम्बद्ध व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं और परस्पर पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री तथा भाई-बहन की अपनी सम्बंधित सामाजिक भूमिकाओं में एक दूसरे के साथ बातचीत और संवाद करते हैं तथा एक साझा संस्कृति का निर्माण करते हैं। परिवार की कई विशेषताएं होती हैं जो उसे एक विशिष्ट रूप प्रदान करती हैं। जैसे सार्वभौमिकता, पति-पत्नी के बीच स्थायी संबंध, यौन

संबंध, रक्त संबंधों का महत्व, वित्तीय और आर्थिक जिम्मेदारी का बंटवारा, साझा निवास तथा बातचीत और संचार की प्रणाली। परिवार के कुछ सामान्य कार्य हैं जैसे उत्पादन और उपभोग का संगठन, यौन आवश्यकताओं की संतुष्टि, प्रजन, बच्चों का समाजीकरण, संपत्ति हस्तांतरण, सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करना, मनोवैज्ञानिक कार्य, सामाजिक नियंत्रण, धार्मिक कार्य एवं मनोरंजनात्मक कार्य। समाजशास्त्रियों और मानवविज्ञानियों ने विभिन्न संस्कृतियों में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के परिवारों का उल्लेख किया है तथा विभिन्न आधारों पर परिवार के प्रकारों को बताया गया है। उन्होंने संगठन, अधिकार, निवास तथा आधुनिकता के आधार पर परिवारको विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया है। इसके अतिरिक्त उत्तर आधुनिक समाज में परिवार के मायनों में कितना परिवर्तनआया है इसके विषय में भी इस अध्याय में चर्चा की गई है। परिवार में अभिभावक की यह जिम्मेदारी होती है कि वे अपने बच्चों को उचित संस्कार दें। बच्चों के अच्छे भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि बच्चा स्वस्थ, शिक्षित, होनहार और समझदार बने। वह अच्छे संस्कार और अच्छी आदतें सीखे। परिवार के द्वारा ही बच्चा जीवन में कई अच्छी तथा बुरी आदतों को सीखता है। उपभोक्तावाद के कारण परिवार विघटित हो रहे हैं। संयुक्त परिवारों का विघटन कुछ सीमा तक पारिवारिक शक्ति को क्षीण कर रहा है। यद्यपि संयुक्त तथा एकल दोनों तरह के परिवारों के स्वयं के कुछ फायदे तथा नुकसान हैं। परिवार हमारी शक्ति और आंतरिक ऊर्जा का केंद्र है। परिवार से ही हमारे भीतर सद्गुणों का विकास होता है। बच्चों के विकास में परिवार का बहुत बड़ा योगदान होता है। बच्चे के आरम्भिक जीवन का निर्माण और विकास परिवार में ही होता है। यदि बच्चा पारिवारिक स्नेह और शिक्षा से वंचित रह जाते हैं तो उन्हें पारिवारिक जिम्मेदारियों की शिक्षा नहीं मिल पाती है जिससे बड़े होकर वे पारिवारिक सम्बंधों की अहमियत को समझ नहीं पाते हैं। यह पारिवारिक संरचना पर भी निर्भर करता है कि बच्चा एकल परिवार का सदस्य है या संयुक्त परिवार का जहां उसे समाजीकृत करने में परिवार के अन्य सदस्यों की भी अहम् भूमिका होती है। अतः परिवार की संरचना न केवल आरंभिक अनुभवों को प्रभावित करती है बल्कि सामाजिक अभिवृतियों एवं व्यवहारों के संरूपों के विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

8.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **परिवार (Family):** एक सामाजिक समूह जिसमें समान निवास, आर्थिक सहयोग और प्रजनन की विशेषता होती है।
- **समाजीकरण (Socialization):** एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति समाज के मानदंडों, मूल्यों, रीति-रिवाजों और व्यवहारों को सीखता है और उन्हें अपनाता है।

- **नैतिकता (Ethics):** यह नैतिक सिद्धांतों की एक प्रणाली है जो समाज और संस्कृति के द्वारा निर्धारित मूल्यों और सिद्धांतों पर आधारित होती है, जो लोगों को सही और गलत के बीच अंतर करने में मदद करते हैं।
- **संयुक्त परिवार (Joint Family):** भाई-बहनों, उनके जीवनसाथी और उनके आश्रित बच्चों के समूह से मिलकर बनी इकाई।
- **रचनात्मकता (Creativity):** किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से संबद्ध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया।

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   i. फ़ैमिलिया
   ii. सार्वभौमिकता
   iii. मनोवैज्ञानिक
   iv. जैविक प्रजनन

अभ्यास प्रश्न 2

1. निम्न वाक्यों हेतु एक शब्द दीजिए।
   i. एकल परिवार
   ii. विस्तारित परिवार
   iii. पितृसत्तात्मक परिवार
   iv. मातृस्थानीय परिवार
   v. मिश्रित परिवार

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गृह प्रबंध। डॉ0 मंजु पाटनीएवं डॉ0 ललिता शर्मा। स्टार पब्लिकेशन, आगरा।
2. बाल विकास। डॉ0 नीता अग्रवाल। अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

3. Parkin, R., & Stone, L. (Ed.). (2003). Kinship and family: An anthropological reader. Oxford: Blackwell.
4. Shah, A.M., 1998, 'Changes in the Indian Family: An Examination of Some Assumptions', in The Family in India: Critical Essays, New Delhi: Orient Longman.

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. परिवार को परिभाषित कीजिए। परिवार की विशेषताओं की चर्चा कीजिए।
2. परिवार के कार्यों पर प्रकाश डालिए।
3. परिवार के प्रकारों का विस्तृत उल्लेख कीजिए।
4. परिवार के प्रकार एवं पारिवारिक सम्बंधों की बाल विकास क्या भूमिका है? विस्तृत व्याख्या कीजिए।

इकाई 9: प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल हेतु नीतियाँ एवं कार्यक्रम

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 प्रारंभिक बाल्यावस्था के वर्ष
9.4 बाल्यावस्था के शुरुआती वर्षों में सेवा प्रावधान के प्रकार
9.5 ई सी सी ई कार्यक्रमों के लाभ
9.6 भारत में ईसीसीई: कुछ नीतियां और कानून
9.7 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020
9.8 निपुण भारत, 2021
9.9 विद्या प्रवेश, 2022
9.10 सारांश
9.11 पारिभाषिक शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

आपने कई बार 'प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल', 'प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा', 'प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा' तथा 'प्रारंभिक बचपन विकास' जैसे शब्दों का इस्तेमाल सुना होगा। आपने सोचा होगा कि इनका वास्तव में क्या मतलब है? इनका महत्व क्या है? प्रारंभिक? कितना प्रारंभिक है? यह इकाई ऐसे प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित करेगी और भारत में छोटे बच्चों के लिए सेवा प्रावधान की रूपरेखा तैयार करेगी। इसके अलावा, प्रारंभिक बचपन और आधारभूत चरण शिक्षा के क्षेत्र में एक पेशेवर के रूप में, भारत में बच्चों के लिए देखभाल और शिक्षा सेवाओं से संबंधित अच्छी समझ होना महत्वपूर्ण है।

वर्तमान इकाई आपको प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के विकास और भारत में क्रियान्वित नीतिगत ढाँचों के बारे में जानकारी देगी, जिसमें विविधता और समावेशन के संबंध में हाल की नीतियों और पाठ्यक्रम ढाँचों के दृष्टिकोण पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्न कार्य कर सकेंगे:

• प्रारंभिक बाल्यावस्था के वर्षों के दौरान सेवा प्रावधान के प्रकारों का वर्णन और उनमें अंतर कर सकेंगे;

• प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ECCE) कार्यक्रमों के लाभों की व्याख्या कर सकेंगे;

• ECCE नीतियों और कार्यक्रमों की चर्चा कर सकेंगे।

9.3 प्रारंभिक बाल्यावस्था के वर्ष

'प्रारंभिक बाल्यावस्था' को जन्म से आठ वर्ष की अवधि के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस अवधि को निम्न प्रकार से तीन उप-चरणों में विभाजित किया जाता है: क) जन्म से तीन वर्ष: इसमें विकास के चरणों के संदर्भ में शैशवावस्था और बाल अवस्था की अवधि शामिल है। ख) तीन से छह वर्ष: इस अवधि को आम तौर पर 'पूर्वस्कूली वर्ष' कहा जाता है क्योंकि बच्चे इन वर्षों के दौरान प्रीस्कूल/प्री-प्राइमरी कार्यक्रम में भाग लेते हैं। ग) छह से आठ वर्ष: ये वे वर्ष हैं जब बच्चे औपचारिक स्कूल प्रणाली में प्रारंभिक प्राथमिक कक्षाओं (ग्रेड I और II) में भाग लेते हैं। जन्म से आठ वर्ष की इस अवधि में सीखना और विकास भविष्य के विकास और सीखने की नींव रखता है। यदि बच्चों को किसी भी उप-अवस्था में इष्टतम देखभाल और सीखने के अवसर नहीं मिलते हैं, तो उनकी विकासात्मक क्षमता में भारी कमी आती है, और अक्सर अपरिवर्तनीय होती है। पिछले दो दशकों में 6-8 वर्ष की उप-अवस्था को 'प्रारंभिक बाल्यावस्था' में शामिल किया गया है क्योंकि तीन से छह वर्ष और छह से आठ वर्ष की अवधि के बीच विकासात्मक निरंतरता की पहचान की गई है।

9.4 बाल्यावस्था के शुरुआती वर्षों में सेवा प्रावधान के प्रकार

'सेवा प्रावधान' शब्द से हमारा तात्पर्य विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं से है जो छोटे बच्चों को स्वास्थ्य, पोषण, सुरक्षा, प्रारंभिक उत्तेजना और शिक्षा सेवाएँ प्रदान करते हैं। प्रारंभिक बचपन के दौरान बच्चों के लिए कार्यक्रमों के अलग-अलग नाम और अलग-अलग उद्देश्य होते हैं, जो किसी विशेष कार्यक्रम के फोकस पर निर्भर करते हैं। आइए छोटे बच्चों के लिए इन विभिन्न प्रकार के सेवा प्रावधानों का अध्ययन करें;

क) प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा (ईसीई)

ईसीई के कार्यक्रम बच्चे की प्रारंभिक सीखने की प्रक्रिया से संबंधित हैं, और शुरुआती वर्षों में 'शिक्षा' घटक पर ध्यान केंद्रित करते हैं। ईसीई एक शब्द है जिसका उपयोग 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जो शिक्षण-अधिगम के लिए खेल और गतिविधि-आधारित दृष्टिकोणों पर आधारित होते हैं। ये पूर्वस्कूली शिक्षा कार्यक्रम (जिन्हें पूर्व-प्राथमिक शिक्षा या प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के रूप में भी जाना जाता है) आमतौर पर भारत में नर्सरी, आंगनवाड़ी केंद्रों, किंडरगार्टन, बालवाड़ी और स्कूलों के पूर्व-प्राथमिक वर्गों के माध्यम से प्रदान किए जाते हैं।

ख) प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल (ईसीसी)

ये कार्यक्रम 'देखभाल' घटक प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जहाँ 'देखभाल' शब्द का अर्थ बच्चे के स्वास्थ्य, पोषण और स्वच्छता की ज़रूरतों को पूरा करने पर ध्यान केंद्रित करना है। इसके अंतर्गत कामकाजी महिलाओं के बच्चों के लिए देखभाल की वैकल्पिक व्यवस्था ;जैसे क्रेच आदि के लिए किया जाता है।

ग) प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई)

ये कार्यक्रम ईसीई या ईसीसी कार्यक्रमों की तुलना में समग्र हैं। ये जन्म से छह वर्ष की आयु के बच्चों को सेवाएँ प्रदान करते हैं और बच्चे के विकास के सभी पहलुओं - शारीरिक, मानसिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावनात्मक, भाषा और रचनात्मकता को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। ये कार्यक्रम बच्चे की स्वास्थ्य और पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करके समग्र विकास को बढ़ावा देते हैं, साथ ही एक प्यार करने वाले, देखभाल करने वाले और उत्तरदायी देखभालकर्ता के साथ बातचीत के माध्यम से उत्तेजना, खेल, सीखने और शिक्षा की ज़रूरतों को पूरा करते हैं। शारीरिक देखभाल, उत्तेजना, प्यार और पोषण के लिए बच्चे की ज़रूरतों को विकासात्मक मानदंडों के साथ पूरा किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में विकास विशेष रूप से प्रारंभिक बाल्यावस्था के वर्षों में अत्यधिक परस्पर संबंधित है - दूसरे शब्दों में, एक क्षेत्र में विकास अन्य सभी क्षेत्रों में विकास को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है।

ईसीसीई कार्यक्रम न केवल जन्म से छह वर्ष की अवधि के दौरान बच्चों को सेवाएं प्रदान करते हैं, बल्कि वे गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य और पोषण सेवाएं भी प्रदान करते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि गर्भाधान से जन्म तक की अवधि अजन्मे बच्चे के विकास के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि जन्म के बाद की अवधि। स्वस्थ बच्चे के जन्म को सुनिश्चित करने के लिए माँ के अच्छे स्वास्थ्य पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है।

घ) प्रारंभिक बाल्यावस्था विकास (ईसीडी)

जबकि ईसीसीई प्रारंभिक बाल्यावस्था के वर्षों के दौरान इष्टतम विकास सुनिश्चित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण है, क्योंकि ईसीसीई कार्यक्रम विकास के सभी क्षेत्रों में एकीकृत तरीके से बच्चे की जरूरतों को पूरा करते हैं, एक अधिक व्यापक दृष्टिकोण 'प्रारंभिक बाल्यावस्था विकास' (ईसीडी) या 'प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और विकास' (ईसीसीडी) है।

9.5 ईसीसीई कार्यक्रमों के लाभ

ईसीसीई कार्यक्रमों के निम्नलिखित लाभों को दुनिया भर में स्वीकार किया गया है;

i. ईसीसीई कार्यक्रम बच्चों के समग्र विकास को सुनिश्चित करते हैं

ईसीसीई के बच्चों के शुरुआती मस्तिष्क विकास के संबंध में महत्वपूर्ण लाभ हैं और इस प्रकार, उनकी सीखने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। ईसीसीई कार्यक्रम 0-6 वर्ष की आयु के बच्चों को पोषण संबंधी पूरकता और उचित उत्तेजना प्रदान करते हैं।

ii. ईसीसीई कार्यक्रम बच्चों को औपचारिक स्कूली शिक्षा के लिए तैयार करते हैं

ईसीसीई कार्यक्रम बच्चों के लिए स्कूल की तैयारी कार्यक्रम के रूप में कार्य करते हैं। ये कार्यक्रम बच्चों की संज्ञानात्मक क्षमताओं, सकल और सूक्ष्म मोटर कौशल, भाषा कौशल में सुधार करके और उनके सामाजिक-भावनात्मक विकास को बढ़ाकर उनके समग्र विकास के लिए प्रदान करते हैं। ये कार्यक्रम बच्चों में कई योग्यताएँ विकसित करते हैं जो उन्हें औपचारिक स्कूली शिक्षा के लिए तैयार करती हैं।

iii. ईसीसीई कार्यक्रम सामाजिक और लैंगिक असमानताओं को पाटने में मदद करते हैं

ईसीसीई कार्यक्रम निम्न एसईएस परिवारों से संबंधित बच्चों को उचित पोषण और उत्तेजना अनुभव प्रदान करते हैं और उनके समग्र विकास को बढ़ावा देते हैं। ये कार्यक्रम लैंगिक असमानताओं को कम करने में भी मदद करते हैं। निम्न एसईएस परिवारों में लड़कियों पर अक्सर घर पर अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने की जिम्मेदारी होती है, जबकि उनकी माँएँ जीविकोपार्जन के लिए बाहर जाती हैं। इससे वे स्कूल नहीं जा पाती हैं, जबकि उनके पुरुष भाई-बहनों को स्कूल जाने में किसी तरह की पाबंदी का सामना नहीं करना पड़ता है। ईसीसीई कार्यक्रम, यदि क्षेत्र में संचालित हो रहा है, तो दिन के एक बड़े हिस्से में छोटे बच्चों की देखभाल करता है, खासकर स्कूल के समय के

दौरान। इससे बड़ी लड़कियाँ नियमित रूप से स्कूल जा पाती हैं क्योंकि उन्हें अपने छोटे भाई-बहनों को ईसीसीई केंद्र में रखने का अवसर मिलता है।

iv. ईसीसीई कार्यक्रमों में निवेश से उच्च रिटर्न मिलता है

ईसीसीई कार्यक्रमों में निवेश करके, सरकार बड़े पैमाने पर पैसे बचा सकती है जो अन्यथा कुपोषित बच्चों या जन्मजात विकृतियों वाले बच्चों की स्थिति सुधारने के लिए विशेष सेवाएँ प्रदान करने या स्कूल छोड़ने वाले बच्चों को विशेष शिक्षा प्रदान करने पर खर्च किए जाते। ईसीसीई में शुरुआती निवेश बाद में सार्वजनिक कल्याण व्यय की आवश्यकता को कम कर सकता है और राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर ग्रेड पुनरावृत्ति, किशोर अपराध और नशीली दवाओं के दुरुपयोग से जुड़ी वित्तीय और सामाजिक लागतों को कम कर सकता है।

उपर्युक्त लाभों के संदर्भ में, दुनिया भर के साथ-साथ हमारे देश में भी ईसीसीई कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें लागू करने के प्रयास कई गुना बढ़ गए हैं।

अभ्यास प्रश्न 1.

1. 'प्रारंभिक बाल्यावस्था' की अवधि को परिभाषित कीजिये।
2. ईसीसीई कार्यक्रमों के कोई चार लाभ बताइए।

9.6 भारत में ईसीसीई: कुछ नीतियां और कानून

इस अनुभाग में, आप वर्ष 1947 से शुरू होने वाले देश में युवा बच्चों के लिए कुछ महत्वपूर्ण नीतियों और कानूनों के बारे में जानेंगे। यह अनुभाग आपको वर्षों के दौरान प्रारंभिक वर्षों की शिक्षा और बाल विकास से निपटने वाले नीतिगत ढाँचों के इतिहास का पता लगाने में मदद करेगा।

1. बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति, (1974/2013)

1974 में तैयार की गई बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति ने बच्चों को राष्ट्र की सर्वोच्च संपत्ति घोषित किया। नीति ने इस बात पर जोर दिया कि बच्चों के कार्यक्रमों को सभी राष्ट्रीय योजनाओं में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इस नीति के उद्देश्य थे:

• बच्चों को जन्म से पहले और बाद में तथा विकास की अवधि के दौरान पर्याप्त सेवाएँ प्रदान करना;

• उनका पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास सुनिश्चित करना; और

• ऐसी सेवाओं के दायरे को उत्तरोत्तर बढ़ाना ताकि उचित समय के भीतर देश के सभी बच्चे अपने संतुलित विकास के लिए इष्टतम परिस्थितियों का आनंद उठा सकें।

देश भर में बच्चों के लिए कार्यक्रमों और योजनाओं के कार्यान्वयन में मदद करने के लिए राष्ट्रीय बाल नीति, 1974 को वर्ष 2013 में संशोधित किया गया था। बच्चों के लिए यह नई राष्ट्रीय नीति 26 अप्रैल 2013 को अपनाई गई थी। यह नीति देश के सभी बच्चों के अधिकारों की प्राप्ति के लिए सरकार की प्रतिबद्धता की पुष्टि करती है और जीवन रक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, विकास, संरक्षण और भागीदारी को प्रत्येक बच्चे के निर्विवाद अधिकारों के रूप में पहचानती है और इन्हें प्रमुख प्राथमिकता वाले क्षेत्र घोषित करती है। नीति में यह माना गया है कि:

• अठारह वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति बच्चा है,

• बचपन जीवन का एक अभिन्न अंग है जिसका अपना मूल्य है,

• बच्चे एक समरूप समूह नहीं हैं और उनकी अलग-अलग ज़रूरतों के लिए अलग-अलग प्रतिक्रियाओं की ज़रूरत होती है, खासकर बच्चों द्वारा अलग-अलग परिस्थितियों में अनुभव की जाने वाली बहुआयामी कमज़ोरियों के लिए,

• बच्चों के समग्र और सामंजस्यपूर्ण विकास और सुरक्षा के लिए दीर्घकालिक, टिकाऊ, बहु-क्षेत्रीय, एकीकृत और समावेशी दृष्टिकोण आवश्यक है।

2. एकीकृत बाल विकास सेवा योजना, 1975

राष्ट्रीय बाल नीति, 1974 के परिणामों में से एक, एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS) योजना 1975 का शुभारंभ था। इस योजना का उद्देश्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को पूरक पोषण और अनौपचारिक पूर्वस्कूली शिक्षा सहित एकीकृत देखभाल प्रदान करना था। कार्यक्रम ने बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने के लिए जीवन चक्र दृष्टिकोण का पालन किया और सेवाओं का एक पैकेज उपलब्ध कराया जिसमें निम्नलिखित शामिल थे:

• छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए स्वास्थ्य और पोषण,

• 3 से 6 वर्ष के बच्चों के लिए पूर्वस्कूली शिक्षा

• गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए पोषण और स्वास्थ्य सेवाएँ, और किशोर लड़कियों के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ।

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986/92)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) 1986 और इसकी कार्ययोजना (पीओए) 1992 महत्वपूर्ण नीतिगत हस्तक्षेप हैं, जिन्होंने बाल-केंद्रित दृष्टिकोण के साथ प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) पर प्रकाश डाला। यह ईसीसीई की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाला पहला नीति दस्तावेज था। इसने प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के लिए एक विशेष अध्याय समर्पित किया। इसने ईसीसीई को मानव विकास के लिए एक महत्वपूर्ण इनपुट के रूप में परिभाषित किया और ईसीसीई को "प्राथमिक शिक्षा और मानव संसाधन विकास के लिए एक फीडर और एक मजबूत कारक दोनों के रूप में देखा।" इसने पोषण, स्वास्थ्य और सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक और भावनात्मक विकास को समग्र विकास के रूप में मान्यता दी और बाल-उन्मुख ईसीई कार्यक्रमों पर जोर दिया। नीति ने प्रारंभिक बचपन के वर्षों के दौरान शिक्षण के माध्यम के रूप में खेल को बढ़ावा दिया।

4. राष्ट्रीय पोषण नीति, 1993

राष्ट्रीय पोषण नीति (एनएनपी) 1993 में आई थी जिसका उद्देश्य कुपोषण को कम करना और देश के लोगों की पोषण स्थिति में सुधार करना था। इसमें 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को उच्च जोखिम वाला समूह माना गया और कहा गया कि सभी राष्ट्रीय योजनाओं और कार्यक्रमों में बच्चों को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

5. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफ) को एनसीईआरटी द्वारा 2005 में प्रकाशित किया गया था। पाठ्यक्रम ने स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण प्रथाओं के लिए एक दिशानिर्देश के रूप में कार्य किया। इसने शुरुआती वर्षों के दौरान खेल-आधारित विकासात्मक रूप से उपयुक्त पाठ्यक्रम की वकालत की। एनसीएफ 2005 ने शिक्षा की पहली सीढ़ी के रूप में 2 साल की पूर्वस्कूली शिक्षा पर जोर दिया और छोटे बच्चों के विकास के लिए ईसीसीई को एक महत्वपूर्ण इनपुट के रूप में मान्यता दी, लेकिन प्रारंभिक बचपन के वर्षों की औपचारिक मान्यता एनईपी, 2020 और एनसीएफएफएस, 2022 के साथ आई, जिनकी चर्चा क्रमशः अनुभाग 4.7 और अनुभाग 4.10 में की गई है।

6. सर्व शिक्षा अभियान

भारत के संविधान के 86वें संशोधन ने 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया और प्रीस्कूल शिक्षा पर जोर दिया। परिणामस्वरूप सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) वर्ष 2001-2002 में शुरू किया गया। एसएसए भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना है। इसे प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण (यूईई) के रूप में भी जाना जाता है।

सर्व शिक्षा अभियान के मुख्य उद्देश्य नीचे दिए गए हैं:

• 2003 तक सभी बच्चों को स्कूल भेजना।

• 2007 तक सभी बच्चों को पाँच वर्ष की प्राथमिक स्कूली शिक्षा पूरी करनी होगी।

• 2010 तक सभी बच्चों को आठ वर्ष की प्राथमिक स्कूली शिक्षा पूरी करनी होगी।

• जीवन के लिए शिक्षा पर जोर देते हुए संतोषजनक गुणवत्ता वाली प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना।

• 2007 तक प्राथमिक स्तर पर और 2010 तक प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर सभी लिंग और सामाजिक श्रेणी के अंतर को समाप्त करना।

• 2010 तक सार्वभौमिक प्रतिधारण।

7. राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा नीति, 2013

प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक विकास बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति का संशोधन और 2013 में एक नई राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा नीति को अपनाना था। यह छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए देश की पहली नीति थी। राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ईसीसीई) नीति, 2013 का उद्देश्य छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के समग्र विकास को बढ़ावा देना था। नीति में छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के बीच इष्टतम सीखने और विकास के लिए समान, समावेशी और प्रासंगिक अवसर प्रदान करने की परिकल्पना की गई है। यह नीति सार्वजनिक, निजी और स्वैच्छिक क्षेत्रों में सभी ईसीसीई सेवाओं के लिए प्रासंगिक और लागू है।

नीति ने तीन उप-चरणों में ईसीसीई सेवाओं को मान्यता दी और उनकी अवधारणा बनाई:

क) गर्भाधान से जन्म तक - इसमें माँ की प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर स्वास्थ्य और पोषण संबंधी देखभाल, मातृ परामर्श, सुरक्षित प्रसव, बाल संरक्षण सहित मातृत्व अधिकार और गैर-भेदभाव शामिल हैं।

ख) जन्म से तीन वर्ष की आयु तक - इस उप-चरण में सुरक्षा, सक्रिय वातावरण, स्वास्थ्य देखभाल, पोषण, माँ या अन्य वयस्कों से लगाव और घर और उपयुक्त बाल देखभाल केंद्रों में मनोसामाजिक उत्तेजना के लिए सेवाएँ शामिल हैं।

ग) तीन से छह वर्ष की आयु - इस उप-चरण में स्वास्थ्य देखभाल, सुरक्षा, पोषण, वयस्क के साथ स्वस्थ लगाव, विकासात्मक रूप से उपयुक्त पूर्वस्कूली शिक्षा जो स्कूल के लिए तत्परता की ओर ले जाती है, से संबंधित सेवाएँ शामिल हैं।

यह नीति समानता और समावेश के साथ सार्वभौमिक पहुँच पर विशेष जोर देती है। यह विशेष रूप से कमजोर और हाशिए पर पड़े बच्चों और विकलांग बच्चों के समावेश पर जोर देती है

8. राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2014

राष्ट्रीय ईसीसीई पाठ्यक्रम रूपरेखा (एन ई सी सी ई सी एफ) को 2014 में शुरू किया गया था, जिसका उद्देश्य सभी छोटे बच्चों के इष्टतम सीखने और विकास को बढ़ावा देने वाली प्रथाओं के लिए दिशानिर्देश प्रदान करके प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में गुणवत्ता और उत्कृष्टता को बढ़ावा देना था। इस पाठ्यक्रम रूपरेखा में विस्तृत पाठ्यक्रम प्रदान नहीं किया गया था जो कि निर्देशात्मक हो और छोटे बच्चों को 'प्रदान' किया जाए। इसके बजाय, इसने बाल पालन प्रथाओं और प्रासंगिक ईसीसीई आवश्यकताओं में विविधता का सम्मान करते हुए सामान्य सिद्धांत और विकासात्मक कार्य निर्धारित किए। एनईसीसीईसीएफ ने प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के निम्नलिखित तीन पहलुओं पर विस्तार से बताया –

क) प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के उद्देश्य तथा इसके शैक्षणिक आधार और प्रारंभिक शिक्षा के सिद्धांत निर्धारित किये।

ख) विकास के विभिन्न क्षेत्रों में लक्ष्य अर्थात् शारीरिक, भाषाई, संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक और रचनात्मक और सौंदर्य संबंधी प्रशंसा आदि में बच्चों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों का समग्र विकास सुनिश्चित किया जा सके।

ग) कार्यक्रम नियोजन के वर्णित सिद्धांत, कार्यक्रम नियोजन के चरण, माता-पिता और देखभाल करने वालों/ईसीसीई शिक्षकों की भूमिका, आवश्यक खेल सामग्री और मूल्यांकन प्रक्रिया।

9.7 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020

प्रारंभिक वर्षों के महत्व को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी), 2020 ने औपचारिक रूप से 3 से 8 वर्ष की आयु को 'आधारभूत चरण' के रूप में स्वीकार किया है। पिछली नीतियों ने भी प्रीस्कूल वर्षों के महत्व को मान्यता दी है; हालाँकि, यह पहली बार है कि प्रीस्कूल शिक्षा को औपचारिक रूप से सीखने की अवधि के रूप में माना गया है। इसका मतलब है कि प्रीस्कूल शिक्षा के तीन साल जिन्हें पहले शैक्षिक सीढ़ी में पहला कदम नहीं माना जाता था, उन्हें इसका उचित महत्व और मान्यता दी गई है। कक्षा 1 और 2 जिसे अब तक औपचारिक शिक्षा की शुरुआत माना जाता था, उसे प्रीस्कूल वर्षों के साथ जोड़ दिया गया है और 3 से 8 साल की इस अवधि को अकादमिक पढ़ने, लिखने और संख्यात्मक कौशल के विकास के लिए एक आधारभूत अवधि के रूप में संदर्भित किया जाता है, इस प्रकार, आजीवन सीखने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है। शिक्षा का आधारभूत चरण 5 वर्ष का होता है, तथा इसमें दो उप-चरण शामिल होते हैं:

क) प्रीस्कूल/आंगनवाड़ी/बालवाटिका (3-6 वर्ष)

ख) कक्षा 1 और 2 (6-8 वर्ष)

एनईपी, 2020 का मुख्य लक्ष्य पूरे देश में उच्च गुणवत्ता वाली ई सी सी ई तक सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करना है, जिसमें सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित जिलों और स्थानों पर विशेष ध्यान दिया गया है। ईसीसीई को समस्त जन तक निम्न माध्यमों द्वारा पहुँचाया जा सकता है:

क) एकल आंगनवाड़ी;

ख) प्राथमिक विद्यालयों के साथ सह-स्थित आंगनवाड़ी;

ग) मौजूदा प्राथमिक विद्यालयों के साथ सह-स्थित पूर्व-प्राथमिक अनुभाग;

घ) एकल पूर्व-विद्यालय।

इस प्रकार, एनईपी, 2020 प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) का एक मजबूत आधार बनाता है, जिसका उद्देश्य प्रारंभिक वर्षों से ही बेहतर समग्र शिक्षा, विकास और कल्याण को बढ़ावा देना है।

9.8 निपुण भारत, 2021

प्रारंभिक शिक्षा के महत्व को पहचानते हुए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि "हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता 2026-27 तक प्राथमिक विद्यालयों में सार्वभौमिक आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता प्राप्त करना होनी चाहिए।

समझ और संख्यात्मकता के साथ पढ़ने में दक्षता के लिए राष्ट्रीय पहल (निपुण भारत), 2021 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा एक नीति दस्तावेज विकसित किया गया है जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि देश का प्रत्येक बच्चा 2026-27 तक आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता प्राप्त कर ले।

क) लक्ष्य 1 - बच्चे अच्छे स्वास्थ्य और कल्याण को बनाए रखें

ख) लक्ष्य 2 - बच्चे प्रभावी संचारक बनें

ग) लक्ष्य 3 - बच्चे शिक्षार्थीयों में शामिल हों और अपने तत्काल वातावरण से जुड़ें

इस प्रकार, यह समग्रता की मांग करता है और प्रारंभिक वर्षों से ही बच्चों की शिक्षा का एकीकृत विकास करता है।

9.9 विद्या प्रवेश, 2022

जैसा कि इस इकाई में पहले उल्लेख किया गया है, एनईपी 2020 में उन बच्चों के लिए एक प्रारंभिक मॉड्यूल की परिकल्पना की गई थी जो प्रीस्कूल शिक्षा तक पहुँच पाने में सक्षम नहीं थे। इस उद्देश्य से, एनसीईआरटी ने ग्रेड-1 में प्रवेश करने वाले बच्चों की शिक्षा का समर्थन करने के लिए तीन महीने का 'खेल-आधारित स्कूल तैयारी मॉड्यूल' विद्या प्रवेश विकसित किया। विद्या प्रवेश मॉड्यूल को ग्रेड 1 के सत्र की शुरुआत में तीन महीने या 12 सप्ताह के लिए लागू किया जाना है।

अभ्यास प्रश्न 2.

1. भारत में ईसीसीई से सम्बंधित किन्हीं तीन नीतियां और कानून का वर्णन कीजिये।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पर चर्चा कीजिए।

9.10 सारांश

इस इकाई में, आपने राष्ट्रीय नीतियों और प्रावधानों के संदर्भ में भारत में ECCE के संबंध में स्थिति के बारे में पढ़ा। स्वतंत्रता के बाद, सरकार ने बच्चों के कल्याण के लिए अधिक जिम्मेदारी संभाली।

विभिन्न प्रयासों, कई कार्यक्रमों और नीतियों जैसे ICDS, राष्ट्रीय ECCE नीति आदि के माध्यम से, ECCE में सरकार की भूमिका पिछले कुछ वर्षों में बढ़ी है। वर्ष 2020 में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) ने औपचारिक रूप से 3 से 8 वर्ष की आयु वर्ग को 'आधारभूत चरण' के रूप में स्वीकार किया, जिसमें तीन साल की पूर्वस्कूली शिक्षा को महत्व दिया गया। यह पहली बार है कि पूर्वस्कूली शिक्षा को औपचारिक रूप से सीखने की अवधि के रूप में माना गया है। 2021 में, शिक्षा मंत्रालय द्वारा NIPUN भारत नीति दस्तावेज़ लॉन्च किया गया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश का हर बच्चा 2026-27 तक मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता प्राप्त कर ले। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) की सिफारिशों के अनुसार, NCERT ने ग्रेड-I में प्रवेश करने वाले बच्चों की शिक्षा का समर्थन करने के लिए तीन महीने का 'प्ले-बेस्ड स्कूल तैयारी मॉड्यूल' भी लॉन्च किया।

9.11 पारिभाषिक शब्दावली

NEP- राष्ट्रीय शिक्षा नीति

ECCE-प्राम्भिक बाल्यावस्था में देखभाल एवं शिक्षा

SSA- सर्व शिक्षा अभियान

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. बिंदु 9.3 देखें

2. बिंदु 9.5 देखें

अभ्यास प्रश्न 2.

1.बिंदु 9.6 देखें

2. बिंदु 9.7 देखें

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(2021). National initiative for proficiency in reading with understanding and numeracy nipun bharat (A National Mission on Foundational Literacy and Numeracy) guidelines for implementation. Government of India. Retrieved

from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nipun_bharat_eng1.pdf

• Department of Women & Child Development, Ministry of Human Resource Development. (1993). National nutrition policy. Government of India. Retrieved from https://icds.gov.in/sites/default/files/policiesdocument/National_Nutrition_Policy.pdf

• Indira Gandhi National Open University. (2024). Curriculum and Pedagogy for early years and foundational stage education: Part 1. School of continuing education, IGNOU.

• Ministry of Human Resource Development. (n.d.). National Education Policy 2020. Government of India. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

• Ministry of Women and Child Development. (2013). National early childhood care and education (ecce) policy. Government of India. Retrieved from https://www.nitiforstates.gov.in/public-assets/Policy/policy_files/PNC503P000013.pdf

• Ministry of Women and Child Development. (n.d.). Quality standards for early childhood care and education (ecce). Government of India. Retrieved from https://www.scribd.com/document/471257056/Quality-Standards-for-ECCE-INDIA-pdf

• National Council of Educational Research and Training. (2005). National curriculum framework. New Delhi. Retrieved from https://ncert.nic.in/pdf/nc-framework/nf2005-english.pdf

• National Council of Educational Research and Training. (2022). National curriculum framework for foundational stage. Retrieved from https://ncert.nic.in/pdf/NCF_for_Foundational_Stage_20_October_2022.pdf

• National Council of Educational Research and Training. (2022). Vidya Pravesh Three-month Play-based School Preparation Module for Grade-I.

Publication Division, NCERT, New Delhi. Retrieved from https://ncert.nic.in/pdf/vidyapravesh.pdf

• National Institute for Public Cooperation and Child Development. (2024). Navchetana national framework for early childhood stimulation for children from birth to three years. Government of India. Retrieved from https://drive.google.com/file/d/1ucOk_x8wITTFuymbE0-khfR4I38VGSOn/view

• National Institute for Public Cooperation and Child Development. (2024). Aadharshila national curriculum for early childhood care and education for children from three to six years. Government of India. Retrieved from https://drive.google.com/file/d/1eUkr9XC7z1Sjy6mvoA5aMfF9xNGyqXRR/view

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा के महत्व पर चर्चा कीजिए।

2. प्राम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा से सम्बंधित क़ानून एवं नीतियों पर चर्चा कीजिए।

खंड IV

बाल मार्गदर्शन, मनोवैज्ञानिक समायोजन और बच्चे का असामाजिक व्यवहार

इकाई 10: पालन-पोषण की विभिन्न शैलियाँ तथा बच्चों पर उनके प्रभाव

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 पालन-पोषण के मुख्य दृष्टिकोण
10.4 पारंपरिक पालन-पोषण
10.5 बाल पालन-पोषण की विभिन्न शैलियाँ
10.6 बाल पालन-पोषण के आधुनिक दृष्टिकोण
10.7 आधुनिक युग में पालन-पोषण सम्बंधी चुनौतियाँ
10.8 भारत में बच्चों के पालन-पोषण सम्बंधी प्रथाएं
10.9 सारांश
10.10 पारिभाषिक शब्दावली
10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.13 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

बच्चे का पालन-पोषण या पेरेंटिंग (Parenting) एक कला है जिसके बिना किसी भी बच्चे का विकास अधूरा होता है। पेरेंटिंग उस कला का नाम है, जिसमें अभिभावक बच्चे की सेहत से लेकर उसकी सुरक्षा का ध्यान रखते हैं। साथ ही उन्हें एक जिम्मेदार, संस्कारी और परिपक्व वयस्क बनाते हैं। बच्चे के इसी विकास के लिए जिन पालन-पोषण तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है, उसे पेरेंटिंग स्टाइल अथवा पालन-पोषण शैली कहा जाता है। पेरेंटिंग में शिशु अवस्था से लेकर वयस्क अवस्था तक बच्चे के विकास और वृद्धि में पोषण, मार्गदर्शन और सहायता करना शामिल है। इसमें बच्चों की देखभाल प्रदान करना, आवश्यक जीवन कौशल सिखाना और उनको समाज में उनकी भावी भूमिकाओं के लिए तैयार करना भी शामिल है। माता-पिता की पेरेंटिंग शैली से यह तय होता है कि बच्चे के विकास की दिशा क्या होगी। पालन-पोषण की शैली यह तय करती है कि बच्चा अपने बारे में कैसा महसूस करता है। यह सुनिश्चित करना जरुरी है कि अभिभावक की पेरेंटिंग शैली बच्चे के विकास का समर्थन करे। माता-पिता जिस तरह से अपने बच्चे के साथ बातचीत करते हैं,

उसे अनुशासित करते हैं, यह उसके पूरे जीवन को प्रभावित करता है। बच्चों के जीवन के प्रथम शिक्षक उनके मां-बाप होते हैं, इसलिए पेरेंटिंग स्टाइल बच्चे के भावी जीवन को आकार देता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी;

- बाल पालन के विभिन्न दृष्टिकोणों को जानेंगे;
- पालन पोषण की विभिन्न परम्परागत एवं आधुनिक शैलियों को समझ पाएंगे तथा बच्चों पर इन शैलियों के होने वाले प्रभावों के बारे में जानेंगे;
- आधुनिक युग में पालन-पोषण सम्बंधी चुनौतियाँ को जान पाएंगे।

10.3 पालन-पोषण के मुख्य दृष्टिकोण

पालन-पोषण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें बच्चे की व्यक्तिगत ज़रूरतों को समझना और उन ज़रूरतों को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनाना शामिल है। यह सीखने, विकास और आजीवन जुड़ाव की यात्रा है। बच्चों के पालन-पोषण के कई पक्ष हैं। ये पक्ष निरंतर अनुशासन और पोषण वातावरण के साथ, बच्चे के विकास और सकारात्मक परिणामों में योगदान करते हैं।

पालन-पोषण के प्रमुख पहलुओं में प्यार प्रदान करना, स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित करना, खुले संचार को बढ़ावा देना, प्रभावी ढंग से संवाद करना, स्वस्थ व्यवहार का उदाहरण प्रस्तुत करना और कार्यों के परिणाम सुनिश्चित करते हुए स्वतंत्रता को बढ़ावा देना शामिल है। प्रभावी पालन-पोषण में निरंतरता, करुणा, तनाव प्रबंधन और चुनौतियों के साथ तालमेल बिठाने की क्षमता का निर्माण तथा एक सुरक्षित और पोषण करने वाला वातावरण बनाना भी शामिल है।

1. प्यार और स्नेह

बच्चों को प्यार और समर्थन की आवश्यकता होती है, जिससे उनमें सुरक्षा और कल्याण की भावना पैदा हो।

2. स्पष्ट सीमाएँ

अपेक्षाएं और सीमाएं निर्धारित करने से बच्चों को यह समझने में मदद मिलती है कि स्वीकार्य व्यवहार क्या है और इससे संरचना भी मिलती है।

3. प्रभावी संचार

माता-पिता को अपने बच्चों के साथ खुलकर और ईमानदारी से बातचीत करनी चाहिए, उनकी चिंताओं को सुनना चाहिए और मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।

4. स्वस्थ व्यवहार का प्रतिमान बनाना

बच्चे अपने माता-पिता के व्यवहार को देखकर सीखते हैं। इसलिए माता-पिता को सम्मान, ईमानदारी और दयालुता जैसे सकारात्मक गुणों का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

5. स्वतंत्रता को बढ़ावा देना

माता-पिता को अपने बच्चों को उम्र के अनुसार जिम्मेदारियां लेने और चुनाव करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे उनमें स्वायत्तता की भावना विकसित हो सके।

6. कार्यों के परिणाम

जब बच्चे गलतियाँ करते हैं, तो माता-पिता को उन्हें उनके कार्यों के परिणामों को समझने में मदद करनी चाहिए और उन्हें गलतियों से सीखने की प्रेरणा देनी चाहिए।

7. स्थिरता

अपेक्षाओं और अनुशासन में निरंतरता बनाए रखने से बच्चों को यह समझने में मदद मिलती है कि उनसे क्या अपेक्षित है और इससे भ्रम की स्थिति नहीं उत्पन्न होती है।

8. करुणा

बच्चों के प्रति समझदारी और सहानुभूति रखना, भले ही वे गलत व्यवहार करें, माता-पिता और बच्चों के बीच मजबूत संबंध बनाने में मदद करता है।

9. तनाव प्रबंधन

माता-पिता की अपने तनाव को स्वयं प्रबंधित करने की क्षमता का उनके बच्चों के हित और चुनौतियों से निपटने की उनकी क्षमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

10. अनुकूलनशीलता

प्रभावी माता-पिता अपने बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनके विकास के साथ अपने दृष्टिकोण को बदलने में सक्षम होते हैं।

इन प्रमुख पहलुओं को शामिल करके, माता-पिता एक सकारात्मक और सहायक वातावरण बना सकते हैं जो उनके बच्चों को आगे बढ़ने में मदद करता है।

10.4 पारंपरिक पालन-पोषण (Traditional Parenting)

पारंपरिक बाल-पालन पद्धतियां मजबूत पारिवारिक संबंधों, बड़ों के प्रति सम्मान और सांस्कृतिक परंपराओं पर जोर देती हैं। वे प्रायः अनुशासन और आज्ञाकारिता पर ध्यान देते हैं, तथा माता-पिता अधिकार-संपन्न व्यक्ति और आदर्श व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं। ये विधियां शैक्षणिक उपलब्धियों और कैरियर संबंधी आकांक्षाओं को प्राथमिकता देती हैं, साथ ही सामुदायिकता और साझा जिम्मेदारी की भावना को भी बढ़ावा देती हैं।

पारंपरिक पालन-पोषण के मुख्य दृष्टिकोण

1. आज्ञाकारिता पर जोर

बच्चों को बिना किसी सवाल के नियमों और निर्देशों का पालन करना सिखाया जाता है, अक्सर अवज्ञा के लिए दंड पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

2. सबल पारिवारिक मूल्य

पारंपरिक प्रथाओं में अक्सर पारिवारिक निष्ठा, बड़ों के प्रति सम्मान और स्थापित सामाजिक मानदंडों के पालन को प्राथमिकता दी जाती है।

3. सामुदायिक भागीदारी

बच्चों का पालन-पोषण अक्सर एक सामूहिक प्रयास होता है, जिसमें परिवार और समुदाय के सदस्य बच्चों को मार्गदर्शन और सहायता देने में भूमिका निभाते हैं।

4. व्यावहारिक कौशल और शिक्षा

बच्चों को अक्सर अपने समुदाय में जीवित रहने और सफलता के लिए आवश्यक व्यावहारिक कौशल और ज्ञान सिखाया जाता है।

5. अनुशासन पर जोर

नियमों और व्यवहार को लागू करने के लिए अक्सर शारीरिक दंड या कठोर अनुशासन का प्रयोग किया जाता है।

10.5 बाल पालन-पोषण की विभिन्न शैलियाँ

शोधकर्ताओं ने पालन-पोषण शैलियों और इन शैलियों का बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों के बीच ठोस संबंध का पता लगाया है। 1960 के दशक की शुरुआत में, मनोवैज्ञानिक डायना बॉमरिंड ने 100 से ज़्यादा शालापूर्व आयु के बच्चों पर एक अध्ययन किया। प्राकृतिक अवलोकन, माता-पिता के साक्षात्कार और अन्य शोध विधियों का उपयोग करते हुए, उन्होंने पेरेंटिंग के चार महत्वपूर्ण आयामों की पहचान की:

- अनुशासनात्मक रणनीतियाँ
- लगाव और स्नेहपूर्ण देखभाल
- संचार शैली
- परिपक्वता और नियंत्रण की अपेक्षाएँ

इन आयामों के आधार पर, बॉमरिंड ने सुझाव दिया कि अधिकतर माता-पिता ऊपर बताई गई पेरेंटिंग शैलियों में से एक को प्रदर्शित करते हैं।

पालन-पोषण की चार शैलियाँ हैं - सत्तावादी, अधिकारपूर्ण, अनुमोदक और असंबद्ध शैलियाँ। आइए इनके बारे में विस्तारपूर्वक जानें।

1. सत्तावादी पाल-पोषण (Authoritarian parenting)

इस तरह के पालन-पोषण में बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे माता-पिता द्वारा स्थापित सख्त नियमों का पालन करें। ऐसे नियमों का पालन न करने पर आमतौर पर उन्हें सज़ा दी जाती है। यह सख्त पालन-पोषण भी कहा जाता है। इस तरह के पालन-पोषण की विशेषताएं हैं बच्चों का सभी कार्य माता-पिता के नियमों और निर्देशों के अनुरूपकरना तथा और उनकी पालन की उच्च अपेक्षाएँ। इस तरह के पेरेंटिंग में माता-पिता और बच्चे के बीच बहुत कम खुली बातचीत की अनुमति होती है।

सत्तावादी पालन-पोषण एक प्रतिबंधात्मक, दंडात्मक शैली है जिसमें माता-पिता बच्चे पर उनके निर्देशों का पालन करने और उनके काम और प्रयास का सम्मान करने का दबाव डालते हैं। बॉमरिंड के अनुसार, ये माता-पिता "आज्ञाकारिता और प्रतिष्ठा उन्मुख होते हैं और बिना किसी स्पष्टीकरण के बच्चों द्वारा उनके आदेशों का पालन किए जाने की अपेक्षा करते हैं"।

सत्तावादी पाल-पोषण शैली का बच्चों पर प्रभाव

- **निम्न आत्मसम्मान:** सत्तावादी माता-पिता द्वारा पाले गए बच्चे अपने आत्मसम्मान के साथ संघर्ष करते हैं। लगातार आलोचना और स्वायत्तता की कमी उन्हें खुद पर संदेह करने पर विवश कर सकती है।
- **सामाजिक चुनौतियाँ:** ऐसे बच्चों को अपने साथियों के साथ बातचीत करने में संघर्ष करना पड़ता है। वे स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने या समझौता करने के आदी नहीं होते हैं, जिससे सामाजिक रूप से कभी-कभी असामान्य स्थिति पैदा हो सकती है।
- **विद्रोह:** अक्सर देखा गया है कि सत्तावादी माता-पिता के बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं, वे इन कठोर नियमों के खिलाफ विद्रोह कर सकते हैं, जिससे उनके और उनके माता-पिता के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

2. अधिकारपूर्ण पालन-पोषण (Authoritative Parenting)

सत्तावादी माता-पिता की तरह, अधिकारपूर्ण पालन-पोषण शैली का पालन करने वाले माता-पिता नियम और दिशा-निर्देश निर्धारित करते हैं जिनका पालन उनके बच्चों से अपेक्षित होता है। हालाँकि, इस पालन-पोषण शैली में माता-पिता अपने बच्चों के प्रति उत्तरदायी होते हैं और सवालों को सुनने के लिए तैयार रहते हैं। जब बच्चे उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने में विफल होते हैं, तो ये माता-पिता दंड देने के बजाय स्नेह और क्षमा में विश्वास करते हैं।

बॉमरिंड के अनुसार ये माता-पिता "अपने बच्चों के आचरण की निगरानी करते हैं और उनके लिए स्पष्ट मानक निर्धारित करते हैं। वे दृढ़ निश्चयी होते हैं, लेकिन दखलंदाज़ी और प्रतिबंधात्मक नहीं होते। उनके अनुशासनात्मक तरीके दंडात्मक के बजाय सहायक होते हैं। वे चाहते हैं कि उनके बच्चे दृढ़ निश्चयी होने के साथ-साथ सामाजिक रूप से ज़िम्मेदार हों, और आत्म-विनियमित होने के साथ-साथ सहयोगी भी हों"।

अधिकारपूर्ण पाल-पोषण शैली का बच्चों पर प्रभाव

- **आत्मविश्वास:** इस शैली में पलने वाले बच्चों में आत्मविश्वास अधिक होता है। उन्हें खुद को अभिव्यक्त करने, सवाल पूछने और उचित सीमाओं के भीतर चुनाव करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
- **मिलनसार:** ये बच्चे अक्सर सामाजिक परिवेश में मिलनसार होते हैं। वे संघर्षों से निपटना, दूसरों का सहयोग करना और सहानुभूति तथा सामूहिक कार्यों के महत्व को समझना सीखते हैं।

- **स्वतंत्रता:** अधिकारपूर्ण पालन-पोषण स्वतंत्रता की नींव रखता है। बच्चे निर्णय लेना और समस्याओं को हल करना सीखते हैं, जो उन्हें वयस्कता की जिम्मेदारियों के लिए तैयार करता है।

3. अनुमोदक पालन-पोषण (Permissive Parenting)

अनुमोदक माता-पिता, जिन्हें कभी-कभी अनुग्रहशील माता-पिता भी कहा जाता है, अपने बच्चों से बहुत कम मांग करते हैं। ये माता-पिता विरले ही अपने बच्चों को अनुशासित करते हैं क्योंकि उनमें परिपक्वता और आत्म-नियंत्रण की अपेक्षाएँ कम होती हैं। बॉमरिंड के अनुसार, अनुमोदक माता-पिता "मांग करने की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी होते हैं। वे अपरंपरागत और उदार होते हैं, उन्हें परिपक्व व्यवहार की आवश्यकता नहीं होती, आत्म-नियमन की अनुमति देते हैं और सामना करने से बचते हैं"। ऐसे माता-पिता आम तौर पर अपने बच्चों के साथ स्नेह और संवाद करते हैं और अक्सर बच्चों के साथ माता-पिता से अधिक एक दोस्त की भूमिका निभाते हैं। इस तरह के पालन-पोषण को उदार पालन कहा जा सकता है।

अनुमोदक पाल-पोषण शैली का बच्चों पर प्रभाव

- **अनुशासन की कमी:** ऐसे बच्चों को सीमाओं और उनके कार्यों के परिणामों को समझने में मदद की आवश्यकता हो सकती है। इससे व्यवहार संबंधी समस्याएं और नियमों का पालन करने में कठिनाई हो सकती है।
- **अधिकार संबंधी मुद्दे:** अनुमोदक शैली के साथ बड़े होने से बच्चों में अधिकार की भावना पैदा हो सकती है। वे यह उम्मीद करने लगते हैं कि हमेशा उनकी बात मानी जाएगी।
- **शैक्षणिक चुनौतियाँ:** घर पर संरचना की कमी बच्चे के शैक्षणिक प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है। मार्गदर्शन के बिना, उन्हें अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई हो सकती है।

4. असंबद्ध पालन-पोषण (Uninvolved Parenting)

असंबद्ध पेरेंटिंग तब होती है जब अक्सर व्यक्तिगत मुद्दों या उपेक्षा के कारण माता-पिता भावनात्मक रूप से अपने बच्चे के जीवन से दूर हो जाते हैं। कम अपेक्षाएं, कम प्रतिक्रिया और कम संचार असंबद्ध पेरेंटिंग शैली की विशेषताएं हैं। जबकि ये माता-पिता बच्चे की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करते हैं, वे आम तौर पर अपने बच्चे के जीवन से अलग हो जाते हैं। गम्भीर मामलों में ये माता-पिता अपने बच्चों की ज़रूरतों को अस्वीकार या अनदेखा भी कर सकते हैं। इस तरह की पालन शैली को उपेक्षापूर्ण पेरेंटिंग भी कहा जाता है।

माता-पिता बच्चों से न तो कोई मांग करते हैं और न ही अनुक्रियाशील होते हैं। माता-पिता में बच्चों के प्रति स्नेह और नियंत्रण की कमी होती है, वे आम तौर पर अपने बच्चे के जीवन में शामिल नहीं होते हैं। वे असंबद्ध, अप्रतिबंधित, कम प्रतिक्रियात्मक होते हैं और सीमाएँ निर्धारित नहीं करते हैं। माता-पिता भावनात्मक रूप से अपने बच्चों का समर्थन नहीं करते हैं।

असंबद्ध पाल-पोषण शैली का बच्चों पर प्रभाव

- **भावनात्मक तनाव:** माता-पिता की अनदेखी से पले-बढ़े बच्चों को भावनात्मक तनावों का सामना करना पड़ता है। वे उपेक्षित और अप्रभावित महसूस करते हैं, जिसका स्थायी मनोवैज्ञानिक प्रभाव हो सकता है।
- **निम्न आत्म-सम्मान:** माता-पिता से कम भावनात्मक समर्थन पाने के कारण इन बच्चों में आत्म-सम्मान की कमी देखी जाती है जिससे उन्हें समाज में स्वस्थ संबंध बनाने में कठिनाई हो सकती है।
- **जोखिम भरा व्यवहार:** ऐसे बच्चे जीवन में दिशाहीनता का अनुभव करते हैं। मार्गदर्शन और सीमाओं की कमी जोखिम भरे व्यवहार और खराब निर्णय लेने की ओर ले जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

i. ..... मजबूत पारिवारिक संबंधों, बड़ों के प्रति सम्मान और सांस्कृतिक परंपराओं पर जोर देती हैं।

ii. 1960 के दशक की शुरुआत में, मनोवैज्ञानिक ..... ने पेरेंटिंग के चार महत्वपूर्ण आयामों की पहचान की।

iii. ..... में पले बच्चों में निम्न आत्मसम्मान तथा स्वायत्तता की कमी देखी जाती है।

iv. ..... विरले ही अपने बच्चों को अनुशासित करते हैं क्योंकि उनमें परिपक्वता और आत्म-नियंत्रण की अपेक्षाएँ कम होती हैं।

v. ..... तब होती है जब अक्सर व्यक्तिगत मुद्दों या उपेक्षा के कारण माता-पिता भावनात्मक रूप से अपने बच्चे के जीवन से दूर हो जाते हैं।

10.6 बाल पालन-पोषण के आधुनिक दृष्टिकोण

1. लगाव पालन-पोषण (Attachment Parenting)

लगाव पेरेंटिंग माता-पिता और उनके बच्चों के बीच मजबूत भावनात्मक बंधन बनाने से सम्बंधित है। इसकी निम्न मुख्य विशेषताएं हैं:

- अनुक्रियाशील देखभाल: माता-पिता अपने बच्चे की ज़रूरतों पर तुरंत प्रतिक्रिया देते हैं, चाहे वह भूख हो, आराम हो या भावनात्मक समर्थन हो।
- सह शयन: इस तरह की पालन शैली में बच्चे माता-पिता के साथ सोते हैं जिससे उन्हें अधिक जुड़ाव महसूस होता है।
- सकारात्मक अनुशासन: अनुशासन के तरीके सज़ा देने के बजाय सिखाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं तथा सहानुभूति और समझ पर ज़ोर देते हैं।

लगाव पालन-पोषण का बच्चों पर प्रभाव

इस प्रकार की पेरेंटिंग के बच्चों पर निम्न सकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं:

- सुरक्षित लगाव: बच्चे अक्सर अपने माता-पिता में सुरक्षा और विश्वास की एक मजबूत भावना विकसित करते हैं, जिससे वयस्कता में स्वस्थ संबंध बनते हैं।
- भावनात्मक बुद्धिमत्ता: वे अपनी भावनाओं के साथ अधिक तालमेल रखते हैं और खुद को बेहतर तरीके से व्यक्त करते हैं।
- स्वतंत्रता: प्रगाढ़ लगाव के साथ पले-बढ़े बच्चे अक्सर अधिक स्वतंत्र होते हैं, क्योंकि वे अपने आसपास की दुनिया की खोज करने में सुरक्षित महसूस करते हैं।

2. हेलीकॉप्टर पालन-पोषण (Helicopter Parenting)

हेलीकॉप्टर पेरेंटिंग में बच्चे पर मंडराते रहना, उन पर लगातार निगरानी रखना और उनके जीवन में अत्यधिक हस्तक्षेप करना शामिल है। इस तरह के पालन की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:

- **निरंतर पर्यवेक्षण:** माता-पिता अपने बच्चे की ऑनलाइन और ऑफ़लाइन गतिविधियों पर बारीकी से नज़र रखते हैं।
- **अत्यधिक सहायता:** वे अपने बच्चे की समस्याओं में हस्तक्षेप करते हैं, कभी-कभी वे अपने बच्चों के ऐसे काम भी करते हैं जिन्हें बच्चे को स्वतंत्र रूप से करना चाहिए।
- **उच्च अपेक्षाएँ:** हेलीकॉप्टर शैली के माता-पिता अक्सर अपने बच्चों के लिए उच्च शैक्षणिक और पाठ्येतर उपलब्धि मानक निर्धारित करते हैं।

हेलीकॉप्टर पालन-पोषण का बच्चों पर प्रभाव

हेलीकॉप्टर माता-पिता के मन्तव्य भले ही अच्छे हों, लेकिन उनके दृष्टिकोण का बच्चों पर मिश्रित प्रभाव हो सकता है, जिसमें निम्न शामिल हैं:

- **निर्भरता:** बच्चे माता-पिता के हस्तक्षेप के आदी होने के कारण स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने या समस्याओं को हल करने में संघर्ष कर सकते हैं।
- **चिंता:** निरंतर निगरानी और उच्च अपेक्षाएँ बच्चों में तनाव और असफलता के डर को जन्म दे सकती हैं।
- **सीमित अनुकूलनशीलता:** ऐसे बच्चों को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना चुनौतीपूर्ण लग सकता है क्योंकि उन्हें अपनी गलतियों से सीखने का मौका नहीं मिलता है। इसलिए वो किसी भी विषम स्थिति में आसानी से समायोजित नहीं हो पाते हैं।

3. मुक्त श्रेणी पालन-पोषण (Free-Range Parenting)

ये पालन शैली बच्चों में स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करती है। इसकी मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:

- **बिना निगरानी के खेल:** ऐसी पालन शैली में बच्चे वयस्कों की निरंतर निगरानी के बिना खेलते हैं और अन्वेषण कर सकते हैं।
- **जोखिम उठाना:** माता-पिता बच्चों को दृढ़ बनाने और जोखिम लेने हेतु आवश्यक जीवन कौशल सिखाने में विश्वास करते हैं।
- **जिम्मेदारी:** बच्चों को अपनी आयु के अनुसार जिम्मेदारियाँ और विकल्प चुनने के अवसर दिए जाते हैं।

बच्चों पर मुक्त श्रेणी पालन-पोषण का प्रभाव

फ्री-रेंज पेरेंटिंग का बच्चों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव हो सकता है, जिसमें शामिल हैं:

- **स्वतंत्रता:** बच्चे अपनी क्षमताओं में अधिक आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बन जाते हैं।
- **जोखिम जागरूकता:** उनमें जोखिम और सुरक्षित विकल्प चुनने के तरीके की बेहतर समझ विकसित होती है।
- **सुरक्षा संबंधी चिंताएँ:** बिना निगरानी के खेलने से दुर्घटनाएँ हो सकती हैं, जिससे सुरक्षा एक प्राथमिक चिंता बन जाती है।

4. सचेत पालन-पोषण (Mindful Parenting)

सचेत पालन का मतलब है हर क्षण अपने बच्चे की भावनाओं और आवश्यकताओं के प्रति पूरी तरह से मौजूद रहना और उनका ख्याल रखना। मुख्य विशेषताओं में शामिल हैं:

- **सक्रिय श्रवण:** माता-पिता बच्चों की बातें ध्यान से सुनते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि बच्चे को सुने और समझे जाने की अनुभूति हो।
- **गैर-निर्णयात्मक जागरूकता:** भावनाओं और विचारों को सही या गलत अंकित किए बिना उन्हें पहचानना और स्वीकार करना।
- **भावनात्मक विनियमन:** माता-पिता अपनी भावनाओं को नियंत्रित करते हैं, चुनौतीपूर्ण स्थितियों में आवेगपूर्ण प्रतिक्रियाओं से बचते हैं।
- **सहानुभूति और समझ:** चुनौतीपूर्ण होने पर भी बच्चे की भावनाओं पर करुणा और समझ के साथ प्रतिक्रिया करना।

बच्चों पर सचेत पालन-पोषण का प्रभाव

इस तरह के पालन के बच्चों पर निम्न प्रभाव हो सकते हैं:

- **व्यग्रता में कमी:** बच्चे सुरक्षित और समझे जाने का अनुभव करते हैं, जिससे चिंता और तनाव कम होता है।
- **भावनात्मक विनियमन में सुधार:** बच्चे अपनी भावनाओं को पहचानना और उन्हें प्रभावी ढंग से प्रबंधित करना सीखते हैं।
- **माता-पिता और बच्चे के बीच मज़बूत संबंध:** पालन-पोषण की सचेत प्रकृति माता-पिता और बच्चे के बीच भावनात्मक संबंध को मज़बूत बनाती है।
- **समस्या-समाधान कौशल में वृद्धि:** माता-पिता द्वारा निर्देशित होने पर बच्चे संघर्षों को सुलझाने और चुनौतियों का सामना करने में बेहतर हो जाते हैं, जो परिस्थितियों का ध्यानपूर्वक सामना करते हैं।

10.7 आधुनिक युग में पालन-पोषण सम्बंधी चुनौतियाँ

1. स्क्रीन टाइम का प्रबंधन

प्रौद्योगिकी हमारे जीवन में एक बड़ी भूमिका निभाती है, लेकिन बहुत ज़्यादा स्क्रीन टाइम आपके बच्चे के साथ आपके रिश्ते को बाधित कर सकता है। घर के कुछ क्षेत्रों को स्क्रीन-मुक्त बनाएँ, सभी को खेलने के लिए बाहर ले जाएँ, और अच्छी डिजिटल आदतें बनाने में मदद करने के लिए वे क्या देख रहे हैं, इस पर नज़र रखें।

2. काम और परिवार को संतुलित करना

बहुत से माता-पिता को काम और परिवार के समय को संतुलित करना मुश्किल लगता है। अपने बच्चे के साथ समय बिताने के लिए हर दिन कुछ समय निकालना सुनिश्चित करें, भले ही यह थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो।

3. सहकर्मियों के दबाव से निपटना

बच्चे स्कूल और सामाजिक परिस्थितियों में साथियों के दबाव का सामना करते हैं। उन्हें दिखाएँ कि वे अपनी पसंद कैसे बनाएँ और जिस पर वे विश्वास करते हैं, उस पर टिके रहें। साथियों के दबाव के बारे में माता-पिता बच्चों से खुलकर बात करें।

4. स्वस्थ आदतों को बढ़ावा देना

अच्छा खाना, सक्रिय रहना और पर्याप्त नींद लेना महत्वपूर्ण है। अपने बच्चों को खाना पकाने, घर के कार्यों और बाहरी गतिविधियों में शामिल करें ताकि साथ मिलकर एक स्वस्थ जीवनशैली बनाने में मदद मिल सके।

10.8 भारत में बच्चों के पालन-पोषण सम्बंधी प्रथाएं

भारत में बाल पालन की प्रथाएँ परंपरा और आधुनिकता का एक समृद्ध मिश्रण हैं, जो पारिवारिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्यों से गहराई से प्रभावित हैं। जैसे-जैसे भारत विकसित हो रहा है, ये प्रथाएँ भी अनुकूलित हो रही हैं, जो भारतीय समाज की गतिशील प्रकृति को दर्शाती हैं।

भारतीय संस्कृति में बच्चों के पालन-पोषण से जुड़ी मान्यताएँ और प्रथाएँ प्राचीन परंपराओं, धार्मिक शिक्षाओं और आधुनिक प्रभावों का एक आकर्षक मिश्रण हैं। भारत, अपनी विशाल सांस्कृतिक विविधता के लिए जाना जाता है, यहाँ बच्चों के पालन-पोषण से जुड़ी प्रथाओं की एक अनूठी परंपरा है जो विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों और समुदायों में काफी भिन्न है। यह विविधता पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक मानदंडों के प्रति दृढ़ पालन पर आधारित है जो पीढ़ियों से चली आ रही हैं।

बच्चों के पालन-पोषण के लिए भारतीय दृष्टिकोण का केंद्र परिवार की अवधारणा है, जो अक्सर विस्तारित और बहु-पीढ़ीगत होती है। यह पारिवारिक संरचना बच्चों के पालन-पोषण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो माता-पिता, दादा-दादी और अन्य रिश्तेदारों को शामिल करते हुए एक सहायक संरचना प्रदान करती है। इस संरचना के भीतर, बच्चों को अपने बड़ों का सम्मान और आदर करना सिखाया जाता है, एक ऐसा मूल्य जो भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने में गहराई से समाया हुआ है।

भारत में बच्चों के पालन-पोषण में धर्म भी अहम भूमिका निभाता है। भारत में अनुसरित विभिन्न धर्म जैसे हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म, सिख धर्म और अन्य धर्म दैनिक प्रथाओं, अनुष्ठानों और नैतिक शिक्षाओं को प्रभावित करते हैं। ये धार्मिक प्रभाव अक्सर सांस्कृतिक परंपराओं के साथ जुड़े होते हैं और विभिन्न संस्कारों, त्योहारों और दैनिक दिनचर्या में प्रकट होते हैं जो बच्चे के विकास के अभिन्न अंग हैं।

शिक्षा भारतीय संस्कृति में बच्चों के पालन-पोषण की एक और आधारशिला है। पालन-पोषण के भारतीय दृष्टिकोण में शैक्षणिक सफलता और बौद्धिक विकास पर बहुत ज़ोर दिया जाता है, जो अक्सर इस धारणा से प्रेरित होता है कि शिक्षा बेहतर भविष्य का मार्ग है। शैक्षणिक शिक्षा के साथ-साथ, कहानियों और सांस्कृतिक कथाओं के माध्यम से नीतिपरक शिक्षाएँ दी जाती हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि बच्चे सही और गलत की गहरी समझ के साथ बड़े हों।

लिंग भूमिकाएँ हालाँकि भारतीय परिवेश में पारंपरिक रूप से अलग-अलग थीं परंतु समकालीन भारतीय समाज में यह विकसित हो रही हैं। परम्परागत रूप से, लड़कों और लड़कियों को विशिष्ट अपेक्षाओं और भूमिकाओं के साथ पाला जाता था। हालाँकि, पालन-पोषण में आधुनिक प्रभाव अधिक समतावादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं जो दोनों लिंगों के लिए समान अवसरों को प्रोत्साहित करते हैं।

भारत में अनुशासन और पालन-पोषण की शैली आम तौर पर एक आधिकारिक दृष्टिकोण को दर्शाती है, जो उच्च अपेक्षाओं को समर्थन और भागीदारी के साथ संतुलित करती है। बच्चे की भलाई सर्वोपरि होती है, स्वास्थ्य प्रथाओं में अक्सर आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों के साथ-साथ आयुर्वेद और योग जैसी पारंपरिक पद्धतियों को भी शामिल किया जाता है। त्यौहार और सामुदायिक गतिविधियाँ बच्चों के समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा उन्हें समुदाय, सहयोग और सांस्कृतिक विरासत का महत्व सिखाती हैं। ये कार्यक्रम बच्चों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने और एक सहायक वातावरण में सामाजिक कौशल विकसित करने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं।

भारत में बच्चों का पालन-पोषण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो विभिन्न सांस्कृतिक और प्रासंगिक कारकों से प्रभावित होती है। ये सभी कारक सामाजिक व्यवस्था में गहराई से समाए हुए हैं और बच्चों के पालन-पोषण को महत्वपूर्ण तरीकों से आकार देते हैं। भारत में बच्चों के पालन-पोषण के सांस्कृतिक और प्रासंगिक पहलू भी एक समृद्ध और जटिल प्रक्रिया है जो असंख्य सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक कारकों से प्रभावित होती है। ये प्रासंगिक तत्व बच्चों के पालन-पोषण की शैलियों को आकार देते हैं, उनके विकास के लिए आवश्यक मूल्य, परंपराएँ और कौशल

प्रदान करते हैं। जैसे-जैसे हम आधुनिक भारत की तरफ बढ़ रहे हैं, ये प्रथाएँ विकसित हो रही हैं तथा पारंपरिक मूल्यों को समकालीन आवश्यकताओं और वैश्विक प्रभावों के साथ संतुलित कर रही हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताइए।

i. सह शयन लगाव पेरेंटिंग की एक मुख्य विशेषता है।
ii. हेलीकॉप्टर पेरेंटिंग में माता-पिता बच्चों पर लगातार निगरानी रखते हैं और उनके जीवन में अत्यधिक हस्तक्षेप करते हैं।
iii. मुक्त श्रेणी पालन पोषण में बच्चे वयस्कों की निरंतर निगरानी में खेलते हैं और अपने कार्यों हेतु माता-पिता पर निर्भर रहते हैं।
iv. सक्रिय श्रवण और भावनात्मक विनियमन सचेत पालन-पोषण शैली की मुख्य विशेषता है।

10.9 सारांश

पेरेंटिंग उस कला का नाम है, जिसमें अभिभावक बच्चे की सेहत से लेकर उसकी सुरक्षा का ध्यान रखते हैं। साथ ही उन्हें एक जिम्मेदार, संस्कारी और परिपक्व वयस्क बनाते हैं। बच्चे के इसी विकास के लिए जिन पालन-पोषण तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है, उसे पेरेंटिंग स्टाइल अथवा पालन-पोषण शैली कहा जाता है। पेरेंटिंग में शिशु अवस्था से लेकर वयस्क अवस्था तक बच्चे के विकास और वृद्धि में पोषण, मार्गदर्शन और सहायता करना शामिल है। पालन-पोषण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें बच्चे की व्यक्तिगत ज़रूरतों को समझना और उन ज़रूरतों को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनाना शामिल है। पालन-पोषण के प्रमुख पहलुओं में प्यार प्रदान करना, स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित करना, खुले संचार को बढ़ावा देना, प्रभावी ढंग से संवाद करना, स्वस्थ व्यवहार का उदाहरण प्रस्तुत करना और कार्यों के परिणाम सुनिश्चित करते हुए स्वतंत्रता को बढ़ावा देना शामिल है। प्रभावी पालन-पोषण में निरंतरता, करुणा, तनाव प्रबंधन और चुनौतियों के साथ तालमेल बिठाने की क्षमता का निर्माण तथा एक सुरक्षित और पोषण करने वाला वातावरण बनाना भी शामिल है। पारंपरिक बाल-पालन पद्धतियां मजबूत पारिवारिक संबंधों, बड़ों के प्रति सम्मान और सांस्कृतिक परंपराओं पर जोर देती हैं। वे प्रायः अनुशासन और आज्ञाकारिता पर ध्यान देते हैं, तथा माता-पिता अधिकार-संपन्न व्यक्ति और आदर्श व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं। ये विधियां शैक्षणिक उपलब्धियों और कैरियर संबंधी आकांक्षाओं को प्राथमिकता देती हैं, साथ ही सामुदायिकता और साझा जिम्मेदारी की भावना को भी बढ़ावा देती हैं। पालन-पोषण की चार मुख्य शैलियाँ हैं - सत्तावादी, अधिकारपूर्ण, अनुमोदक और असंबद्ध शैलियाँ। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी

पालन शैलियों के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है। साथ ही इन शैलियों का बच्चों पर प्रभाव के बारे में भी चर्चा की गई है। बाल पालन-पोषण के कुछ आधुनिक दृष्टिकोण भी हैं जिनमें लगाव पेरेंटिंग, हेलीकॉप्टर पालन शैली, मुक्त श्रेणी पालन-पोषण सचेत पालन-पोषण शामिल हैं। आधुनिक युग में पालन-पोषण सम्बंधी कई चुनौतियाँ हैं जैसे स्क्रीन टाइम का प्रबंधन, काम और परिवार को संतुलित करना, सहकर्मियों के दबाव से निपटना तथा स्वस्थ आदतों को बढ़ावा देना। भारत में बाल पालन की प्रथाएँ परंपरा और आधुनिकता का एक समृद्ध मिश्रण हैं, जो पारिवारिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्यों से गहराई से प्रभावित हैं।भारतीय संस्कृति में बच्चों के पालन-पोषण से जुड़ी मान्यताएँ और प्रथाएँ प्राचीन परंपराओं, धार्मिक शिक्षाओं और आधुनिक प्रभावों का एक आकर्षक मिश्रण हैं। भारतीय समाज की विविधता पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक मानदंडों के प्रति दृढ़ पालन पर आधारित है जो पीढ़ियों से चली आ रही हैं।

10.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **पालन-पोषण (Parenting):** इसे बाल-पालन के रूप में भी जाना जाता है जो शिशु अवस्था से वयस्कता तक बच्चे के पालन-पोषण और देखभाल की प्रक्रिया है। इसमें बच्चे को एक सुविकसित व्यक्ति के रूप में विकसित करने के लिए शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक और संज्ञानात्मक सहायता प्रदान करना शामिल है।
- **संचार (Communication):** एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सूचना, विचार, संदेश या भावनाओं का आदान-प्रदान करना।
- **पारंपरिक (Traditional):** परंपरा से संबंधित; जो कि किसी परंपरा, रीति-रिवाज या तरीके का पालन करता है।
- **सत्तावादी (Authoritarian):** लोगों को स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता न देना।
- **सक्रिय श्रवण (Active listening):** एक प्रकार का सुनने का कौशल जिसमें पूरी तरह से ध्यान केंद्रित करके, समझने, प्रतिक्रिया करके और वक्ता द्वारा कही गई बातों को याद रखने की कोशिश करना शामिल होता है।
- **स्क्रीन टाइम (Screen time):** फोन, टैबलेट, कंप्यूटर और टीवी जैसे स्क्रीन वाले उपकरणों का उपयोग करते हुए बिताया गया समय।

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

i. पारंपरिक बाल-पालन पद्धतियां

ii. डायना बॉमरिंड

iii. सत्तावादी पाल-पोषण शैली

iv. अनुमोदक माता-पिता

v. असंबद्ध पेरेंटिंग

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताइए।

i. सही

ii. सही

iii. गलत

iv. सही

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

5. गृह प्रबंध। डॉ0 मंजु पाटनी एवं डॉ0 ललिता शर्मा। स्टार पब्लिकेशन, आगरा।
6. बाल विकास। डॉ0 नीता अग्रवाल। अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
7. Baumrind, D. (1991). The influence of parenting style on adolescent competence and substance use. Journal of Early Adolescence, 11(1), 56-95.
8. Maccoby, E. E., & Martin, J. A. (1983). Socialisation in the context of the family: Parent–child interaction. In P. H. Mussen & E. M. Hetherington, Handbook of child psychology: Vol. 4. Socialisation, personality, and social development (4th ed.). New York: Wiley.
9. Menon, A. 2024. Child Rearing Beliefs and Practices in Indian Culture, International Journal for Multidisciplinary Research.Volume 6 (3), 1-7.

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. पालन-पोषण को परिभाषित कीजिए। इसके मुख्य दृष्टिकोणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. बाल पालन-पोषण की विभिन्न शैलियाँ कौन-सी हैं? प्रत्येक की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. विभिन्न पालन-पोषण शैलियों का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है? व्याख्या कीजिए।
4. बाल पालन-पोषण के आधुनिक दृष्टिकोणों पर प्रकाश डालिए।
5. आधुनिक युग में पालन-पोषण सम्बंधी चुनौतियाँ कौन-कौन सी हैं? चर्चा कीजिए।
6. भारत में बच्चों के पालन-पोषण सम्बंधी प्रथाओं पर विस्तृत लेख लिखें।

इकाई 11: बाल निर्देशन

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 बाल निर्देशन का अर्थ
11.4 निर्देशन की परिभाषाएँ
11.5 बाल निर्देशन के उद्देश्य
11.6 बाल निर्देशन की प्रकृति
11.7 बाल निर्देशन का कार्य क्षेत्र
    11.7.1 शैक्षिक निर्देशन
    11.7.2 व्यवसायिक निर्देशन
    11.7.3 व्यवहारिक निर्देशन
    11.7.4 विकासात्मक निर्देशन
    11.7.5 उपव्यवसायिक निर्देशन
    11.7.6 स्वास्थ्य निर्देशन
11.8 बाल निर्देशन का महत्व
11.9 सारांश
11.10 पारिभाषिक शब्दावली
11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

मनुष्य के भीतर एक ऐसी क्षमता विद्यमान है जिससे वह दूसरों से परामर्श ले सकता है और दूसरों को परामर्श एवं निर्देशन प्रदान कर सकता है। वह अपने सामान्य एवं संकट के क्षणों में एक-दूसरे की मदद करने के लिए अपेक्षित निर्देशन देता है जिससे उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनधारा निर्बाध रूप से चलती रहती है। निर्देशन अर्थात् दिशा दिखाने की प्रवृत्ति हर सामाजिक व्यवस्था में किसी न किसी रूप में कार्यशील रही है। इसका वर्तमान स्वरूप 20वीं शताब्दी की देन है।

वैसे तो निर्देशन का अर्थ बताने के लिए भिन्न-भिन्न मत देखने को मिलते हैं फिर भी निर्देशन को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि निर्देशन एक ऐसी क्रिया है जिसमे कुछ विशेष प्रकार के निर्देशन कर्मियों के माध्यम से व्यक्ति को उसकी समस्या तथा विकल्प बिन्दुओं से निपटने मे अपेक्षित राय एवं सहायता प्रदान की जाती है। बाल निर्देशन एक ऐसी अवस्था है जिसमें बच्चे को अपने आप को समझ पाने अपनी योग्यताओं तथा सीमाओं के अन्तर्निहित समार्थ्य को समझने एवं उसी स्तर के कार्य-कलापों को करने मे सक्षम बनाता है। बाल निर्देशन प्रत्येक अवस्था की समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध होने के अतिरिक्त आगामी समस्याओं की पूर्व तैयारी में भी विशेष सहायक होता है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु या अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। यह जीवन पर्यन्त विद्यमान रहने वाली आवश्यकता है। निर्देशन बच्चों, किशोर, प्रौढों एवं वृद्धों सभी के लिए महत्वपूर्ण होता है। निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में निहित विशेषता को तथा शैक्षिक, व्यवसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्र से सम्बन्धित जानकारी का समन्वित अध्ययन आवश्यक है। कुछ विद्वान निर्देशन और शिक्षा दोनों को ही एक दूसरे के पूरक मानते हैं।

निर्देशन का महत्व मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। निर्देशन व्यक्ति की पूर्णता के साथ-साथ उसके समस्त विकास, उसकी प्रसन्नता, समाज में उसकी सार्थकता बढ़ाने के उद्देश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्तमान मे निर्देशन की उपयोगिता के आधार पर उसका कार्यक्षेत्र दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा, व्यक्तिगत समस्याएँ, व्यवसायिक, स्वास्थ्य, विकास की प्रक्रिया एवं चिकित्सा के ये विभिन्न क्षेत्र हैं, इन सभी क्षेत्रों में निर्देशन की विशेष आवश्यकता होती है।

निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में महत्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि जीवन के अनेक क्षेत्रों में आज इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है। चाहे व्यवसाय का क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र, व्यक्तिगत समास्याओं के समाधान में भी निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;

- बाल निर्देशन का अर्थ;
- बाल निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य;
- बाल निर्देशन की प्रकृति एवं उसके कार्य क्षेत्र; तथा
- बाल निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में महत्व।

11.3 बाल निर्देशन का अर्थ

बाल निर्देशन का अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा किसी बच्चे को निर्देशित करना। निर्देशन आदेश से भिन्न होता है, क्योंकि आदेश में अधिकार भाव की प्रधानता होती है। जबकि निर्देशन एक प्रकार का सलाह या सुझाव होता है। निर्देशन का तात्पर्य होता है किसी व्यक्ति या बालक को दी जाने वाली सहायतार्थ सलाह। निर्देशन बुद्धिमत्तापूर्ण चयन एवं समायोजन के लिए दिया जाता है। बाल निर्देशन किसी बच्चे की आवश्यकता को ध्यान में रखकर न मागे जाने पर भी स्वतः उपलब्ध करायी जाने वाली सहायता होती है, जो बच्चे को विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु समर्थ बनाती है।

निर्देशन एक ऐसा समप्रत्यय है जो न तो सरल है और न ही आसानी से समझे जाने योग्य है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु या अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। प्रत्येक अवस्था में निर्देशन उस अवस्था विशेष की समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध होने के अतिरिक्त अगली अवस्थाओं की सम्भावित समस्याओं के लिए पूर्व तैयारी हेतु भी सहायता देता है।

बाल निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशन प्राप्त करने वाले बच्चे में निहित विशेषताओं तथा शैक्षिक, व्यवसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्र से सम्बन्धित जानकारी का समन्वित अध्ययन आवश्यक है। कुछ विद्धानों के अनुसार निर्देशन एवं शिक्षा दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। निर्देशन को सहायता प्रदान करने वाली प्रक्रिया के रूप में भी प्रदर्शित किया जाता है। जब निर्देशन को शिक्षा की उपप्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं तब निर्देशन की भूमिका का विशेष महत्व होता है। शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन के इस रूप का उद्देश्य छात्रों हेतु निर्धारित किए गये लक्ष्यों की प्राप्ति करना माना जाता है।

11.4 निर्देशन की परिभाषाएँ

निर्देशन को परिभाषित करने वाले कुछ विद्वानों के कथन इस प्रकार हैं -

शर्ले हैमरिन के अनुसार- ''व्यक्ति के स्वयं के पहचानने में इस प्रकार सहायता प्रदान करना, जिससे वह अपने जीवन में आगे बढ़ सके। इस प्रक्रिया को निर्देशन कहा जाता है''।

लेस्टर डी क्रो ने-अपनी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्सन टू गाइडेन्स'' में निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है - ''निर्देशन से तात्पर्य, निर्देशन के लिए स्वयं निर्णय लेने की अपेक्षा निर्णय कर देना नहीं है और न ही दूसरे के जीवन का बोझ ढोना है। इसके विपरित योग्य एवं प्रतिक्षित व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति केा चाहे व किसी भी आयु वर्ग का हो अपनी जीवन क्रियाओं को स्वयं गठित करने, अपने

निजी दृष्टिकोण विकसित करने, अपने निर्णय स्वयं ले सकने तथा अपना भार स्वयं वहन करने में सहायता करना ही वास्तविक निर्देशन है।''

आर्थर जे0 जॉन्स के शब्दों में - ''निर्देशन एक प्रकार की सहायता है, जिसके अर्न्तगत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को उसके समक्ष आए विकल्पों के चयन, समायोजन एवं समस्याओं के समाधान के प्रति सहायक होता है। यह निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में स्वाधीनता की प्रवृत्ति एवं अपने उत्तरदायी बनने की योग्यता में वृद्धि लाती है। यह विद्यालय अथवा परिवार की परिधि में आबद्ध न रहकर एक सार्वभौम सेवा का रूप स्वयं धारण कर लेती है। यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र यथा परिवार व्यापार एवं उद्योग, सरकार, सामाजिक जीवन, अस्पताल व कारागृहों में व्यक्त होती है। वस्तुतः निर्देशन का क्षेत्र प्रत्येक ऐसी परिस्थिति में विद्यमान होता है जहां इस प्रकार के व्यक्ति हो जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो और जहाँ सहायता प्रदान करने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति हों।''

गाइडेन्स कमेटी ऑफ सॉल्ट लेक सिटी स्कूल ने निर्देशन को परिभाषित करते हुऐ लिखा है कि - ''वास्तविक अर्थ में प्रत्येक प्रकार की शिक्षा के अन्तर्गत किसी न किसी प्रकार का निर्देशन व्याप्त है। इसके द्वारा शिक्षा को वैयक्तिक बनाने की चेष्टा प्रकट होती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक शिक्षक का यह उत्तरदायित्त है कि अपने छात्र की रूचियां, योग्यताओं एवं भावनाओं को समझे, वह उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों में अनुकूल परिवर्तन लाये।'' दूसरे अर्थ में, निर्देशन केा एक विशेष प्रकार की सेवाओं की श्रृंखला कहा जाता है। इसके अर्न्तगत विद्यालयी कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए वे क्रियायें सम्मिलित की जाती हैं जो छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा सकें इसके अन्तर्गत निम्नलिखित योजनाएँ उल्लेखनीय हैं-

1. छात्रों की वास्तवित आवश्यकताओं एवं समस्याओं की जानकारी प्राप्त करना।

2. छात्रों के सम्बन्ध में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनकी वैयक्तिक आवश्यकातओं के अनुदेशन को अनुकूलित करने में सहायता प्राप्त करना।

3. शिक्षकों में बालक की वृद्धि एवं विकास के सम्बन्ध में अधिकाधिक अवबोध की क्षमता का विकास करना।

4. विशिष्टि सेवायें यथा-अभिविन्यास, वैयक्तिक तालिका, उपबोधन, व्यवसायिक सूचना, समूह निर्देशन, स्थापन स्नातकों व शिक्षा से वंचित छात्रों के अनुवर्तन इत्यादि का प्रावधान करना।

5. कार्यक्रम की सफलता ज्ञात करने वाले शोधों का संचालन।

डब्लू0एल0 रिन्कल व आर0एल0 गिलक्रिस्ट के अनुसार - ''निर्देशन का आशय है - छात्र में उपयुक्त एवं प्राप्त हो सकने योग्य उद्देश्यों के निर्धारण कर सकने तथा उन्हें प्राप्त करने हेतु वांछित योग्यताओं का विकास कर सकने में सहायता प्रदान करना व प्रेरित करना। इसके आवश्यक अंग इस प्रकार हैं- उद्देश्य का निरूपण, अनुकूल अनुभवों का प्रावधान करना, योग्यताओं का विकास करना तथा उद्देश्यों की प्राप्ति करना। बुद्धिमत्तापूर्ण निर्देशन के अभाव में शिक्षण को उत्तम शिक्षा की श्रेणी में नही रखा जा सकता है तथा अच्छे शिक्षण के अभाव में दिया गया निर्देशन भी अपूर्ण होता है। इस प्रकार शिक्षण एवं निर्देशन एक दूसरे के पूरक है।''

अमेरिका की वोकेशनल गाइडेन्स एसोसिएशन ने निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है- ''निर्देशन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को विकसित करने, अपने सम्बन्ध में पर्याप्त व समान्वित करने तथा कार्य क्षेत्र में अपनी भूमिका को समझने में सहायता प्राप्त होती है। साथ ही इसके द्वारा व्यक्ति अपनी इस धारणा को यथार्थ में परिवर्तित कर देता है।''

मायर्स के अनुसार- ''निर्देशन व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों व प्रशिक्षण से अर्जित क्षमताओं को संरक्षित रखने का एक मूल प्रयास है। इस संरक्षण के लिए वह व्यक्ति को उन समस्त साधनों से सम्पन्न बनाता है, जिससे वह अपनी तथा समाज की संतुष्टि के लिए अपनी उच्चतम शक्तियों का अन्वेषण कर सके।''

ट्रेक्सर के अनुसार- ''निर्देशन वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं एवं खामियों को समझने, उन्हें यथासम्भव विकसित करने, उन्हें जीवन लक्ष्यों से संयुक्त करो तथा अंततः अपनी सामाजिक व्यवस्था के वांछनीय सदस्य की दृष्टि से एक पूर्ण एवं परिपक्व आत्म-निर्देशन की स्थिति तक पहुँचने में सहायक होता है''।

स्किनर के अनुसार- ''निर्देशन नवयुवकों को अपने से, दूसरों से और परिस्थितियों से सामंजस्य करना सीखने के लिए सहायता देने की प्रक्रिया है।''

टाइडमैन के अनुसार- ''निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनने में न केवल उद्देश्यपूर्ण क्रिया में सहायता देना है।''

निर्देशन के सन्दर्भ मे उपलब्ध जो अनेक परिभाषाएँ ऊपर प्रस्तुत की गयीं हैं उसके कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु अग्रलिखित हैं-

1. निर्देशन का उद्देश्य लक्ष्य प्राप्ति की दिशा मे गति करना है।

2. निर्देशन एक शैक्षिक, सतत्, सुव्यवस्थित व क्रमबद्ध प्रक्रिया होती है।

3. निर्देशन एक व्यक्ति द्वारा अन्य दूसरे व्यक्ति को दी जाने वाली ऐसी सहायता है जिसे एक व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है और दूसरा व्यक्ति देने को तत्पर होता है।

4. निर्देशन देने वाला पर्याप्त सामर्थ्य, बौद्धिक तथा प्रभावशाली व्यक्ति का होना चाहिए, जबकि निर्देशन प्राप्त करने वाला व्यक्ति ग्रहीता स्वभाव का होना आवश्यक है।

5. निर्देशनदाता पर्याप्त प्रशिक्षण एवं योग्यता प्राप्त होना चाहिए।

6. निर्देशन किसी आयु वर्ग या अवस्था विशेष तक सीमित नही है और उसे किसी भी व्यक्ति को दिया जा सकता है।

7. निर्देशन प्रक्रिया में अनेक अभिग्रह या मान्यताएँ व अभिमत तथा सिद्धान्त भी सम्मिलित किये जाते हैं। अर्थात् निर्देशन में इन सबका भी ध्यान रखा जाता है।

8. निर्देशन आदेश, नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण में पूरी तरह अलग प्रकार की प्रक्रिया है।

9. निर्देशन में व्यक्ति में सम्मान, स्वतंत्रता, अधिकार, गरिमा (प्रतिष्ठा) योग्यता आदि का भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता है।

10. निर्देशन एक प्रकार की विभिन्न साधानों हेतु व्यक्ति की सामर्थ्य तथा उसके योग्यता को विकसित करने वाली प्रक्रिया मात्र है।

11. निर्देशन से व्यक्ति को आत्मसंतुष्टि व आत्मसिद्धि जैसा संतोष भी प्राप्त होता है जो कि उसके मनोबल वृद्धि में सहायक होता है।

12. निर्देशन शिक्षा की एक आवश्यक कड़ी है जिसके बिना शिक्षण-प्रशिक्षण सम्भव नहीं हो सकता।

11.5 बाल निर्देशन के उद्देश्य

बाल निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष के वर्णन में निर्देशन के उद्देश्यों का उल्लेख सहायक सिद्ध होगा। क्रिब्बिन ने निर्देशन के उद्देश्यों को परम् उद्देश्यों और समीपस्थ उद्देश्यों के रूप में दो वर्गो में विभाजित किया है-

बाल निर्देशन के परम उद्देश्य

1. बच्चे का पूर्णतः परिष्कृत विकास

2. बच्चे का सर्वोत्तम विकास

3. अधिकतम सम्भव विकास

4. पूर्ण एवं संतुलित विकास

5. शारीरिक, बौद्धिक, संवेगिक, सामाजिक और नैतिक विकास

6. विस्तृत विकास

7. आत्म निर्देशनात्मक विकास और वैयक्तिक परिवक्वता का विकास

8. बच्चे को बेहतर जीवन जीना सिखाना

9. वैयक्तिक प्रसन्नता और सामाजिक निपुणता

10. बच्चे को आत्मावलम्बी बनाना

11. बच्चे को आत्म-संयमी बनाना

12. बच्चे को आन्तरिक संसाधनों से परिपूर्ण बनाना

बाल निर्देशन के समीपस्थ उद्देश्य

बाल निर्देशन के समीपस्थ उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. बालकों में अपने लक्ष्यों का बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से चयन करने की क्षमता का विकास करना।

2. बालकों में पहल शक्ति, जिम्मेदारी, आत्मदिशा एवं आत्मनिर्देशन का विकास करना।

3. बालकों को स्वयं अपने विषय, विद्यालय के बारे में अभिज्ञान का विकास कराना तथा इस योग्य बनाना कि विद्यालय में बालक अपनी उपलब्धियों आदि के कारण जाना जाए।

4. बालकों के जीवन में आने वाले संकटों के पूर्वानुमान करने, उनका परिहार करने तथा उनसे बचाव करने की योग्यता का विकास करना।

5. अध्यापकों को अधिक प्रभावी शिक्षण सम्पन्न करने हेतु सहयोग प्रदान करना।

6. बालकों को विद्यालय तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करने हेतु सहायता प्रदान करना।

7. बालकों को उनकी अपनी समस्याओं की पहचान करने के योग्य बनाना। समस्याओं को समझने तथा समाधान करने की प्रक्रिया में उनकी सहायता करना।

8. जीवन की संकटकालीन परिस्थितियों मे विवेकपूर्ण चयन करने योग्य बनाने तथा परिस्थितियों की व्याख्या करने में बच्चों को सहयोग देना।

9. बालकों के भावी जीवन में समुत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक अन्तर्दृष्टि एवं तकनीकी सामर्थ्य अर्जित करने के लिए सहयोग प्रदान करना।

10. विद्यालय के सभी कार्यक्रमों के प्रति अपना अधिकतम योगदान सम्भव बनाने हेतु विद्यालय प्रबन्धकों को अधिक दक्षतापूर्वक प्रशासन सम्पादित करने के लिए सहायता देना।

12. इनके अलावा निर्देशन के अन्य समीपस्थ लक्ष्यों के अन्तर्गत परिवारों की सहायता करना, नैतिक चरित्र के विकास में समुदायों की सहायता करना, बेहतर मानवीय सम्बन्धों को प्रोत्साहन देना और पोषण करना, तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझदारी के विकास को भी निर्देशन के समीपस्थ उद्देश्यों के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

a. बाल निर्देशन का एक समीपस्थ उद्देश्य है; बालकों को अपने लक्ष्यों का बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से चयन करने की ..... का विकास करना।

b. बाल निर्देशन का परम उद्देश्य है; आत्म निर्देशनात्मक विकास और वैयक्तिक ..... का विकास।

11.6 बाल निर्देशन की प्रकृति

बाल निर्देशन एक प्रक्रिया है तथा इसका मूर्त स्वरूप एक विशेष प्रकार की सेवा में परिलक्षित होता है। इसके अन्तर्गत एक अधिक जानकार, कुशल एवं प्रबुद्ध व्यक्ति किसी बच्चे को उसके व्यक्तिगत, शैक्षिक, व्यवसायिक , सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में मदद प्रदान करता है तथा उसमें उपेक्षित जानकारी एवं निपुणता विकसित कर उसकी प्रभाविता एवं सफलता की सम्भावना को अधिक से अधिक बढ़ाता है।

बाल निर्देशन की प्रकृति दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों में सहजता से आंकी जा सकती है। दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में इसे व्यक्ति के पूर्णतम विकास का पोषक, उसकी स्वाभाविक शक्तियों का संरक्षक तथा जीवनपर्यन्त चलने वाली गतिशील प्रक्रिया का द्योतक माना जाता है। इस रूप में बाल निर्देशन को बच्चे के जीवन की अटूट धारा के रूप में उपकल्पित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में बाल निर्देशन एक अन्तः क्रियात्मक व्यापार है जिसके जरिये एक विशेषज्ञता प्राप्त व्यक्ति किसी बच्चे को परामर्श एवं अपेक्षित जानकारी प्रदान कर उसकी सामाजिक, व्यवसायिक एवं शैक्षिक परिस्थितियों से समंजन की प्रक्रिया को सरल एवं सहज बनाने में मदद देता है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में बाल निर्देशन एक सामाजिक कार्य है, जिसके तहत एक व्यक्ति किसी बच्चे का सहायक बनकर समाज कल्याण के अवसरों में विस्तार करता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर बाल निर्देशन की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है;

1. निर्देशन की कार्यपद्धति 'व्यक्ति' या 'समूह' दोनों पर केन्द्रित हो सकती है।

2. निर्देशन क्रिया का स्वरूप एक जैसा न होकर बहुपक्षीय होता है।

3. निर्देशन का तात्कालिक लक्ष्य सेवार्थी की मौजूदा समस्या का हल प्राप्त कर सकने में मदद देना है, जबकि इसका चरम उद्देश्य उसे ''आत्म निर्देशन'' की ओर अग्रसर करना है।

4. निर्देशन का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व सम्बन्धी सभी पक्षों यथा शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं सामाजिक से है। इसके अर्न्तगत व्यक्ति की अभिरूचियों एवं आकर्षणों पर विशेष ध्यान अपेक्षित है।

5. किसी भी परिस्थिति में निर्देशन की सेवाओं का उद्देश्य व्यक्ति का किसी कार्य विशेष से समायोजन कायम करना है।

6. निर्देशन का वस्तुनिष्ठ स्वरूप तब निखरता है जब इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अपने बारे में जानकारी बढ़ाने का आधार किसी न किसी प्रकार की परीक्षा या परख पर निर्भर करता है।

7. निर्देशन में व्यक्ति एवं समाज दोनों के कल्याण सुनिश्चित करने पर बल दिया जाता है, जिससे यह मूलतः सामाजिक प्रक्रिया के रूप में गतिशील होता है।

11.7 बाल निर्देशन का कार्य क्षेत्र

बाल निर्देशन एक आन्दोलन के रूप में व्यक्ति के व्यासायिक एवं समायोजनात्मक विकास हेतु आरम्भ किया गया था। लेकिन धीरे-धीरे बाल निर्देशन के क्षेत्र का विस्तार होता गया और बाल निर्देशन शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बन गया है। निर्देशन व्यक्ति की पूर्णता के साथ, उसके समग्र विकास के साथ, उसकी प्रसन्नता के साथ, समाज में व्यक्ति को महत्वपूर्ण बनाने के उद्देश्य के साथ जुड़ गया। इस प्रकार निर्देशन के कार्य क्षेत्र का विकास अनेक दिशाओं में सम्पन्न हुआ। निर्देशन के क्षेत्र को छः प्रमुख की श्रेणियों के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है-

11.7.1 शैक्षिक निर्देशन

जॉर्ज एफ0 मायर्स ने शैक्षिक निर्देशन को एक प्रक्रिया बताया है जिसका सम्बन्ध एक ओर अपनी समस्त प्रभेदक विशिष्टताओं सहित एक विद्यार्थी और दूसरी ओर अवसरों एवं आवश्यकताओं के विभिन्न समूह के मध्य व्यक्ति के विकास या शिक्षा हेतु अनुकूल विन्यास स्थापित करने से है। शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता तब पड़ती है जब विद्यार्थी के सामने और भी पर्याप्त विकल्प होते हैं।

शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में निर्देशन प्रक्रिया का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है-

1. वांछित पाठ्यक्रम पर आधारित विषयों का चयन करने में।

2. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के चयन हेतु।

3. नवीन पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निर्णण लेने में।

4. अधिगम प्रक्रिया के निरन्तर अपेक्षित उपलब्धि बनाये रखने की दृष्टि से।

5. राष्ट्रीय एकता पर आधारित कार्यक्रमों के भाग लेने हेतु प्रेरित करने की दृष्टि से।

6. अवव्यय एवं अवरोधन की समस्या का समाधान करने के लिए।

7. प्रौढ़शिक्षा पर आधारित कार्यक्रमों की दिशा में प्रेरित करने हेतु आदि।

11.7.2 व्यवसायिक निर्देशन

मायर्स के अनुसार - ‘‘व्यवसायिक निर्देशन मूलतः युवकों की अमूल्य क्षमताओं तथा विद्यालयों द्वारा उन्हें प्रदान किये जाने वाले महँगे प्रशिक्षण को संरक्षित करने का प्रयत्न है। यह मानवीय

संसाधनों में से सर्वाधिक कीमती संसाधन को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति को वहाँ उस क्षेत्र में निवेश करने और उपयोग करने में सहयोग प्रदान करता है, जहाँ उसे अपने लिए सर्वाधिक प्रसन्नता एवं संतुष्टि और समाज को सर्वाधिक लाभ हो।''

व्यवसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज या व्यवसायिक संगठन दोनों के हितों की रक्षा करना है। इस प्रकार के निर्देशन से व्यक्ति को जीविका/व्यवसाय सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन दिया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को जीविकोपार्जन के माध्यम/व्यवसाय के चयन करने, व्यवसाय हेतु तैयारी करने, उसमें प्रविष्ट होने तथा उसमें सहयोग प्रदान किया जाता है।

11.7.3 व्यक्तिगत निर्देशन

इसके अन्तर्गत व्यक्ति से सम्बन्धित शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांवेगिक विकास से जुड़ी हुई विशेषताओं का अध्ययन व्यक्ति की विशेष परिस्थितियों का जायजा तथा अपसमंजनकारी के मूल्यांकन पर बल दिया जाता है।

रॉबर्ट एच0 मैथ्यूसन के अनुसार - व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्तियों को चयन करने, नियोजन और समायोजन तथा प्रभावशाली आत्म निर्देशन करने और व्यक्तिगत जीवन की समस्या का सामना करने में प्रदान किये जाने वाले व्यवस्थित व्यवसायिक सहयोग की प्रक्रिया है।''

निर्देशन के इस क्षेत्र विशेष के अन्तर्गत निम्न निर्देशन आते हैं;

1. विद्यालय/कालेज/विश्वविद्यालय के प्रांगण में विद्यार्थियों के समक्ष प्रकट होने वाली सांवेगिक समस्याएँ।

2. व्यक्तिगत जीवन के अन्दर की उलझनें।

3. सामाजिक जीवन में आने वाली समायोजनात्मक समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक समायोजन पारिवारिक समायोजन, वैवाहिक समायोजन, अवकाश के क्षणों के साथ समायोजन, भविष्य एवं अल्पकालिक कार्य क्षेत्रों में समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन आदि अनेक क्षेत्र व्यक्तिगत समायोजन की सीमा में सम्मिलित किए जाते हैं।

11.7.4 विकासात्मक निर्देशन

विकास प्रक्रिया में सम्बन्धित समस्याओं या प्रश्नों के समाधान के लिए दिये जाने वाले निर्देशन को विकासात्मक निर्देशन कहते हैं। इसमें निर्देशन व्यक्ति को अपने सर्वोतम ढंग से विकसित होने में सहयोग करता है।

व्यक्ति की विकास प्रक्रिया में निम्न बिन्दुओं पर मुख्यतः निर्देशन किया जा सकता है;

1. सामाजिक रूप में स्वयं को विकसित कर वयस्कता अर्जित करना।

2. जीवकोपार्जन हेतु स्वयं को तैयार करना।

3. वयस्कों व बड़ों से सांवेगिक स्वतंन्त्रता प्राप्त करना।

4. आर्थिक रूप से स्वालम्बन व स्वतंत्रता को प्राप्त करना।

5. पारिवारिक व वैवाहिक जीवन तथा उसके उक्त दायित्यों को समझना एवं स्वयं को उसके लिए तैयार करना।

6. बौद्धिक क्षमता व सम्प्रत्यय स्तर को तैयार करना।

7. व्यक्ति के विविध मूल्यों तथा नैतिकता आदि की पृष्ठभूमि को तैयार करना।

8. सामाजिक भूमिका को महिला पुरूष की विविधता के साथ अर्जित करना अर्थात् स्त्री पुरूष दोनों की सामाजिक भूमिका को पूर्णता से जानना।

9. अपने आयुवर्ग के साथ या विषम लिंगियों के साथ उपयुक्त व स्वास्थ्य सम्बन्ध को सहजता से विकसित करना।

5. उपव्यवसायिक निर्देशन या विश्रामकाल सम्बन्धी निर्देशन या मनोरंजन निर्देशन

6. स्वास्थ्य निर्देशन।

11.7.5 उपव्यवसायिक निर्देशन

निर्देशन के इस क्षेत्र को उपव्यवसायिक निर्देशन के अतिरिक्त अवकाश काल निर्देशन या मनोरंजन निर्देशन भी कहते है। व्यक्ति के जीवन में प्रतिदिन कुछ घण्टे अथवा सप्ताह या महीने में कुछ एक दिन फुर्सत के होते हैं, जबकि उसे अपनी दैनिक व्यस्तता, शिक्षा या व्यवसाय से अवकाश प्राप्त रहता है, जिसमें वह मनोरंजन प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के कार्य करता है। कोई व्यक्ति अपना अवकाश कैसे व्यतीत करता है, अवकाश काल कितने उपयोगी एवं सुखदायी ढंग से व्यतीत करता है, उसका महत्व कार्य काल के लिए भी होता है। यदि फुर्सत के क्षणों को प्रभावशाली ढंग से मनोरंजन, शौक शारीरिक-सामाजिक गतिविधियां में इस प्रकार व्यतीत किया जाए की व्यक्ति को सुख की अनुभूति प्राप्त हो समाज के अन्य वर्गो को लाभ पहुँचे और समय का सदुपयोग होने की

अनुभूति अर्जित हो तो कार्य के समय व्यक्ति के निष्मादन स्तर में भी सुधार होता है। इसलिए उपव्यवसायिक निर्देशन महत्वपूर्ण है।

11.7.6 स्वास्थ्य निर्देशन

स्वास्थ्य के सन्दर्भ में दिये जाने वाला निर्देशन स्वास्थ्य निर्देशन कहलाता है। स्वास्थ्य निर्देशन जीवनशैली के विकृत रूप में अति महत्वपूर्ण होता जा रहा है। आज अधिकांश व्यक्ति शारीरिक या मानसिक अथवा दोनों ही प्रकार से कम या अधिक रूप में स्वास्थ्य समस्याओं में घिरे हुए हैं। स्वास्थ्य हेतु निम्न उद्देश्यों के आधार पर निर्देशन की आवश्कता पड़ती है-

1. रोग निदान व उपचार के बाद उस विकृति के दुबारा होने की संभावना उसके बचाव के लिए क्या-क्या सावधानियाँ अपनायी जाए इत्यादि में निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

2. आरोग्य व दीर्घजीवी जीवन की जीवनशैली किस रूप में होनी चाहिए आदि स्वास्थ्य सम्बन्धी जिज्ञासाओं को निर्देशन के रूप में समाधान दिया सकता है।

3. वर्तमान समय की अस्त-व्यस्त जीवन शैली व्यक्ति की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं की महत्वपूर्ण कारण होती है। यथा-आहार-विहार या खानपान रहन-सहन, कार्य सक्षमशीलता या व्यायाम को जीवन में व्यवस्थित स्परूप देना।

4. लैंगिक विकृतियों का मुख्य कारण व्यक्ति का अनुचित या विकृत व्यवहार ही होता है। अतः इस सन्दर्भ में व्यक्ति को समुचित रूप से निर्देशन प्रदान करना।

5. विभिन्न रोग बचाव की विधियों से व्यक्तियों को अवगत कराना तथा उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित करना। रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने वाली जीवन शैली के प्रति प्रेरित करना।

6. किसी रोग या विकृति के लिए आवश्यक उपचार किस प्रकार तथा कहाँ से प्राप्त किया जाये, किस रोग में क्या उपचार लेना अधिक लाभकारी होगा आदि विकल्पों के चन में व्यक्ति की मदद करना।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

a. निर्देशन के क्षेत्र को ..... प्रमुख की श्रेणियों के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है|

b. .....का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज या व्यवसायिक संगठन दोनों के हितों की रक्षा करना है।

c. ..... की आवश्यकता तब पड़ती है जब विद्यार्थी के सामने और भी पर्याप्त विकल्प होते हैं।

11.8 बाल निर्देशन का महत्व

जिस प्रकार से मानव जीवन में विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं का अनुभव एवं समाज की मान्यताओं, आदर्शों एवं मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है, संयुक्त परिवार विघटित होते जा रहे हैं। जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, बेरोजगारी, निर्धनता जैसी गम्भीर समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं, ऐसी स्थिति में निर्देशन का महत्व बढ़ जाता है। व्यक्ति मूलतः एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति व समाज का महत्व निरन्तर बना रहे इसके लिए यह आवश्यक है दोनों ही एक दूसरे के लिए जीना सीखें। आज व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही तनावग्रस्त स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावनाओं में तेजी से वृद्धि हो रही है। इस प्रकार की स्थिति से मुक्त रहने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति एवं समाज का समन्वित विकास केवल उन्हीं दिशाओं में होता रहे जो दोनों के लिए कल्याणकारी हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति में शिक्षा एवं निर्देशन ही अधिक सहायक हो सकते हैं।

निर्देशन का महत्व शैक्षिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से अत्यधिक है। छात्र असंतोष की समस्या का समाधान करने, शैक्षिक उपलब्धि का वांछित स्तर बनाये रखने, परिवार की परिवर्तित स्थिति में भी सामंजस्य बना रहे, अवकाश का समुचित उपयोग हो, वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार व्यक्तित्व का विकास हो, संवेगात्मक संतुलन बना रहे। राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करने, प्रजातंत्र एवं देश की रक्षा की भावना विकसित हो इन दृष्टियों से निर्देशन का और भी महत्व बढ़ जाता है।

11.9 सारांश

बाल निर्देशन एक व्यवस्थित एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। निर्देशन प्रक्रिया सेवाओं के उस समूह से सम्बद्ध है जो व्यक्तियों को विभिन्न क्षेत्रों में सन्तोषजनक व्यवस्थापन के लिए आवश्यक होती है। निर्देशन के अन्तर्गत वे सभी प्रक्रियाएँ आ जाती है जो व्यक्ति की आत्मसिद्धि में सहायक होती है। निर्देशन एक व्यक्ति द्वारा अन्य दूसरे व्यक्ति को दी जाने वाली ऐसी सहायता है जिसे एक व्यक्ति प्राप्त कना चाहता है तथा दूसरा देने को तत्पर होता है। निर्देशन से व्यक्ति को आत्मसंतुष्टि एवं आत्मसिद्धि जैसा सन्तोष भी प्राप्त होता है, जो उसके मनोबल वृद्धि में सहायक होता है। निर्देशन का परम उद्देश्य लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में गति प्राप्त करना होता है।

निर्देशन की क्रिया चाहे व्यवस्थित हो या अव्यवस्थित औपचारिक हो या आनुसंगिक इसके कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं जैसे- निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति की आत्म अभिज्ञता को बढ़ाना है। निर्देशन का चरम उद्देश्य व्यक्ति का मदद न करना ही होकर समाज कल्याण तथा बेहतर समाज की रचना भी है। निर्देशन का उद्देश्य व्यवसायों तथा व्यक्ति की उनसे संगति बनाना तथा व्यक्ति और उस व्यवसाय के मध्य पायी जाने वाली विसंगतियों को कम के कम बनाना है। निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति के लिए सही प्रकार की शिक्षा, शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण अधिगम की विधि का चुनाव करने में मदद देना है। निर्देशन का कार्य व्यक्ति की समस्याओं के समझने एवं उनका प्रभावी हल निकालने में मदद देना भी है। निर्देशन का लक्ष्य प्रभावी व्यक्ति एवं प्रभावी पर्यावरण के सृजन तथा विकास की प्रक्रिया को सुगम, सुन्दर एवं वास्तविक रूप देने में सहयोग प्रदान करना है।

निर्देशन की प्रकृति दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो कह सकते हैं कि यह व्यक्ति के पूर्णतम विकास का पोषक तो है ही जीवन पर्यन्त चलने वाली गतिशील प्रक्रिया भी है। निर्देशन एक अंतःक्रियात्मक व्यापार है। यह एक सामाजिक कार्य है जिसके तहत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का सहायक बनकर समाज कल्याण के अवसरों में विस्तार करता है।

बाल निर्देशन वास्तव में एक सेवा है, जो बच्चे को स्वयं के बारे में जानने में सहायता प्रदान करता है तथा इसके साथ-साथ बच्चे का अधिकतम विकास करने में सहायक होता है। आज निर्देशन का क्षेत्र काफी विस्तृत हो चुका है। प्रमुख रूप से शिक्षा, व्यवसाय, व्यक्तिगत समायोजन, व्यक्ति की विकास की प्रक्रिया, उपव्यवसायिक क्षेत्र, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा जैसे महत्पूर्ण क्षेत्र हो गये है। इन क्षेत्रों में निर्देशन का आज विशेष रूप से महत्व बढ़ गया है।

11.10 पारिभाषिक शब्दावली

• बाल निर्देशन: निर्देशन शैक्षिक प्रक्रिया की उस व्यवस्थित एवं गठित अवस्था को कहा जाता है जो व्यक्ति / बच्चे को अपने जीवन में ठोस बिन्दु व दिशा प्रदान करने की क्षमता को बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है।

• शैक्षिक निर्देशन: शैक्षिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति के लिए उचित कार्यक्रम को बनाना तथा उसमें प्रगति करने में सहायता देना है।

• व्यवसायिक निर्देशनः व्यवसायिक निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यवसायिक चार्ट, व्यवसायिक विवरण पत्रिका, वार्ता एवं अन्य माध्यमों की सहायता से सेवार्थी की व्यवसायिक रुचि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है तथा उसकी रुचि के अनुसार व्यवसाय चुनने हेतु निर्देशित किया जाता है।

• व्यक्तिगत निर्देशन: इसके अन्तर्गत व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं को जानने के पश्चात् उसका समाधान करने के उपरान्त ही उसे एक सन्तुलित जीवन जीने हेतु निर्देशित किया जाता है।

• विकासात्मक निर्देशन: विकास प्रक्रिया में सम्बन्धित समस्याओं या प्रश्न के समाधान के लिए दिये जाने वाले निर्देशन को विकासात्मक निर्देशन कहते हैं। इसमें निर्देशन व्यक्ति को अपने सर्वोत्तम ढंग से विकसित होने में सहयोग करता है।

• उपव्यवसायिक निर्देशन: इसे अवकाश काल या मनोरंजन निर्देशन भी कहते हैं। उपव्यवसायिक या अवकाश-काल निर्देशन का क्षेत्र व्यापक होता है। इनमें व्यक्ति के ऐसे कार्य-कलापों का चयन करना होता है जो उसकी विशेषताओं और क्षमताओं के अनुरूप हो।

• स्वास्थ्य निर्देशन: स्वास्थ्य के सन्दर्भ में दिया जाने वाला निर्देशन स्वास्थ्य निर्देशन कहलाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को यह निर्देशित किया जाता है कि वह ऐसी जीवन शैली अपनाये जिससे उसका स्वास्थ्य समुचित रूप से बना रहे।

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिये।

a. क्षमता

b. परिवक्वता

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिये।

a. छः

b. व्यवसायिक निर्देशन

c. शैक्षिक निर्देशन

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आलम, डॉ0 शाह एवं गुफरान डॉ0 मुहम्मद (2011): निर्देशन एवं परामर्श का मूलभूत आधार, प्रकाशक - ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. राय, अमरनाथ एवं अस्थाना, मधु (2006, तृतीय संस्करण): निर्देशन एवं परामर्श, प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

3. शर्मा, डॉ0 आर0ए0 एवं चतुर्वेदी डॉ0 शिखा (2010): निर्देशन एवं परामर्श के मूलतत्व, प्रकाशक - विनय रखेजा ब्ध्व आर0 लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कालेज मेरठ।

4. शर्मा एस0एन0 एवं सोलंकी एम0 के0 (2011): निर्देशन एवं परामर्श, प्रकाशन-माधव प्रकाशक, ए-23 इन्द्रपुरी कालोनी, न्यू आगरा, आगरा।

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्देशन का क्या अर्थ है? इसकी प्रकृति व स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

2. निर्देशन के प्रमुख क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-

• शैक्षिक निर्देशन

• व्यवसायिक निर्देशन

• व्यक्तिगत निर्देशन

• स्वास्थ्य निर्देशन

इकाई 12: प्रतिभाशाली बालक

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 प्रतिभाशाली बालकों का अर्थ एवं परिभाषाएं
12.4 प्रतिभाशाली बालकों के प्रकार
12.5 प्रतिभाशाली बालकों कीविशेषतायें
12.6 प्रतिभाशाली बालकों का चयन तथा पहचान की विधियां
12.6.1 परीक्षण (Testing)
12.6.2 निरीक्षण (Observation)
12.7 प्रतिभाशाली बालकों का समायोजन
12.7.1 परिवार में समायोजन
12.7.2 विद्यालय में समायोजन
12.7.3 सामाजिक समायोजन
12.8 प्रतिभाशाली बालकों के शैक्षिक प्रावधान
12.9 प्रतिभाशाली बच्चों की समस्याएँ/चुनौतियाँ
12.10 समायोजन दोष न उत्पन्न होने हेतु उपाय
12.11 सारांश
12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रतिभा की अवधारणा के भीतर कुछ शब्द जुड़े हुए हैं जो कभी-कभी बहुत स्पष्ट अंतर का संकेत देते हैं। आमतौर पर प्रतिभा को प्रकृति (आनुवंशिकता) और पालन-पोषण (पर्यावरण) दोनों से माना जाता है। यह ज्ञात है कि प्रतिभाशाली बच्चों को एक संवादात्मक और प्रेरक वातावरण में बड़ा करने की आवश्यकता है।पर्यावरण की भूमिका बच्चे के जन्म से पहले और जन्म के दौरान उसके विकास को प्रभावित करना शुरू कर देती है।एक बच्चे के जीवन के पहले चार और पाँच साल उसके बाद के विकास को निर्धारित करने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। एक समृद्ध वातावरण प्रतिभाशाली

बच्चों को उनकी विशेष जरूरतों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त उत्तेजना अनुभव और बातचीत प्रदान करता है।इसके मूल में, प्रतिभा एक मस्तिष्क-आधारित अंतर है जो हमारी जीवंत और न्यूरोडायवर्स दुनिया में योगदान देता है। इस न्यूरोलॉजिकल अंतर का मतलब है कि अत्यधिक प्रतिभाशाली छात्र विक्षिप्त व्यक्तियों की तुलना में एक अलग बौद्धिक, शैक्षणिक और सामाजिक-भावनात्मक विकास पथ का अनुभव करते हैं।प्रतिभाशाली बालक सामान्य बालकों से श्रेष्ठ होता है। ये बालक ऊंची बुद्धि लब्धि वाले होते हैं । यह बुद्धि लब्धि 120 से ऊपर होती है। ये बालक एक साधारण बालक से अधिक योग्य होते हैं । जो कार्य इन्हें दिया जाता है, उसे शीघ्र ही पूरा कर लेते हैं । ये बालक साधारण बालक की कक्षा में अरुचि महसूसकरतेहैं तथा इन्हें कक्षा में कोई उत्तेजना नहीं मिलती।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी

- प्रतिभाशाली बालकों की संज्ञानात्मक क्षमताओं की पहचान कर पाएंगे
- उनकी विशिष्ट सीखने की जरूरतों को समझ पाएंगे
- प्रतिभाशाली बालकों की उपयुक्त शैक्षिक रणनीतियों को जान पाएंगे
- प्रतिभाशाली बालकों के सामाजिक और भावनात्मक विकास को भी समझ पाएंगे

12.3 प्रतिभाशाली बालकों का अर्थ एवं परिभाषाएं

उच्च मानसिक योग्यता वाले बालकों को इंगित करने के लिये अनेक शब्दों जैसे प्रतिभाशाली बालक, श्रेष्ठ बालक, निपुण बालक, तीव्र सीखने वाले, होशियार छात्र तथा तीव्र छात्र आदि का प्रयोग किया जाता है। ये सभी शब्द लगभग एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में योग्यता, उपलब्धि, क्षमता आदि में सामान्य बालकों से सार्थक रूप से अधिक योग्यता वाले बालकों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। सामान्य तौर पर प्रतिभाशाली बालकों को उच्च बुद्धि के आधार पर परिभाषित किया जाता है। प्रतिभा को सामान्य बौद्धिक योग्यता अथवा विभिन्न क्षेत्रों जैसे कला, संगीत, नेतृत्व आदि से विशिष्ट योग्यता के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है।

प्रतिभाशाली बच्चे की IQ

जनसंख्या का अधिकांश भाग 85-115 के IQ के अंतर्गत आता है । यह औसत IQ 100 मन जाता है। एक प्रतिभाशाली बच्चे का IQ इन श्रेणियों में आएगा:

- मामूली प्रतिभाशाली: 115 से 130
- मध्यम प्रतिभाशाली: 130 से 145
- अत्यधिक प्रतिभाशाली: 145 से 160
- गहन प्रतिभा: 160 या उससे अधिक

ये प्रतिभाशाली IQ श्रेणियां एक मानक बेल कर्व (bell curve) पर आधारित हैं। हालाँकि, अलग-अलग IQ परीक्षण इस सीमा को प्रभावित कर सकते हैं क्योंकि कुछ परीक्षण145 पर सीमित हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न प्रतिभाशाली पेशेवरों ने अन्य शब्दों का उपयोग किया है, जैसे कि "असाधारण रूप से" प्रतिभाशाली। हालाँकि इन श्रेणियों और लेबलों पर सार्वभौमिक सहमति नहीं बन पाई है, लेकिन यह समझा जाता है कि जो छात्र 100 के औसत IQ से विचलित होते हैं, उन्हें अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए विशेष शैक्षिक समायोजन की आवश्यकता होती है।बौद्धिक तात्पर्य उच्च बुद्धिलब्धि वाले बालकों से है।

बुद्धिलिब्धि= (मानसिक आयु)/(शारीरिक आयु)×100

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विशिष्ट बालकों की बुद्धिलब्धि के लिए भिन्न-भिन्न सीमायें बतायी हैं।

टरमैन 140 से अधिक बुद्धिलब्धि वाले बालकों को प्रतिभाशाली कहा है, जबकि डनलप ने 132 से अधिक बुद्धिलब्धि वाले बालकों को प्रतिभाशाली बालक माना है। कुछ विद्वान विभिन्न क्षेत्रों में उनके द्वारा किये जाने वाले असाधारण प्रदर्शन को प्रतिभा की कसौटी मानते हैं। उनके अनुसार संगीत, कला, अभिनय लेखन, गायन आदि क्षेत्रों में असाधारण योग्यता वाले बालकों को प्रतिभाशाली बालक माना जा सकता है।टरमन व ओडन-"प्रतिभाशाली बालक शारीरिक गठन,सामाजिक समायोजन,व्यक्तित्व के लक्षणों, विद्यालय उपलब्धि,खेल की सूचनाओं और रुचियों की बहुरूपता में सामान्य बालकों से बहुत श्रेष्ठ होते हैं।" स्किनर एवे हैरीमैन - "प्रतिभाशाली शब्द का प्रयोग उन एक प्रतिशत बालकों के लिए किया जाता है जो सबसे अधिक बुद्धिमान होते।"

कॉलसनिक के अनुसार, "वह प्रत्येक बालक जो अपनी आयु-स्तर के बालकों में किसी योग्यता में अधिक हो और जो हमारे समाज के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण नई देन हो।"

पॉलविट्टी-"प्रखर बुद्धि बालक वह है जो किसी कार्य को करने के प्रयास में निरन्तर उच्च स्तर बनाये रखता है।" प्रतिभाशाली बच्चे के व्यवहार में कुछ विशेषताएं होती हैं जो एक प्रतिभाशाली रचनाकार के रूप में विकसित हो सकती हैं। साथ ही, ये संकेत असंख्य हैं, जल्दी और अक्सर होते हैं, मुख्य रूप से उच्च बौद्धिक क्षमता या विशिष्ट क्षमताओं की उपस्थिति से संबंधित होते हैं।

इन बच्चों को कई अलग-अलग क्षेत्रों में प्रतिभा दी जा सकती है, जिनमें शामिल हैं:

- मौखिक/भाषा (जैसे लिखना, बोलना या पढ़ने की क्षमता)
- तार्किक और गणितीय (जैसे संख्या-संख्या और वर्गीकरण)
- दृश्य और प्रदर्शन कला (ड्राइंग, पेंटिंग, संगीत क्षमता)
- शरीर/गति/साइकोमोटर क्षमता (जैसे नृत्य)
- पारस्परिक (जैसे संचार, नेतृत्व क्षमता)
- अंतर्वैयक्तिक (जैसे प्रतिवर्ती, आत्मनिर्भर क्षमता)

क्रो एवं क्रो के अमुसार, "वह बालक जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और संवेगात्मक आदि विशेषताओं में औसत से विशिष्ट हो और यह विशिष्टता इस स्तर की हो कि उसे अपनी विकास-क्षमता की उच्चतम सीमा तक पहुँचने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता हो, असाधारण या विशिष्ट बालक कहलाता है।"

12.4 प्रतिभाशाली बालकों के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिभाशाली बालकों को दो भागों में वर्गीकृत किया है-

1. **सम्पूर्ण प्रतिभाशाली**
2. **विशिष्ट प्रतिभाशाली**

1. सम्पूर्ण प्रतिभाशाली बालक- सम्पूर्ण प्रतिभाशाली बालक वे होते हैं जिनकी बुद्धि-लब्धि उच्च श्रेणी की होती है तथा वे सभी विषयों तथा कार्यों में समान रुचि लेते हैं तथा उत्कृष्ट होते हैं। उनके लिए कोई भी कार्य या विषय कम या अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता है।

2. विशिष्ट प्रतिभाशाली बालक- इन बालकों की बुद्धि-लब्धि तो उच्च श्रेणी की होती है। किन्तु ये सभी विषयों व कार्यों में सामान्य रुचि नहीं लेते हैं अपितु किसी विशिष्ट क्षेत्र में अधिक प्रतिभा रखते हैं, जैसे-संगीत, चित्रकला, हस्तकला, गणित, विज्ञान आदि अन्य विषय में ये साधारण होते हैं।

12.5 प्रतिभाशाली बालकों की विशेषतायें

1. **उच्च वंश परम्परा-** वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिभाशाली बालकों पर किये गये अध्ययनों के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रतिभाशाली बालक किसी वर्ग विशेष या जाति के नहीं होते हैं अपितु अच्छी पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा उच्च वंश परम्परा वाले बालक प्रतिभाशाली होते हैं। इन बालकों के परिवारों में कई पीढ़ियों में लगातार महान व्यक्ति ही होते हैं। अतः देखा गया है कि प्रतिभाशाली बालक अपेक्षाकृत अच्छी पारिवारिक पृष्ठभूमि वाले ही होते हैं। किन्तु कभी-कभी निम्न और मध्यम कोटि के परिवारों में भी ऐसे बालक देखे गये हैं।प्रतिभाशाली बालक और वंश परम्परा के सम्बन्ध में गॉल्टन ने सुप्रसिद्ध वकीलों, साहित्यकारों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, न्यायाधीशों तथा मन्त्रियों के परिवारों और उनके निकट सम्बन्धियों का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति की बुद्धि तथा अन्य मानसिक योग्यताओं पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है।
2. **उच्च बुद्धि-लब्धि-**प्रतिभाशाली बालकों का आकलन उनकी उच्च बुद्धि-लब्धि के आधार पर ही किया जाता है। इनकी बुद्धि-लब्धि सामान्य बालकों से अधिक होती है जो 130 से 140 या इससे अधिक होती है जबकि सामान्य बुद्धि-लब्धि 90 से 110 तक होती है।
3. **अच्छा स्वास्थ्य-**प्रतिभाशाली बालक अपनी समान आयु के बालकों से अधिक स्वस्थ व विकसित होते हैं। जन्म के समय भी इन बालकों की लम्बाई, भार, शारीरिक गठन सामान्य बालकों की तुलना में अच्छा होता है जन्म के बाद इनका विकास विभिन्न क्षेत्रों में शीघ्रता से होता है। ये बालक जल्दी चलना और बोलना शुरू करते हैं। यौन परिपपक्वता भी इन बालकों में जल्दी आती है।कारमाइकेल (Carmichale) के अनुसार प्रतिभाशाली बालकों का शारीरिक ढाँचा और स्वास्थ्य सामान्य बच्चों की तुलना में अच्छा होता है जिससे ये प्रभावशाली व्यक्तित्व के दिखायी देते हैं।
4. **तीव्र समझ:** जानकारी को तेजी से सीखने और संसाधित करने की एक उन्नत क्षमता, जो निरंतर मानसिक उत्तेजना की आवश्यकता के साथ संयुक्त है; अत्यधिक प्रतिभाशाली छात्र अक्सर विक्षिप्त साथियों की तुलना में एक अलग गति से काम करते हैं - बहुत आगे बढ़ते हैं या रुचि के क्षेत्रों में गहराई से गोता लगाने के लिए रुकते हैं।

5. **ग्रहणशीलता-**प्रतिभाशाली बालकों में सीखने की क्षमता सामान्य बालकों से अधिक होती है। ये किसी भी बात को कम से कम निर्देशन में आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। इनकी ज्ञान-लब्धि और शिक्षा-लब्धि अधिक होती है।
6. **ध्यान केन्द्रित करने की योग्यता-** ये बालक अधिक समय तक एकाग्रचित्त होने की क्षमता रखते हैं। इसके कारण ये पढ़ने लिखने में सामान्य बालकों से आगे रहते हैं। इनमें विचार और मनन तथा कल्पना शक्ति अधिक होती है। शिक्षा तथा शैक्षिक उपलब्धियाँ ये बालक शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य बालकों से आगे रहते हैं तथा इनकी शैक्षिक उपलब्धियाँ भी अधिक होती हैं।

   हरमन के अनुसार- "प्रतिभाशाली बालक नियमित रूप से स्कूल जाना पसन्द करते हैं, स्कूल में पढ़ाये जाने वाले विषयों में रुचि रखते हैं, नियमित रूप से स्कूल का कार्य करते हैं, स्कूल में होन वाले विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेते हैं, इनकी स्कूल की प्रगति श्रेष्ठ होती है। इनकी कक्षोन्नति जल्दी होती है।
7. **खेल-** प्रतिभाशाली बालक अपने हमउम्र बच्चों के साथ खेलना पसन्द नहीं करते, के अपनी आयु से अधिक आयु वाले बच्चों के साथ खेलते हैं। ये बच्चे उन खेलों को अधिक पसन्द करते हैं जिनमें अधिक कुशाग्रता तथा चिन्तन और मनन की आवश्यकता होती है। ये बौद्धिक खेलें को रुचि के साथ खेलते हैं।
8. **अमूर्त्त चिन्तन में रुचि** - ये बालक बौद्धिक कार्यक्रमों तथा सैद्धान्तिक विषयों में अभूतपूर्व रुचि रखते हैं। इन्हें वे सब कार्य पसन्द होते हैं जिसमें अधिक सोचने, समझने और चिन्तन की आवश्यकता होती है
9. **समायोजन की क्षमता**- प्रतिभाशाली, बालकों में उच्च श्रेणी की समायोजन क्षमता होती है। ये मृदुभाषी, शिष्ट, व्यवहार कुशल, वाक्पटु तथा बहिर्मुखी होते हैं इसलिए विभिन्न क्षेत्रों में विशेष रूप से सामाजिक समायोजन अच्छा होता है। इनका वैवाहिक समायोजन भी उच्च श्रेणी का होता है।
10. **संवेगात्मक परिपक्वता**-इन बालकों में आत्मविश्वास की अधिकता होती है इसलिए वे संवेगात्मक रूप से परिपक्व होते हैं। थोड़ी-सी परेशानी से विचलित नहीं होते हैं अपितु परेशानी आने पर उसका हल ढूँढकर निदान करने का प्रयास करते हैं। ये प्रसन्नचित्त और हँसमुख होते हैं।

11. **तर्क की अधिक क्षमता-**प्रतिभाशाली बालकों में अधिक से अधिक सीखने और जानने की प्रवृत्ति पायी जाती है। वे अधिक से अधिक गूढ़ जानकारी प्राप्त करना चाहते है इसलिए अपन परिवार के सदस्यों, मित्रों तथा शिक्षकों से तरह-तरह के प्रश्न पूछते हैं। ये बालक स्कूल में वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भी अधिक भाग लेते हैं।
12. **प्रभावशाली व्यक्तित्व-**प्रतिभाशाली बच्चों का शारीरिक गठन ही प्राकृतिक रूप से ऐसा होता है कि इनका व्यक्तित्व प्रभावशाली दिखायी देता है। शारीरिक विशेषताओं के अतिरिक्त इनमें चरित्र तथा व्यक्तित्व निर्माण सम्बन्धी ऐसे गुण होते हैं जो इनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाते हैं जैसे-आत्म-विश्वास, सच्चरित्रता, विवेकशीलता, वृढ़ संकल्प शक्ति, वाक्पटुता, अच्छी भाषा शैली आदि।
13. **आत्म सुधार की प्रवृत्ति**- इन बालकों में आगे बढ़ने की प्रवृति पायी जाती है इसलिए ये प्रत्येक काम को उत्कृष्ट तरीके से करते हैं पढ़ने -लिखने तथा अन्य कार्यों में अपनी गलतियाँ ढूँढकर तुरन्त दूर करने का प्रयास करते हैं।
14. **योजना बनाकर कार्य करना-** ये बालक लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील तथा आशान्वित रहते हैं, ये बालक लक्ष्य प्राप्ति के लिये विचारे अविवेकपूर्ण ढंग से नहीं करते हैं। इनमें दूरदर्शिता पायी जाती है।
15. **आशावादी दृष्टिकोण**- ये बालक आशावादी होते हैं। किसी कार्य में असफल होने पर निराश नहीं होते हैं अपितु असफलता के कारणों को ढूंढकर पुनः उस कार्य को और अधिक लगन उत्साह से करते हैं।

12.6 प्रतिभाशाली बालकों का चयन तथा पहचान की विधियां

प्रतिभाशाली बालकों का चयन तथा पहचान करने के लिए निम्नलिखित विधियां काम में लाई जाती हैं:

12.6.1 परीक्षण (Testing)

प्रतिभाशाली बालकों के परीक्षण हेतु कई मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षणों को प्रशासित किया है जिनमें से मुख्य रूप से निम्न परीक्षण प्रयुक्त किए जाते हैं :

a. बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)

(1) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण: प्रतिभाशाली बालकों के चयन में व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण सही तरीका है। इस परीक्षण के द्वारा व्यक्तिगत रूप से बालक की बुद्धि लब्धि का पता लगाया जाता है।

(2) सामूहिक बुद्धि परीक्षण: व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण एक व्यक्ति पर आधारित होने के कारण अधिक व्ययशील रहते हैं तथा समय भी ज्यादा लेते हैं, किंतु सामूहिक परीक्षण में संपूर्ण कक्षा या वर्गों का परीक्षण कर उनमें से प्रतिभाशाली बालक का चयन किया जाता है। यह थोड़े समय में कम श्रम के साथ एक समूह में से प्रतिभाशाली बालकों का चयन कर सकते हैं।

b. उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test)

उपलब्धि परीक्षण को निष्पत्ति परीक्षण भी कहा जाता है। इस परीक्षण में निष्पत्ति फलांक जितने उच्च होंगे बालक की प्रतिभा में उच्च सहसम्बन्ध होंगे, किंतु यह भी सत्य है कि एक बालक के भिन्न-भिन्न विषय में फलांक भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि सभी विषयों की निष्पत्ति समान नहीं होती है। इसलिए किस विषय की निष्पत्ति को लें, कुछ बालकों में प्रतिभा होती है किंतु उसकी निष्पत्ति कम होती है। निष्पत्ति परीक्षणका सबसे बड़ा दोष यही है कि हम इसके द्वारा बालक की प्रतिभा का सही चयन नहीं कर पाते।

c. अभिरुचि परीक्षण (Aptitude test)

एक बालक का जीवन शिक्षकों के साथ अधिक रहता है। शिक्षक छात्रों का दैनिक अवलोकन करते हैं, जिसके द्वारा वे बालक की विभिन्न योग्यता तथा प्रतिभा का अनुमान लगा लेते हैं। इस प्रकार वे भी प्रतिभाशाली बालक (Gifted Children) का चुनाव कर सकते हैं।

12.6.2 निरीक्षण (Observation)

बालकों की विभिन्न गतिविधियों का अवलोकन कर उसकी प्रतिभा को खोज सकते हैं। जैसे – कुछ बालक अन्य बालकों की अपेक्षा ज्यादा व जल्दी याद कर लेते हैं, कुछ जल्दी चलना-फिरना, उठना-बैठना आदि कर लेते हैं। कुछ बालक अन्य बालकों की अपेक्षा जल्दी काम कर लेते हैं आदि अनेक क्रियाएं प्रतिक्रियाएं बालकों के निरीक्षण करने से उनकी प्रतिभाओं को उजागर करती है।

12.7 प्रतिभाशाली बालकों का समायोजन

यह माना जाता है कि प्रतिभाशाली बालकों का सभी क्षेत्रों में समायोजन अच्छा होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि बुद्धि-लब्धि और समायोजन में सह-सम्बन्ध होता है। बुद्धि-लब्धि अधिक होने पर समायोजन धनात्मक होता है और कम होने पर ऋणात्मक।

किन्तु यह देखा है कि प्रतिभाशाली बालक भी समायोजन समस्या से अछूते नहीं है। इन बालकों के साथ समायोजन समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन्हें परिवार, विद्यालय व समूह के बीच एक सामान्य बालक ही समझा जाता है। ऐसी स्थिति में बालक अपनी प्रतिभाओं का भरपूर लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसे निराशा व कुंठा होती है। इस स्थिति में उसे परिवार, विद्यालय तथा समाज सभी जगह समायोजन करने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

12.7.1 परिवार में समायोजन- प्रतिभाशाली बालक पारिवारिक समायोजन तब नहीं कर पाते हैं जब परिवार के सदस्य उसे सामान्य बालक ही समझकर साधन व सुविधायें प्रदान करते हैं जबकि प्रतिभाशाली बालक परिवार से अपने विकास के लिए अधिक साधन व सुविधाओं की अपेक्षा करते हैं। प्रतिभाशाली बालक जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। वे अपने माता-पिता से अपनी आयु से अधिक आयु के बालकों के समान प्रश्न पूछते हैं, तर्क करते हैं, जब माता-पिता द्वारा प्रश्न पूछने पर उन्हें डाँटा जाता है तथा उनकी समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता है तो वे तनावयुक्त रहने लगते हैं। ये बालक स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहते हैं, लेकिन जब इनके कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप किया जाता है और उनकी इच्छाओं की पूर्ति का पर्याप्त अवसर नहीं दिया जाता है तो बालकों का माता-पिता तथा परिवार के साथ धनात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है। अधिक निराशा व कुंठा होने पर ये बालक निषेधात्मक व्यवहार भी करने लगते हैं।

12.7.2 विद्यालय में समायोजन- स्कूल में प्रवेश सामान्य बालकों के तरह होता है परंतु प्रतिभाशाली बालकों की मानसिक समस्या अधिक तीव्र होती है इसलिए साधारण शिक्षा से वे संतुष्ट नहीं हो पाते है वह हर समय नई चीजें जानने की जिज्ञासु प्रवृत्ति होने के कारण ऐसे बालक अपने अध्यापक और साथियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते और सामान्य बालक भी इससे ईर्ष्या करने लगते हैं। ये बालक अपने शिक्षकों से तरह-तरह से प्रश्न पूछते हैं। शिक्षक द्वारा जब उन्हें डाँट कर बैठा दिया जाता है तो इन बालकों के मन में शिक्षकों के प्रति अनादर का भाव उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में ये बालक स्कूल नहीं जाना चाहते हैं तथा सहपाठियों से लड़ाई-झगड़ा करते हैं।

12.7.3 सामाजिक समायोजन-बुद्धि में उत्तम होने के कारण प्रतिभाशाली बालकों को सीखने के लिए साथी नहीं मिलते इस प्रकार उनका सामाजिक विकास रुक जाता है कई बार दूसरे समुदाय में रहने के कारण वहाँ के रीति रिवाज बच्चों का समायोजन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है । प्रतिभाशाली बालकों को सामाजिक समायोजन में भी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये बालक अपनी से बड़ी उम्र के बालकों के साथ खेलना चाहते हैं और जब उनके साथ खेलते हैं तो बड़े बालक उनसे हार जाते हैं और वे उन्हें अपने साथ खिलाना पसन्द नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में उनके सामने यह समस्या रहती है कि वे किसे अपना मित्र बनायें। उनके मित्र कम रहते हैं। इसके

अतिरिक्त ये बालक बौद्धिक क्षमता वाले खेलों को पसन्द करते हैं जबकि सामान्य बालक हल्के-फुल्के मनोरंजनात्मक खेलों को।

प्रतिभाशाली बालकों में प्रभुत्व, नेतृत्व और प्रतिनिधित्व का गुण पाया जाता है। जब वे अपने से बड़े में नेतृत्वो यहाँ इनका नेतृत्व और प्रतिनिधित्व कोई स्वीकार नहीं करता है। अतः ये बालक समाज से विमुख होने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

a. सही अथवा गलत बताइए:

1. प्रतिभाशाली बालकों में बुद्धि लब्धि 140 से कम होती है।
2. उपलब्धि परीक्षण को निष्पत्ति परीक्षण भी कहा जाता है।
3. प्रतिभाशाली बालकों के लिए विशेष योग्यता वाले अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए।
4. में निष्पत्ति फलांक जितने उच्च होंगे बालक की प्रतिभा में उच्च सहसम्बन्ध होंगे।
5. बालकों में उच्च श्रेणी की समायोजन क्षमता कम होती है।
6. शिक्षक प्रतिभाशाली बालक (Gifted Children) का चुनाव नहीं कर सकते हैं।
7. प्रतिभाशाली बालकों को सामाजिक समायोजन में भी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
8. निष्पत्ति परीक्षणका सबसे बड़ा दोष यही है कि हम इसके द्वारा बालक की प्रतिभा का सही चयन नहीं कर पाते।

12.8 प्रतिभाशाली बालकों के शैक्षिक प्रावधान

यह बात सर्वमान्य है कि प्रतिभाशाली बालकों को विशेष शिक्षण विधियों की आवश्यकता होती है सामान्य शिक्षण विधि से कई बार प्रतिभाशाली बालक संतुष्ट नहीं होती है तथा कई बार कक्षा में समस्या उत्पन्न कर देती है इस प्रकार के वातावरण में प्रतिभाशाली बालक संतुष्ट एवं स्वयं को समायोजित करने में कठिनाई महसूस करते हैं।प्रतिभाशाली बालकों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए अधोलिखित सुविधाएं उसे उपलब्ध करवाई जा सकती है जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो सके।

1. **योग्य तथा नेक अध्यापक:** प्रतिभाशाली बालकों के लिए विशेष योग्यता वाले अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए जो स्वयं तेज बुद्धि एवं शैक्षणिक योग्यता वाले होते हैं, योग्य अध्यापक प्रतिभावान बालकों को सही दिशा प्रदान कर सकते हैं।

2. **सहगामी क्रियाओं का विशेष व्यवस्था:** पढ़ाई लिखाई के अतिरिक्त दूसरी क्रियाओं में प्रतिभावान बालकों को अवश्य अवसर मिलने चाहिए अन्यथा उनकी विशेष शक्ति गलत कार्यों में व्यर्थ समाप्त हो जाएगी। उनके मनपसंद क्रियाकलापों के लिए समुचित व्यवस्था करना स्कूल का दायित्व है।
3. **पुस्तकालय सुविधाएं:** प्रतिभाशाली बालकों को नए ज्ञान कीसदा ही तलाश रहती है अतः इन आवश्यकता को पूरा करने के लिए स्कूल में पुस्तकालय सुविधाओं का प्रबंध सुचारू रूप से होना चाहिए इसमें वह अपने खाली समय का उचित ढंग से उपयोग कर सकता है।
4. **विस्तृत पाठ्यक्रम:**प्रतिभाशाली बालक के लिए पाठ्यक्रम विस्तृत होना चाहिए क्योंकि सामान्य वालों को वाले पाठ्यक्रम को प्रतिभाशाली बालक आसानी से समझ लेते हैं इनके पाठ्यक्रम में निम्नलिखित कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है, जैसे नागरिकता की शिक्षा, जीवन भाषाओं का अध्ययन, आधुनिक भाषाओं का अध्ययन विशेष योग्यताओं का प्रशिक्षण आदि।
5. **व्यक्तिगत ध्यान:** प्रतिभाशाली बालकों चाहते हैं कि अध्यापक कक्षा में उनका व्यक्तिगत रूप से विशेष ध्यान रखें बालक की इन इच्छाओं की पूर्ति अध्यापक कई विधियों से कर सकते हैं।इन बालकों में आत्मसम्मान की संतुष्टि होती है।
6. **उत्तरदायित्व का कार्य:**प्रतिभाशाली बालकों का उत्तर दायित्व के कार्य सौंपा जाए जैसे कि उन्हें कक्षा का मॉनिटर बनाया जाए और भिन्न-भिन्न सभाओं क्लबों टीमों का लीडर बना दिया जाए इस तरह कार्य करने से वे समाज के उत्तरदायित्व का भार उठाना सीख जाएंगे।
7. **प्रोजेक्ट विधि:** प्रतिभाशाली बालकों में समावेशी शिक्षा में बालकों को प्रोजेक्ट कार्यों में संलग्न करना चाहिए इससे उन में सहयोग की भावना का विकास होता है इसके अतिरिक्त प्रतिभावान बालकों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अवसर मिलता है और उनका आत्मविश्वास जागता है।

12.9 प्रतिभाशाली बच्चों की समस्याएँ/चुनौतियाँ

चाहे वे कितनी भी विशेष क्यों न हों, बच्चों में प्रतिभाशाली व्यवहार संबंधी समस्याएं भी होती हैं जिनके बारे में माता-पिता को पता होना चाहिए और उन्हें सावधानी से संभालना चाहिए।

1. जलन और थकावट

प्रतिभाशाली बच्चे आमतौर पर ऊर्जा से भरपूर होते हैं और अपना सब कुछ देकर अपने हितों को आगे बढ़ाते हैं। इससे वे जल्द ही थक जाते हैं और उनका ऊर्जा भंडार ख़त्म हो जाता है क्योंकि उनका शरीर अभी विकास की गति पकड़ रहा होता है। इसके अलावा, होमवर्क पूरा करने, हर चीज़ को व्यवस्थित रखने और हर चीज़ में परफेक्ट होने जैसे सामान्य कार्यों का ध्यान रखना उनके लिए बेहद तनावपूर्ण हो सकता है और वे जो करना चाहते हैं उसे करने में उनकी इच्छा नहीं रह जाती है।

2. ध्यान और संगठन से संबंधित मुद्दे

प्रतिभाशाली बच्चे अमूर्त रूप से सोचते हैं और अमूर्त विचार रखते हैं और सामान्य स्थिति से बहुत जल्दी ऊब जाते हैं। इससे उन्हें ध्यान देने या चीज़ों को व्यवस्थित रखने में समस्या होने लगती है।

3. मित्र बनाने में कठिनाई

यह प्रतिभाशाली बच्चों के सामने आने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक है। बाहर से देखने पर वे सामाजिक मेलजोल के मामले में अत्यधिक परिपक्व लग सकते हैं, लेकिन आंतरिक रूप से वे अपने साथियों के बीच अकेलापन और उदासी महसूस करते हैं। उन्हें अपने सहपाठियों के साथ कोई समानता नहीं मिल सकती है या समूह की गतिविधियों में शामिल होने में कठिनाई हो सकती है। इसका मुख्य कारण दूसरों से बेहतर काम करने की उनकी प्रवृत्ति हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अहंकारी माना जाता है।

4. **धैर्यवान होने में कठिनाई**

यदि उन्हें किसी ऐसी चीज़ का सामना करना पड़ता है जिसे वे जल्दी से समझ नहीं पाते हैं या शुरुआत में किसी विशेष गतिविधि में अच्छे नहीं हो सकते हैं, तो वे खुद पर क्रोधित हो जाते हैं या गतिविधि को पूरी तरह से छोड़ सकते हैं।

5. **अवास्तविक उम्मीदें**

प्रतिभाशाली बच्चे स्वयं से अत्यधिक अपेक्षा रखते हैं।यदि वे लगातार अच्छे ग्रेड प्राप्त कर रहे हैं, तो एक भी निम्न ग्रेड उन्हें भीतर से नष्ट कर सकता है। वे अपने लिए बहुत ऊंची उम्मीदें रखते हैं और जब वे उन्हें पूरा करने में असफल हो जाते हैं तो तुरंत व्याकुल हो जाते हैं।

6. नियंत्रण से संबंधित मुद्दे

अधिकांश प्रतिभाशाली बच्चे चीजों को अपने तरीके से चलाना पसंद करते हैं। आपने देखा होगा कि बच्चे खुद ही काम करने की जिद करते हैं और जब माता-पिता हस्तक्षेप करते हैं तो उन्हें इससे नफरत होती है।समय के साथ, चीजों को एक विशेष तरीके से करने की इस प्रकृति के कारण अन्य लोग इसे अहंकार या दबंग होने के रूप में व्याख्या कर सकते हैं, जिससे वे जोखिम लेने से भी डर सकते हैं।

7. एक पूर्णतावादी होना

प्रतिभाशाली बच्चों के लिए इसे हमेशा उत्तम होना चाहिए। यह उन्हें जीवन भर उच्च उपलब्धियां प्रदान करता है। वे चीजों को बेहतरीन विवरण तक पहुंचाने में विलंब कर सकते हैं या बेतुका समय खर्च कर सकते हैं। जीवन के अन्य पहलुओं में औसत प्रदर्शन देखने पर, प्रतिभाशाली बच्चे उन क्षेत्रों में और भी अधिक प्रयास कर सकते हैं, बिना यह जाने कि इसमें बहुत समय लगता है, वे थक जाते हैं और उनके स्वास्थ्य पर असर पड़ता है।

8. दोषी महसूस करना

प्रतिभाशाली बच्चे प्रतिभाशाली होने के बारे में दोषी महसूस करते हैं। वे अपनी प्रतिभा को पहचानते हैं और उन्हें वापस देने या दूसरों के साथ साझा करने के लिए उत्सुक हो सकते हैं। यह अच्छे सामाजिक व्यवहार में प्रकट हो सकता है, जहां वे दूसरों की मदद करते हैं और कार्यों में योगदान देते हैं, लेकिन जब अपराधबोध से प्रेरित होते हैं, तो वे अतिरिक्त प्रयास कर सकते हैं और फायदा उठाया जा सकता है।

9. आत्मसम्मान से संबंधित मुद्दे

यह उपहार कभी-कभी बच्चों के लिए अभिशाप बन सकता है, जिससे उन्हें अपने दोस्तों और सहपाठियों से अलग और अलग महसूस होता है। प्रतिभाशाली बच्चों को कभी-कभी धमकाया जाता है या उन्हें अवसाद से भी जूझना पड़ता है। कई अध्ययनों से पता चला है कि प्रतिभाशाली बच्चे सामाजिक कठिनाइयों और दुख की भावनाओं से बहुत संघर्ष करते हैं।

12.10 समायोजन दोष न उत्पन्न होने हेतु उपाय

1. अलग कक्षाओं की व्यवस्था ये बालक जल्दी सीखते है। अतः इन्हें सामान्य बालों के साथ नहीं पढ़ाना चाहिए, इनके लिए अलग विद्यालयों की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि अलग विद्यालयों की व्यवस्था न की जा सके तो सामान्य विद्यालयों में ही इन बालकों की कुछ कक्षाएं अलग होनी चाहिए।

2. प्रतिभाशाली बालकों का पाठ्यक्रम सामान्य चालकों से पृथक होना चाहिए। इनके पाठ्यक्रम में जटिल विषयों को अधिक मात्रा में सम्मिलित करना चाहिए।
3. प्रोन्नति में शीघ्रता देनी चाहिए ।यदि प्रतिभाशाली बालकों को सामान्य बालकों के साथ पढ़ाया जाता है तो उन्हें एक शिक्षण सत्र में दो बार प्रोन्नत कर देना चाहिए जिससे उनकी समताओं को विकसित होने का अवसर मिलता रहे।
4. शिक्षकों द्वारा व्यक्तिगत शिक्षण शिक्षकों को चाहिए कि यह कक्षा के प्रतिभाशाली बालक को अतिरिक्त समय देकर उसकी समस्याओं का समाधान करें और उसकी प्रतिभाओं का विकास करें।
5. इन बच्चों के लिए विद्यालय में वाचनालय और पुस्तकालय की विशेष सुविधा होनी चाहिए ताकि वे अपनी रुचि की पुस्तकें, पत्रिकायें तथा अखबार आदि पढ़कर ज्ञानार्जन कर सकें।
6. अतिरिक्त सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था ये बालक पढ़ाई के साथ-साथ खेलकूर, वाद-विवाद, नेतृत्व, संगीत, कला आदि में रुचि रखते हैं। अतः विद्यालय में इनकी व्यवस्था होनी चाहिए।
7. प्रोत्साहन और पुरस्कार ऐसे बालकों को विद्यालय, परिवार तथा समाज द्वारा सम्मान पुरस्कार, छात्रवृत्ति तथा उत्तरदायित्वपूर्ण पद प्रदान कर प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि उसका आत्म-विश्वास बना रहे।

प्रतिभाशाली बालक समाज, देश व राष्ट्र का गौरव होते हैं तथा देश को प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। परिवार, समाज और विद्यालय का यह दायित्य है कि इन बालकों में समायोजन संबंधी दोष ना उत्पन्न होने दें तथा इनकी प्रतिभाओं के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें।

अभ्यास प्रश्न 2

a. रिक्त स्थान भरिए:

1. प्रतिभाशाली बालक के लिए पाठ्यक्रम **……** होना चाहिए।
2. प्रतिभाशाली बालकों के लिए **…….** वाले अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए।
3. प्रतिभाशाली बच्चे आमतौर पर **……** से भरपूर होते हैं।
4. प्रतिभाशाली बच्चे **……**विचार रखते हैं।
5. प्रतिभाशाली बालकों के लिए विद्यालय में **……**की विशेष सुविधा होनी चाहिए।

b. सही अथवा गलत बताइए:

1. प्रतिभाशाली बच्चे सामाजिक कठिनाइयों और दुख की भावनाओं से बहुत संघर्ष करते हैं।

2. प्रतिभाशाली बच्चों को मित्र बनाने में कठिनाई होते है।
3. प्रतिभाशाली बालक के लिए पाठ्यक्रम सीमित होना चाहिए।
4. प्रतिभाशाली बच्चे स्वयं से अत्यधिक अपेक्षा नहीं रखते हैं।
5. लीडर बनाने से प्रतिभाशाली बच्चे समाज के उत्तरदायित्व का भार उठाना सीख जाएंगे।

12.11 सारांश

बालकों के समायोजन में माता-पिता तथा अभिभावकों की भूमिका जब माता-पिता को यह ज्ञात हो कि उनका बालक प्रतिभाशाली है तो उन्हें सर्वप्रथम अपने बालक की जिज्ञासाओं को सन्तुष्ट करना चाहिए। यदि वह स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य करना चाहता है तो इसके लिए उसे पर्याप्त स्वतन्त्रता देनी चाहिए। उसे वे सभी साधन व सुविधायें प्रदान करनी चाहिए जो उसकी प्रतिभाओं के विकास में सहायक हो। समय-समय पर उसकी प्रशशंसा करनी चाहिए तथा ऐसे खेल लाकर देने चाहिए जिसमें उसकी बौद्धिक क्षमताओं का विकास हो।

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

a. सही अथवा गलत बताइए

1. गलत
2. सही
3. सही
4. सही
5. गलत
6. गलत
7. सही
8. सही

अभ्यास प्रश्न 2

a. रिक्त स्थान भरिए:

1. विस्तृत
2. विशेष योग्यता
3. ऊर्जा

4. अमूर्त

5. पुस्तकालय

b. सही अथवा गलत बताइए

1. सही

2. सही

3. गलत

4. गलत

5. सही

12.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

- D. Kate (2006). Gifted Children: A Guide for Parents and Professionals. Jessica Kingsley Publishers. P-271.
- Morawska A, Sanders M. An evaluation of a behavioural parenting intervention for parents of gifted children. Behav Res Ther. 2009;47:463–470.
- P. Jennifer R. Antoinette R.Dawn (2018) Child Growth and Development. College of the Canyons.
- Roome JR, Roomney DM. Reducing anxiety in gifted children by inducing relaxation. Roeper Rev. 1985;7:177–179.
- Vaishali P. Suryawanshi (2012). GIFTED CHILDREN. Global Online Electronic International Interdisciplinary Research Journal (GOEIIRJ), 1 (1): 22-28.
- नीता अग्रवाल(2013) बाल विकास। अग्रवाल पब्लिकेशन pp-489

निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रतिभाशाली बालकों की विशेषतायेंसमझाइये।

2. प्रतिभाशाली बालकों के चयन तथा पहचान की विधियां क्या हैं ?

3. प्रतिभाशाली बालकों के शैक्षिक प्रावधान टिपण्णी कीजिये।

4. प्रतिभाशाली बालकों में समायोजन दोष न उत्पन्न होने हेतु क्या उपाय किये जा सकते हैं ?